

इकाई 1 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संविधान की प्रस्तावना

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

1.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

1.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

1.4.3 सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य

1.4.4 पंथ निरपेक्ष

1.4.5 समाजवादी राज्य -

1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

1.6 लोक कल्याणकारी राज्य

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान के निर्माण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि

1. भारतीय संविधान इतना विस्तृत होने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।
2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
3. भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणों का प्रावधान किये गये जाने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे
4. आप जान सकेंगे कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

1.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दुःखद अनुभव को झेल चुका था।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

" हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को ,
सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा
उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता
सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ाने के लिए
दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष
शुक्ल सप्तमी, सम्बत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित
और आत्मार्पित करते हैं।"

यहाँ हम स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वयं जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात् भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वयं भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन् इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वयं को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

4.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात् सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ।'

4.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण हैं। जो निम्नलिखित हैं:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं है (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आगतभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये हैं।

स. नागरिकों मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेंसियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

1.4.3 सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और बाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

1.4.4 पंथ निरपेक्ष

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यपि इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान हैं जैसे मूल अधिकारों में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं है। सभी धर्मों के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

1.4.5 समाजवादी राज्य -

मूल संविधान में इस शब्द का प्रावधान नहीं किया था इसका प्रावधान 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनों सदन (सीनेट, प्रतिनिधि सभा) दो तिहाई

बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात् न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।
2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनों के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।
3. भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित हैं, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमें लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया है।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रपति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनों में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनो निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान
2. केन्द्र(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)
3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात् जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की । जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात् कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाएँ, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते हैं।

1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियाँ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो

हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित हैं, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विशय
भारतीय शासन अधिनियम १९३५	तीनों सूचियाँ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ
. 2 ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
. 3 अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
. 4 आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
. 5 कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन का केंद्र के पास होना अवशिष्ट शक्तियाँ
. 6 आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
. 7 दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
. 8 पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

1.6 लोक कल्याणकारी राज्य -

लंबे संघर्ष के पश्चात् देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रूप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/
- 2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता - नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद । सत्य असत्य/
3. लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके । सत्य असत्य/

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। सत्य/असत्य/
 5. पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्य/असत्य/

1.7 सारांश

इकाई 1 के अध्ययन के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान का स्वरूप क्या है | जिसमें जिसमें विविध पक्षों को जानने के साथ ही यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विशयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए | जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ –साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ | इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप पाए | जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है |इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई |

1.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मों के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्र प्रताप सिंह

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?
2. आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई 2 : भारतीय संविधान की विशेषताएं

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 प्रस्तावना
- 2.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
- 2.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
- 2.6 लोक कल्याणकारी राज्य
- 2.7 सारांश
- 2.8 शब्दावली
- 2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना -

इकाई एक में हमने भारतीय संविधान के निर्माण में विदेशी संविधान के प्रभावों का अध्ययन किया साथ ही भारतीय संविधान के महत्वपूर्ण पक्षों का भी अध्ययन किया है।

इस इकाई में भारतीय संविधान की विशेषताओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया है जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि

1. भारतीय संविधान इतना विस्तृत क्यों हुआ?
2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये गये
3. भारतीय संविधान में संघात्मक उपबन्ध क्यों किये गये

4. आप जान सकेंगे कि संसदीय शासन के बाद भी संविधान की सर्वोच्चता है

2.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव है कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाए पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया है किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक है कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दुःखद अनुभव को झेल चुका था।

यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं है तो, प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

" हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा

उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई० (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्बत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्वारा

इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।”

यहाँ हय स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे-

1. हम भारत के लोग- इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता के द्वारा नहीं किया गया है। बस भारतीयों ने किया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वयं जनता है और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात् भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी के पास न होकर स्वयं भारतीय जनता के पास है और भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन् इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य है कि- राज्य किसी धर्म विशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन् वह सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. गणराज्य- इसका तात्पर्य है कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता है जबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति है इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य है कि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण है न कि विशेष लोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य है कि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य है कि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वयं को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के

द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह है कि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में 16 वॉ संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

2.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

1. लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान - संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया है कि 'हम भारत के लोग ।'

2. विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 147 अनुच्छेद हैं। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण हैं। जो निम्नलिखित हैं:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धित प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं है (जम्मू कश्मीर को छोड़कर)। जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातीय, सांस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आगतभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये हैं।

स. नागरिकों मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धित प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र राज्य संबन्धों का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

3. सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतान्त्रात्मक गणराज्य - जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है। भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और बाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति है न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट।

4. पंथ निरपेक्ष - भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यपि इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धित प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान है जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई राजधर्म नहीं है। सभी धर्मों के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

5. समाजवादी राज्य - मूल -

इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य है कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

6. कठोरता और लचीलेपन का समन्वय - संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते हैं। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता है जिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है - अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनो सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें और उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें। अर्थात् न्यूनतम राज्य।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के समान न तो कठोर है और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता है -

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनो सदनों के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3. भारतीय संविधान में कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धित हैं, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधेराज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते हैं, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमें लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

4. संसदीय शासन प्रणाली - हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया है।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनों में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ में) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते हैं।

स. मन्त्रिपरिषद (संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मन्त्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनों निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन हैं। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्षरूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

5. एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन - यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहाँ के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान
2. केन्द्र(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)
3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यपि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में है क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात् जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जैसे- संकट की घोशणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर,, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त

इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती है एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है दूसरी संघ की। जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात् कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाएँ, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन है जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते हैं।

2.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबन्ध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियाँ में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को, जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित हैं, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विशय
भारतीय शासन अधिनियम १९३५	तीनों सूचियाँ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियाँ
.2. ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
.3. अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
.4. आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
.5. कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन (अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के पास हैं)
.6. आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
.7. दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया

.8.पूर्व सोवियत संघ

मूल कर्तव्य

2.6 लोक कल्याणकारी राज्य

लंबे संघर्ष के पश्चात् देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए/ विशेष रूप से भाग 4 के नीति निर्देशक तत्व में / मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य असत्य/
- 2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता -नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य असत्य/
3. लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। सत्य असत्य/
4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। सत्य असत्य/
5. पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है। सत्य असत्य/

2.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान की क्या विशेषताएं हैं जिसमें यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ है क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विशयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए। जैसे मूल अधिकार और नीतिनिर्देशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता है इसी प्रकार से

अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र-राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ-साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग, राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप पाए। जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

2.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न हाना राज्य के द्वारा सभी धर्मों के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन अपने-2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति	-	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्र प्रताप सिंह

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?
2. आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है

इकाई -3 : मूल अधिकार और मूल कर्तव्य

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मौलिक अधिकार

3.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

3.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18

3.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 19 से 22

3.3.4 शोषण के विरुद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24

3.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 28 से 25

3.3.6 सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार : अनुच्छेद 30 से 29

3.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार : अनुच्छेद 32

3.4 मूल कर्तव्य

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में हमने भारतीय संविधान की विशेषता का अध्ययन किया है। अध्ययन के क्रम में मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्तव्य के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त किया यह जानकारी प्राप्त हो सकी कि कितने मौलिक अधिकार है और कितने मौलिक कर्तव्य।

इस इकाई 6 में हम छः मौलिक अधिकार का क्रमशः विस्तृत अध्ययन करेंगे तथा मूल कर्तव्यों का अध्ययन करेंगे। भारतीय संविधान द्वारा मूल अधिकारों की व्यवस्था करने के पीछे संविधान निर्माताओं की धारणा थी कि स्वतन्त्र देश के नागरिक के रूप में भारतवासी अपना जीवन यापन कर सकें।

इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि मूल अधिकार के उल्लंघन होने पर अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय में जाना भी मूल अधिकार है। इसी लिए डॉ० अम्बेटकर इस अधिकार को संविधान की आत्मा कहा है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से हम जान सकेंगे कि -

1. मौलिक अधिकार कितने है।
2. ये हमारे लिए मूलभूत है और क्यों है।
3. साथ ही यह भी जान सकेंगे कि किन परिस्थितियों में मूल अधिकार पर प्रतिबंध लगाये जा सकते है।
4. यह जान सकेंगे कि मौलिक कर्तव्य क्या है और इसे क्यों अपनाया गया और कहाँ से अनुसरण किया गया।

3.3 मौलिक अधिकार

“अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके अभाव में कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता”।

मौलिक अधिकार राज्य के विरुद्ध व्यक्ति के अधिकार हैं। ये राज्य के लिए नकारात्मक आदेश हैं अर्थात् राज्य के कुछ कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। मौलिक अधिकारों के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। मौलिक अधिकारों को नागरिक अधिकार के रूप में विश्व में सर्व प्रथम ब्रिटेन में दिया गया। इसे सन् 1215 में वहाँ के सम्राट सर जान द्वितीय ने दिया जिसे डंडं बूतजं (मैग्नाकार्टा) कहा जाता है। भारत ने भी अपने मौलिक अधिकार को भारत का मैग्नाकार्टा बताया।

1689 में सम्राट ने कुछ और अधिकार प्रदान किया जिसे वहाँ का विल ऑफ राइट्स कहा गया। अमेरिका ने भी अपने मौलिक अधिकार को अमेरिका का विल ऑफ राइट्स कहा।

चूँकि मौलिक अधिकार लिखित संविधान के अंग होते हैं और ब्रिटेन में अलिखित संविधान होने के कारण मौलिक अधिकार उस रूप में नहीं हैं जैसे भारत व अमेरिका को माना जाता है।

विश्व में सर्वप्रथम लिखित संविधान अमेरिका का बना लेकिन अमेरिका के मूल संविधान में भी मौलिक अधिकारों का समावेश नहीं था। संविधान लागू होने के दो वर्ष बाद 1791 में प्रथम दस संविधान संसोधन के द्वारा अमेरिका में मौलिक अधिकारों को समाहित किया गया। अमेरिका में मौलिक अधिकार प्राकृतिक अधिकार के रूप में परिभाषित हैं। प्राकृतिक अधिकार के अन्तर्गत वे सभी अधिकार आ जाते हैं जो कि व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं। ये असीमित हैं। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय प्राकृतिक या नौसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को अपनाकर मौलिक अधिकारों को घटा-बढ़ा सकता है। इसलिए अमेरिका की न्यायपालिका विश्व की सबसे शक्तिशाली न्यायपालिका के नाम से जानी जाती है।

भारतीय संविधान के अनु0 12 से लेकर 35 तक में मौलिक अधिकारों का व्यापक विश्लेषण व विवेचन किया गया है। अनु0 12 व 13 में मौलिक अधिकार की प्रकृति बतायी गयी है। अनु0 33 व 34 में मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने की शक्ति संसद को प्रदान की गयी है। अनु0 35 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद को कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। इस प्रकार अनु0 14 से लेकर अनु0 32 तक द्वारा जिसमें अनु0 31 को छोड़कर और 21(क) को जोड़कर अर्थात् कुल 19 अनुच्छेदों के द्वारा मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार नागरिकों और गैर नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है लेकिन अनु0 15, 16, 19, 29 और 30 विदेशियों को प्राप्त नहीं हैं। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार कृत्रिम अधिकार के रूप में परिभाषित हैं अतः ये सीमित हैं। संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों को छोड़कर व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता और न्यायपालिका केवल उन्हीं मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है जो कि संविधान ने उन्हें प्रदान किया है।

मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है, अर्थात् न्यायालय द्वारा लागू कराए जा सकते हैं। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में उच्च एवं उच्चतम न्यायालय दोनों को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। मौलिक अधिकारों के द्वारा भारत में राजनितिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है। मौलिक अधिकार न तो निरंकुश हैं और न असीमित प्रत्येक अधिकारों पर विभिन्न आधारों पर युक्त-युक्त निर्बन्धन लगाया गया है। मौलिक अधिकारों को आपातकाल में राष्ट्रपति निलम्बित कर सकता है, और संसद कानून बनाकर उसे स्थगित कर सकती है।

मूल संविधान में कुल सात मौलिक अधिकारों का समावेश था लेकिन 44 वें संविधान संसोधन अधिनियम के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से हटाकर कानूनी अधिकार बना दिया गया और इसे अनु0 300 (क) में रखा गया है और कहा गया है कि संसद विधि बनाकर नागरिक को उसकी सम्पत्ति से वंचित कर सकती है लेकिन इसके लिए सरकार को उचित मुआवजा देना होगा।

3.3.1 मूल अधिकारों का वर्गीकरण

वर्तमान में केवल 6 मौलिक अधिकार ही हैं जो कि निम्नलिखित हैं:-

- | | |
|---------------------------------|--------------|
| 1.समानता का अधिकार | अनु0 14 - 18 |
| 2.स्वतन्त्रता का अधिकार | अनु0 19-22 |
| 3.शोशण के विरुद्ध अधिकार | अनु0 23- 24 |
| 4.धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार | अनु0 25-28 |
| 5.संस्कृति एवं शिक्षा का अधिकार | अनु0 29-30 |
| 6.संवैधानिक उपचारों का अधिकार | अनु0 32 |

मौलिक अधिकारों का मुख्य उद्देश्य राज्य और व्यक्ति के बीच सामंजस्य स्थापित करना है।

अनु0 12 इस अनु0 में राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है इसमें कहा गया है कि यहाँ राज्य के अन्तर्गत भारत सरकार संघ विधानमण्डल राज्यों की सरकारें राज्यों के विधानमण्डल तथा भारत राज्य क्षेत्र में भारत सरकार के अधीन सभी स्थानीय एवं अन्य प्रधिकारी (शक्ति वैधता) शामिल हैं। यहाँ स्थानीय के अन्तर्गत नगर निगम नगर पालिका जिला बोर्ड पंचायती राज्य व जिलापरिशद आदि आता है तथा प्राधिकारी के अन्तर्गत जीवन बीमा निगम लोक सेवा आयोग विश्वविद्यालय रेलवे बैंक आदि सभी शामिल हैं।

कौन राज्य के अन्तर्गत आता है और कौन नहीं आता इसे न्यायपालिका तय करता है जब कोई व्यक्ति मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय की शरण में जाता है तो न्यायालय देखता है कि उसे राज्य माना जाए या न माना जाए। न्यायपालिका ने वर्तमान में वैष्णो देवी के मंदिर और अमरनाथ की गुफा को भी राज्य की संज्ञा प्रदान किया है।

उपर्युक्त सभी के विरुद्ध व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्राप्त हैं।

अनु0 13 इससे मौलिक अधिकार के प्रकृति और स्वरूप की विवेचना की गयी है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 13 (1) संविधान लागू होने के पूर्व में बनायी गयी विधियाँ यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती है तो वे उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगी।

अनु0 13 (2) संविधान लागू होने के बाद भी राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो कि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती हो यदि राज्य ऐसी कोई विधि बनाएगा तो वह उल्लंघन की मात्रा तक शून्य हो जाएगी।

अनु0 13 (3) यहाँ विधि शब्द के अन्तर्गत कानून उपकानून नियम उपनियम आदेश अध्यादेश संविदा, समझौता सन्धि करार आदि सभी शामिल है।

इस अनु0 में निम्नलिखित दो सिद्धान्त है:-

1. पृथक्करण का सिद्धान्त

इसका अर्थ यह है कि यदि किसी कानून का कोई भाग मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करता है तो केवल वही भाग शून्य घोषित होगा पूरा कानून नहीं लेकिन उस भाग के निकाल देने से पूरे कानून का कोई अर्थ नहीं रह जाता तो पूरा कानून ही शून्य घोषित हो जाएगा।

2. आच्छादन का सिद्धान्त

यदि पूर्व में बनायी गयी विधियों मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण करती है तो वे नष्ट नहीं हो जाती बल्कि उन पर मौलिक अधिकारों की छाया आ जाती है यदि संसोधन करके उल्लंघन सक वाली विधियां ठीक कर ली जाएं तो वे पुनः जीवित हो जाती है। इसे चन्द्र ग्रहण का सिद्धान्त भी कहते है।

अनु0 13 के अन्तर्गत नयायपालिका को मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है।

3.3.2 समानता का अधिकार : अनुच्छेद 14 से 18

समानता फ्रांसीसी क्रान्ति को देन है। भारतीय संविधान के अनु0 14 से 18 तक में समानता के विभिन्न रूपों कानूनी समानता सामाजिक समानता अवसर की समानता आदि का उल्लेख है।

अनु0 14 भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा।

इसमें निम्नलिखित दो बातें है

1. विधि के समक्ष समता यह ब्रिटिश संविधान से गृहित है यह कानूनी समानता का नकारात्मक दृष्टिकोण है इससे निम्न 3 अर्थ निकलता है।

1. देश में कानून का राज्य

2. देश में सभी व्यक्ति चाहे वे जिस जाति धर्म व भाषा के हों सभी एक सामान्य कानून के अधीन है।

3. कोई भी व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है।

2..विधियों के समान संरक्षण यह अमेरिकी संविधान से गृहीत है। इसका अर्थ यह है कि समय परिस्थितियों वाले व्यक्तियों को कानून के समक्ष समान समझा जाएगा क्योंकि समानता का अर्थ सबकी समानता न होकर समानों में समानता है। अर्थात एक ही प्रकार के योग्यता रखने वाले व्यक्तियों के साथ जाति, धर्म भाषा व लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाए।

भारतीय संविधान विधायिन वर्गीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है जो कि अनु0 14 का उल्लंघन नहीं करता है।

विधायिनी वर्गीकरण का अर्थ है यदि एक व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुसार अन्य से भिन्न है तो उसे एक वर्ग माना जाएगा और समानता का सिद्धान्त उस पर अकेले लागू होगा लेकिन इसका आधार वैज्ञानिक तर्कसंगत और युक्त होना चाहिए।

1. इसमें नैसर्गिक न्याय का सिद्धान्त निहित है।
2. यह भारतीय संविधान का मूल ढांचा है।
3. इसमें विधि के शासन का उल्लेख है।
4. इसमें सर्वग्राही समानता का सिद्धान्त पाया जाता है।

अनु0 15 इसमें सामाजिक समानता का उल्लेख है इसमें निम्न प्रावधन है।

15(1) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म मूलवंश जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

15 (2) एक नागरिक दूसरे के साथ धर्म मूल वंश, जाति लिंग व जन्म स्थान के आधार पर दुकानों होटलों सार्वजनिक भोजनालयों व सार्वजनिक मनोरजन के स्थानों तथा राज्य विधि द्वारा पूर्णतः व अशतः पोषित हो नलकूपों तलाबों सड़कों व सार्वजनिक समागम के स्थानों पर भी कोई भेदभाव नहीं करेगा।

अपवाद इसका अर्थ अस्थायी व्यवस्था से है। यह कुछ परिस्थितियों वश दिया गया है इसके आधार पर उपर्युक्त का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

15(3) राज्य स्त्रियों और बच्चों को विशेष सुविधाएं दे सकता है, वर्तमान में महिलाओं को दिया गया आरक्षण का आधार यही अनु0 है।

15(4) राज्य सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों को विशेष सुविधाएं दे सकता है।

वर्तमान में OBC, SC, ST का आधार यही अनु0 है।

15(5) के प्रथम संविधान संसोधन अधिनियम 1951 (18 June)को संविधान में जोड़ा गया ध्यान रहे कि चम्पाकम दोरार्ई राजन बनाम मद्रास राज्य के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने सरकार द्वारा जातियों के आधार पर मेडीकल कालेज में सीटों के आवंटन को अवैध घोषित कर दिया गया था उसे प्रभावहीन बनाने के लिए इसे संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 16 :इसमें अवसर की समानता का उल्लेख है भारत में एकल नागरिकता है इस बात का उल्लेख भारतीय संविधान के किसी अनु0 में नहीं है लेकिन इसका विचार अप्रत्यक्ष रूप से इसी में निहित है। इसमें निम्न प्रावधान है

अनुच्छेद 16(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने के अवसर की समानता होगी।

अनुच्छेद 16(2) भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी नागरिक को सरकारी पदों पर नियुक्ति या नियोजन पाने में अवसर की समानता से वंचित नहीं करेगा अर्थात् राज्य किसी भी नागरिक को धर्म मूलवंश, जाति, लिंग जन्म, स्थान उद्भव व निवास स्थान के आधार पर अथवा इनमें से किसी एक आधार पर सरकारी पदों नियुक्ति व नियोजन पाने में अवसर की समानता से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 16 (3) राज्य निवास स्थान के आधार पर कुछ विशेष पदों पर भर्ती कर सकते हैं लेकिन इसके सन्दर्भ में कानून बनाने का अधिकार उस राज्य को नहीं बल्कि संसद को प्राप्त होगा और संसद इस प्रकार से कानून बनायेगी कि वह अर्हता देश भर में समान रूप से लागू रहेगी।

अनुच्छेद 16(4) यदि राज्यों की राय में सरकारी नौकरियों में सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य उन्हें आरक्षण दे सकता है।

वर्तमान में इसी अनु0 के द्वारा O.B.C., S.C. व S.T. को आरक्षण प्रदान किया गया है। ध्यान रहे कि आरक्षण सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग को दिया जा सकता है। लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़े वर्ग को आरक्षण प्रदान किया गया है।

वर्गों को दिया गया आरक्षण उर्ध्वार्ध है जबकि महिलाओं को दिया गया आरक्षण क्षैतिज है। अर्थात् प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ अपने ही वर्ग में आरक्षण की हकदार होगी। ध्यान रहे कि महिलाओं को आरक्षण इस अनु0 के द्वारा नहीं दिया गया है क्योंकि प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत नहीं आती।

पिछड़े वर्ग को आरक्षण मण्डल रिपोर्ट के आधार पर 27% वी0 पी0 सिंह सरकार द्वारा 1990 में दिया गया। इन्दिरा साहनी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया था कि आरक्षण की सीमा 50% से अधिक नहीं हो सकती और प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जा सकता।

इसे प्रभावहीन बनाने के लिए अर्थात् SC व ST को प्रोन्नति में आरक्षण देने के लिए 77 वां संविधान संसोधन अधिनियम पारित करके संविधान में अनु0 16 (4) (क) जोड़ा गया तथा आरक्षण की सीमा 50% से अधिक बढ़ाने के लिए 81 वां संविधान संसोधन अधिनियम लाया गया और 16 (ख) जोड़ा गया।

अनुच्छेद 16 (4क) यदि राज्यों राय में सरकारी नौकरियों SC व ST का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो राज्य उन्हें प्रोन्नति में भी आरक्षण दे सकता है।

अनुच्छेद 16 (4ख) यदि पूर्व वर्ष में आयी रिक्तियां SC व ST के उम्मीदवार से नहीं भरी जाती तो आगे उन पर 50% की आरक्षण सीमा लागू नहीं होगी।

वैकलाग का विचार इसी में निहित है। यदि अनु0 16(4ख) को अनु0 16(4) के साथ मिलाकर पढ़ा जाए तो वैकलाक का अधिकार OBC को भी प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 17 इसमें भी सामाजिक समानता का ही उल्लेख है इसका उद्देश्य जात-पात के भेदभाव को समाप्त करना है। छुआछूत भारत की एक बहुत बड़ी समस्या थी इस अनु0 पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है।

इसमें कहा गया है कि अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है इसका प्रत्येक रूप में आचरण निशब्द है तथा इसका उल्लंघन विधि के अनुसार दण्डनीय अपराध होगा।

इसे व्यवहारिक रूप देने के लिए संसद ने अस्पृश्यता अपराध उन्मूलन अधिनियम 1955 पारित किया। इसे 1976 में और कठोर बनाते हुए कहा गया कि इसके भेदभाव में दोषी पाए गए व्यक्ति को चुनाव लड़ने का भी अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

अनुच्छेद 18 स्वतन्त्रता के पूर्व अंग्रेजों ने भारत में विभिन्न प्रकार की उपाधियां वितरित करके भारत को विशमतामूलक बनाया था अतः भारत में समानता लाने के लिए उपाधियों का अन्त करना आवश्यक था। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 18(1) राज्य अपने नागरिकों को विद्या या सेना सम्बन्धी उपाधि को छोड़कर अन्य कोई उपाधि नहीं देगा।

अनु0 18(2) कोई भी नागरिक विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

अनु0 18(3) कोई गैर नागरिक या विदेशी जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना विदेशों से कोई उपाधि ग्रहण नहीं करेगा।

अनु0 18(4) कोई गैर नागरिक जो कि भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद पर है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना कोई भेट या उपलब्धि स्वीकार नहीं करेगा।

बालाजी राघवन बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनु0 18 जन्म आधारित उपाधियों का निषेध करता है लेकिन कर्म आधारित उपाधियों का नहीं भारत रत्न पद्म भूषण पद्मविभूषण व पद्मश्री आदि ऐसी उपाधियों हैं जो जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित हैं ये विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान के लिए दी

जाती है अतः अनु 18 इनका निषेध नहीं करता लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इन उपाधियों का प्रयोग नाम के आगे व पीछे नहीं किया जायेगा जनता पार्टी सरकार ने 1977 में भारत रत्न आदि जैसी उपाधियों पर रोक लगा दिया लेकिन 24 जनवरी 1980 से इन्दिरा सरकार ने इसे पुनः प्रारम्भ कर दिया।

3.3.3 स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 19 से 22

स्वतन्त्रता भी फ्रांसीसी क्रान्ति की देन है। इसका दृष्टिकोण सकारात्मक है। स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य है। भारतीय संविधान के अनु0 19 से लेकर अनु0 22 तक में स्वतन्त्रता का व्यापक विश्लेषण व विवेचन किया गया है।

अनुच्छेद 19 यह भारतीय संविधान का मूल ढांचा है। यह स्वतन्त्रता केवल भारतीय नागरिकों को ही प्रदान की गयी है। अनु0 19 में वर्णित सभी स्वतन्त्रताएँ सामाजिक है। अनु0 19 में वर्णित स्वतन्त्रता आपातकाल में अनु0 358 के अन्तर्गत स्वतः निलम्बित हो जाती है। अनु0 19(1) क से लेकर अनु0 19(1) छ तक में सात स्वतन्त्रताओं का उल्लेख था लेकिन अनु0 19(1)च में वर्णित सम्पत्ति के अर्जन धारण और व्ययन की स्वतन्त्रता को निकाल देने से वर्तमान में 6 स्वतन्त्रताएँ है। प्रत्येक स्वतन्त्रता पर अनु0 19(2) से लेकर 19 (6) तक द्वारा क्रमशः युक्त 2 निर्बंधन लगाया गया है। यह निर्बंधन क्रमशः राष्ट्र की एकता व अखण्डता भारत की सम्प्रभुता सार्वजनिक हित आदि के आधार पर लगाया गया है।

अनु0 19(1)क इसमें भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का प्रावधान है। प्रेस की स्वतन्त्रता इसी अनु0 में निहित है। अनु0 19(2) के द्वारा निर्बंधन है।

अनु0 19(1)ख इसमें शान्तिपूर्ण एवं निरायुध सम्मेलन की स्वतन्त्रता का प्रावधान है इसी में जलूस निकालने का अधिकार निहित है यह धार्मिक व राजनीतिक दोनों प्रकार का हो सकता है 19(3) द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)ग इसमें संगम या संघ बनाने की स्वतन्त्रता का प्रावधान है इसी में राजनीतिक दल दबाव समूह तथा सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन बनाने का विचार निहित है 19(4) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)घ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को अवाध भ्रमण की स्वतन्त्रता प्राप्त है अनु0 19(5) के द्वारा अनुसूचित जनजाति और सार्वजनिक हित के आधार पर प्रतिबन्ध है।

अनु0 19(1)ङ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कहीं आवास बनाने निवास करने व बस जाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है 19(5) के द्वारा इस पर प्रतिबन्ध है। यह जम्मू कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होता है।

अनु0 19(1)च निरसित

अनु0 19 (1)छ भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक को कोई वृत्ति व्यापार व्यवसाय या कारोबार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। अनु0 19(6) के द्वारा सार्वजनिक हित के आधार पर इस भी प्रतिबन्ध है।

अनु0 20 इसमें अपराध की दोषसिद्धि के सम्बन्ध में संरक्षण का प्रावधान है। इसमें निम्न तीन बातें कही गयी है।

अनु0 20(1) अपराध करते समय लागू कानून के अतिरिक्त अन्य किसी कानून से व्यक्ति को सजा नहीं दी जाएगी अर्थात यह कार्योत्तर विधियों से संरक्षण प्रदान करता है।

अनु0 20(2) एक ही अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोहरा दण्ड नहीं दिया जाएगा लेकिन यदि अपराध की प्रकृति भिन्न भिन्न है तो व्यक्ति को दोहरा दण्ड दिया जा सकता है अर्थात यह दोहरे दण्ड का निषेध करता है। यह प्रावधान अमेरिका से गृहीत है।

अनु 20(3) किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध गवाहि या साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। अर्थात यह आत्म अभिसंशान का अधिकार देता है।

अनु 21 भारत राज्य क्षेत्र में राज्य किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थानपित प्रक्रिया से ही वंचित करेगा अन्यथा नहीं।

ए0 के0 गोपालन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह स्वतन्त्रता कार्यपालिका के विरुद्ध नहीं अर्थात विधायिका कानून बनाकर किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित कर सकती है।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विदेश भ्रमण की स्वतन्त्रता को दैहिक स्वतन्त्रता में निहित मौलिक अधिकार मानते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त को बढ़ावा दिया। उसके अनुसार जो कानून अरिजु रिजु, आयुक्त युक्त और न्याय सम्मत नहीं है वह अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जो स्वतन्त्रता अनु0 19 में नहीं है वह दैहिक स्वतन्त्रता में निहित है उसने प्राण शब्द की व्याख्या करमे हुए कहा कि इसका अर्थ भौतिक अस्तित्व या पशुवत अस्तित्व से नहीं है बल्कि इसका अर्थ मानवीय और गरिमापूर्ण जीवन जीना है और वे सभी बातें जो किसी व्यक्ति को ऐसा करने से रोकती है अनु0 21 के विरुद्ध है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अब तक अनु0 21 में निहित कई मौलिक अधिकारों की घोशणा कि जिसमें से कुछ निम्न है।

1. मत देने का अधिकार
2. सूचना पाने का अधिकार
3. एकान्तता का अधिकार
4. आश्रय प्राप्त करने का अधिकार
5. चुप रहने का अधिकार
6. जीविकोपार्जन का अधिकार
7. पेशान पाने का अधिकार

8. समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार

9. स्वास्थ्य का अधिकार

10. स्वच्छ जल पाने का अधिकार

11. पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा का अधिकार

12. प्राथमिक शिक्षा का अधिकार

उपर्युक्त मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा घोषित है इनका दावा तब तक नहीं कर सकते जब तक ये हमें संवैधानिक अधिकार के रूप में नहीं मिलते जैसे इन्हें हम वैधानिक अधिकार की संज्ञा दे सकते हैं।

46 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 के द्वारा प्राथमिक शिक्षा पाने के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया।

21(क) राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा।

86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2000 द्वारा संविधान के मूल कर्तव्यों के अध्याय में एक अन्य खण्ड जोड़ा गया है, क्योंकि एक नवीन अनुच्छेद 21 क जोड़कर 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बालकों के लिए शिक्षा को मूल अधिकार बना दिया गया है।

6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु के बालकों के माता पिता और प्रतिपाल्य के संरक्षकों का यह कर्तव्य होगा कि वे उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें।

वस्तुतः संविधान में उल्लेखित मूल कर्तव्य प्रवर्तनीय नहीं है। मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में अनेक उपबन्धों के माध्यम से इनके हनन होने पर संरक्षण की व्यवस्था की गयी है लेकिन मूल कर्तव्यों का पालन न करने पर किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं है यद्यपि अनुच्छेद 54 क राज्य पर अभिव्यक्त रूप से कोई मूल कर्तव्य आरोपित नहीं करता है तथापि भारत के सभी नागरिकों का कर्तव्य राज्य का सामूहिक कर्तव्य है।

रणधीर सिंह बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की प्रस्तावना में वर्णित समाजवाद को अनु0 14 व 16 के साथ मिलाकर पढ़ने पर सर्वोच्च न्यायालय ने समान करस के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को मौलिक अधिकार घोषित किया।

अनुच्छेद 22 इसमें बन्दी बनाए जाने के विरुद्ध व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किया गया है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनु0 22(1) बन्दी बनाए जाने वाले व्यक्ति को बन्दी बनाए जाने के कारणों से तत्काल अवगत कराना होगा।

अनु0 22(2) बन्दी बनाए गए व्यक्ति 24 घण्टे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष अपस्थित करना होगा और बन्दी बनाए जाने का कारण बताना होगा। इसी में कहा गया है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को अपने रुचि या मनपसन्द के वकील से परामर्श लेने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनु0 22(3) निम्नलिखित दो प्रकार से गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता

क. निवारक निरोध के अधीन गिरफ्तार किया गया व्यक्ति

ख. शत्रु देश के व्यक्ति पर

(क) निवारक निरोध किसी घटना के घटित होने के पूर्व ऐसी कार्यवाही करना जिससे वह घटना घटित न होने पाए निवारक निरोध कहलाता है। इसके अन्तर्गत गिरफ्तार किए गए व्यक्ति पर निम्न नियम लागू होता है।

(1) उसे तीन महीने तक बिना कोई कारण बताए जेल में निरूद्ध रखा जा सकता है

(2) तीन महीने बाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उसके समकक्ष व्यक्ति की अध्यक्षता में बने एक तीन सदस्यीय परामर्श दात्री बोर्ड के समक्ष उपस्थित करना होगा।

(3) पूछ ताछ के दौरान यदि उसे बोर्ड निदर्श पाता है तो रिहा करने का आदेश देगा और यदि दोषी पाता है तो उसे जेल में रखकर मुकदमा चलाया जाएगा। अब उस व्यक्ति को भी अपनी गिरफ्तारी के कारणों को जानने का अधिकार प्राप्त होगा और उसे बचाव के लिए न्यायालय में अभ्यावेदन करने का अधिकार होगा और अपने बचाव के लिए वकील से परामर्श भी ले सकता है।

6.3.4 शोशण के विरूद्ध अधिकार : अनुच्छेद 23 से 24

संविधान की प्रस्तावना में वर्णित व्यक्ति की गरिमा को बहाल करने के लिए तथा भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करने के लिए अनु0 23 व 24 को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया गया यह सरकारी व प्रावेद दोनों व्यक्तियों के विरूद्ध प्राप्त है।

अनु 23(1) मनुष्यों के क्रय विक्रय विशेषकर स्त्रियों व बच्चों के विक्रय पर रोक लगाया जाता है तथा बेगार व बालत् श्रम को निःषिद्ध घोषित किया जाता है।

अनु0 23 (2) राज्य राष्ट्रीय हित में बल पूर्वक कार्य ले सकता है जैसे अनिवार्य सेना में भर्ती का अभियान।

अनु0 24 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी कारखानों या परिसंकटमय परियोजनाओं में नहीं लगाया जाएगा।

6.3.5 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार : अनुच्छेद 28से 25

भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है लेकिन इसकी परिभाषा संविधान के किसी भी अनु0 में नहीं दी गयी है। भारतीय संविधान के अनु0 25 से लेकर 28 तक में धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकारों को व्यापक प्रावधान है यह अधिकार अल्प संख्यक व बहुसंख्यक दोनों को ही प्राप्त है। स्वास्थ्य नैतिकता व सुव्यवस्था के आधार पर भी युक्त निर्बन्धन लगाया गया है।

अनुच्छेद 25(1) भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तः करण की स्वतन्त्रता तथा किसी भी धर्म को अबाध रूप से मानने आचरण करने व प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है।

अनुच्छेद 25(2) लौकिक राजनैतिक आर्थिक व वित्तीय आधारों पर उपर्युक्त स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है हिन्दू मन्दिरों को उसके सभी वर्गों के लिए सेवा लेने का आदेश दिया जा सकता है। इसमें सिक्ख धर्म के लोग भी शामिल है जैन धर्म व बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है। मन्दिरों मस्जिदों गिरिजाघरों आदि में लगने वाले लाउडस्पीकरों पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। मन्दिरों में आने वाले चढ़ावे का उसके कर्मचारी बिन्दो के बीच वितरण पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है। कृपाण धारण करना सिक्ख धर्म का अंग है।

अनुच्छेद 26 इसमें धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। धार्मिक कार्यों की पूर्ति या प्रयोजन हेतु किसी भी संस्था की स्थापना करने या पोषण करने का अधिकार प्राप्त है। जगम(चल) व स्थावर(अचल) सम्पत्ति के अर्जन व स्वामित्व का अधिकार प्राप्त है। ऐसा प्रशासन विधि के अनुसार होगा।

अनुच्छेद 27 धार्मिक कार्यों हेतु किसी व्यक्ति को कर देने या न देने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 28 राज्य निधि द्वारा पूर्णतः पोषित किसी संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी लेकिन ऐसी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है जिनका प्रशासन तो राज्य करता है लेकिन जो किसी ऐसे धर्मस्व या ट्रस्ट के अधीन स्थापित है जिनका उद्देश्य ही धार्मिक शिक्षा देना है लेकिन ऐसी संस्थाओं के प्रार्थना सभाओं में किसी व्यक्ति को शामिल होने या न होने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता यदि व अवयस्क है तो अभिभावक की सहमति से शामिल हो सकता है।

3.3.6 सांस्कृति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार : अनुच्छेद 30से 29

यह बहुसंख्यको की हिंसा से अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए संविधान निर्माताओं ने संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया यद्यपि संविधान में अल्पसंख्यक की कोई व्याख्या नहीं की गयी है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी धार्मिक एवं भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक को स्वीकार करते हुए उसकी अस्पष्ट परिभाषा से इन्कार कर दिया। उसके बारे में एक सर्वमान्य मान्यता है कि ऐसे वर्ग पर वर्गों का समूह जिसकी जनसंख्या भारत राज्य क्षेत्र के कुल जनसंख्या से 50%कम है अल्पसंख्यक वर्ग के अन्तर्गत आते है जम्मू कश्मीर इस परिभाषा में शामिल नहीं है वहाँ हिन्दू अल्प संख्यक है। भारतीय संविधान के अनु0 29 व 30 में इसका वर्णन है।

अनुच्छेद 29(1) भारत राज्य क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों की जो भाषा संस्कृति या लिपि है उसे उन्हें बनाए रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 29(2) धर्म मूल वंश भाषा व जाति के आधार पर किसी नागरिक को किसी संस्था में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30(1) भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में या भाग के अनुभाग में प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग के नागरिकों को अपने रूचि व मनपसन्द की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करने या पोषण करने का अधिकार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 30(2) राज्य किसी संस्था को सरकारी सहायता देते समय इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगी कि यह संस्था अल्पसंख्यक वर्ग के हित में है।

3.3.7 सांविधानिक उपचारों का अधिकार: अनुच्छेद 32

यह स्वयं एक मौलिक अधिकार होते हुए अन्य मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। डॉ० अम्बेडकर ने इस पर प्रकाश डालते हुए संविधान निर्मात्री सभा में कहा यदि कोई मुझसे पूछे कि भारतीय संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है जिसे निकाल देने पर संविधान शून्य प्राय हो जाएगा तो मैं इस अनुच्छेद के सिवाय अन्य किसी का नाम नहीं लूँगा।

डॉ० अम्बेडकर ने अनु० 32 को संविधान का हृदय व आत्मा बताया। अनु० 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय का संरक्षक है और अनु० 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय संविधान का अभिभावक है।

अनुच्छेद 32 (1) व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों को क्रियान्वित करने के लिए उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है।

अनुच्छेद 32(2) इसके अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रकार के आदेश निर्देश रिटें या प्रलेख जारी कर सकता है। इसी के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय संविधान का संरक्षक है। अनु० 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय उसी प्रकार की रिटें जारी करके संविधान का अविभावक बन जाता है।

जहाँ अनु० 26 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों की रक्षा के साथ अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए भी रिटें जारी कर सकता है अर्थात् उसे विवेकाधिकार की शक्ति प्राप्त है। वहीं पर अनु० 32 (2) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय केवल मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ही रिटें जारी कर सकता है। अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए वह रिटें लंब जारी करता है जब 139(क) के अन्तर्गत संसद विधि बनाकर उसको ऐसा करने का अधिकार दे।

मूल संविधान में इस बात का प्रावधान था कि जिस व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है केवल उसी व्यक्ति के न्यायालय जाने पर न्यायालय रिटें जारी करेगा लेकिन अब जनहितवाद के सिद्धान्त के आ जाने पर ऐसा नहीं रहा।

जनहित वाद या लोकहित वाद ;

जनहित वाद का सिद्धान्त भारत ने अमेरिका से लिया है पिपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ (1978) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में बैठी संविधान पीठ ने सन् 1980 में एक निर्णय दिया जिसे जनहित वाद के नाम से जाना गया। इसमें कहा गया कि यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन या अतिक्रमण हुआ है और वह व्यक्ति न्यायालय जाने में समक्ष नहीं है, तो यदि उसका कोई मित्र या रिश्तेदार या शुभ चिन्तक एक पत्र के माध्यम से भी न्यायालय को सूचित करे तो न्यायालय उस पत्र को उसी प्रकार से स्वीकार्य करेगा जैसे रिटिपिटीशन स्वीकार की जाती है। बशर्त यह पत्र राजनीतिक भेदभाव और पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो अन्यथा वह व्यक्ति दण्ड का भागीदार भी होगा।

इस सिद्धान्त के आ जाने से न्यायपालिका ने कार्यपालिका व विधायिका के तमाम कार्यों को अवैध घोषित किया जो कि मौलिक अधिकारों के विरुद्ध थे इस लिए कुछ लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि न्यायपालिका न्यायिक सक्रियता की ओर बढ़ रही है। न्यायिक सक्रियता का संविधान में कोई उपबन्ध नहीं है, यह न्यायिक पुनरावलोकन का विस्तारित रूप है। न्यायिक सक्रियता का आधार जनहित वाद है।

अनु0 32(2) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय निम्न 5 रिटें जारी करता है ---

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण 2. परमादेश 3. प्रतिषेध 4. उत्प्रेषण 5. अधिकारपृच्छा
- बन्दी प्रत्यक्षीकरण(Habeas corpus(सशरीर प्राप्त करना))-किसी बन्दी व्यक्ति के न्यायलय के समक्ष लाकर उसके गिरफ्तारी का कारण जानना ,यदि कारण वैध नहीं है तो उसे मुक्त करना | यह रीत निवारक नजर्बंदियों पर लागू नहीं होती है
 - परमादेश (Mandamus(हम आग्या देते है))-व्यक्ति अथवा संस्था को कर्तव्य पालन के आदेश दिए जाते है (यह आदेश राष्ट्रपति और राज्यपाल को नहीं)
 - प्रतिषेध (Prohibition-मना करना)-उच्चतम तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता है जिसका उद्देश्य अधीन न्यायलय को अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कार्य करने से रोकना है
 - उत्प्रेषण (Certiorari- और अधिक सूचित होना)- तथा उच्चा न्यायलय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी किया जाता है ,जिसमे अधीनस्थ न्यायलय से वहाँ चल रहे वाद से सम्बंधित कागजात मांगे जाते है |प्रतिषेध रोग के रूप में ,उत्प्रेषण उपचार के रूप में
 - अधिकार पृच्छा –(Quo-warranto)- इस लेख द्वारा न्यायलय किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने वाले को वह कार्य करने से रोकता है ,जिसके वह कानूनी रूप से योग्य नहीं है

यहाँ हम यह भी सपष्ट करना चाहते हैं कि अनु0 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय ऐसी जारी कर सकता है |

अनुच्छेद 33

संसद विधि बनाकर सशस्त्र बलों (अर्द्धसैनिक बल) सेना बलों व पुलिस बलों के मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है ऐसा इसलिए कि उसमें परस्पर अनुशासन बना रहे जिससे वे अपने दायित्व एवं कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें।

अनुच्छेद 34

भारत राज्य क्षेत्र में या उसके किसी भाग में ऐसा विधि (मार्शल ला) लागू है तो संसद कानून बनाकर नागरिकों के मौलिक अधिकारों को स्थगित कर सकती है।

अनुच्छेद 35

मौलिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेदों को क्रियान्वित कराने के लिए संसद विधि बना सकती है इसी अनु0 के अन्तर्गत अस्पृश्यता अपराध अधिनियम जैसे कानून बने।

3.4 मूल कर्तव्य

यदि किसी सभ्य समाज के प्रमुख लक्षणों में एक है उसके नागरिकों को प्राप्त मौलिक अधिकार, जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए नितांत आवश्यक है तो दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है उसके नागरिकों के कर्तव्य। क्योंकि सभी के अधिकारों की पूर्ति तभी हो सकती है जब सभी अपने कर्तव्यों के अनुपालन के प्रति भी संवेदनशील हों।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों पर लगाया गया प्रतिबन्ध ही मौलिक कर्तव्यों की याद दिलाता है और जब कोई व्यक्ति भारत की नागरिकता ग्रहण करता है तो उसे मौलिक कर्तव्यों सम्बन्धी शपथ लेनी पड़ती है। समाजवादी देश कर्तव्यों पर अधिक बल देते हैं जबकि उदारवादी देश अधिकारों पर अधिक बल देते हैं।

मूल संविधान में मौलिक कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं था। 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में भाग 4 (क) और अनु0 51(क) जोड़ा गया और इसमें 10 मौलिक कर्तव्य रखे गये ये मौलिक कर्तव्य सम्बन्धी निर्णय स्वर्ण सिंह समिति की अध्यक्षता में लिए गए थे। ये पूर्व सोवियत संघ से लिए गये हैं। 86 वें अधिनियम द्वारा 2002 एक और मौलिक कर्तव्य जुड़ जाने से अब इनकी संख्या 11 हो गयी है।

मौलिक कर्तव्य न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है अर्थात् न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते इसके बाबजूद व्यक्ति के लिए इसका पालन करना अनिवार्य है इसका उल्लंघन होने पर संसद कानून बनाकर दण्ड निर्धारित कर सकती है।

नयी राष्ट्रीय ध्वज आचार संहिता 2002 के द्वारा यह नियम निर्धारित कर दिया गया है कि 15 अगस्त व 26 जनवरी के अलावा अन्य दिवस पर भी राष्ट्रीय ध्वज फहराया जा सकता है लेकिन वह जमीन और पानी से छुता हुआ नहीं लगाना चाहिए।

अनु 51(क) में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होगा।

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों संस्थाओं राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।
2. स्वतन्त्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।
3. भारत की प्रभुता एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसके अक्षुण्ण रखे।

4. देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान मातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।
6. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिक्षण करें।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत बन झील नदी और वन्य जीव है रक्षा करे और उसका सबर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नयी ऊचाइयों को छू ले।
11. यदि माता पिता या संरक्षक है छह वर्ष की आयु वाले अपने यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

अभ्यास प्रश्न

1. मूल संविधान में मूल अधिकारों की संख्या कितनी थी ?
2. वर्तमान समय में मूल अधिकारों की संख्या कितनी है ?
3. अनुच्छेद ३००(क) किसका प्रावधान करता है ?
4. मूल कर्तव्यों का संविधान में प्रावधान किसकी सिफारिस से किया गया है ?
5. मूल कर्तव्यों की संख्या कितनी है ?

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है। कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा जा सकती है।

किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है।

चूँकि किसी का अधिकार अन्य का कर्तव्य होता है अर्थात् अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के पहलु हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

3.6 शब्दावली

मौलिक अधिकार - वे अधिकार जो व्यक्तित्व के विकास में मूलभूत होते हैं। जिनके बिना विकास नहीं हो सकता।

निवारक निरोध - भविष्य में अपराध करने की आशंका से किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी जिससे अपराध को रोका जा सके निवारक निरोध कहलाता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 7, 2. 6, 3. संपत्ति का कानूनी अधिकार, 4. स्वर्ण सिंह समिति के सिफारिस के आधार पर, 5. 11

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम. (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली
2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी.एच. आई. लार्निंग, नई दिल्ली।
3. बसु, डी.डी. (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान
2. जैन, डॉ. पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. सिंह, डॉ. वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मौलिक अधिकार से आप क्या समझते हैं? स्वतंत्रता के अधिकार की व्याख्या कीजिये।
2. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार की विवेचना कीजिये।

इकाई .4 : राज्य के नीति निर्देशक तत्व

इकाई की संरचना

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 नीति निर्देशक तत्व
 - 4.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर
 - 4.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व
- 4.4 सारांश
- 4.5 शब्दावली
- 4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 4.9 निबन्धात्मकप्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 6 के अध्ययन के उपरान्त हम जान सके हैं कि मौलिक अधिकार हमारे व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। और ये प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है। इससे भी महत्वपूर्ण बात है कि इन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने की दशा में अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय से अधिकारों की रक्षा की जा सकती है।

किन्तु ये अधिकार असीमित नहीं है। मौलिक अधिकारों के विवेचन के साथ ही यह स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में इन पर प्रतिबन्ध आरोपित किया जा सकता है। जैसे लोक व्यवस्था, सदाचार, राष्ट्र की प्रभुसत्ता एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध आरोपित किया जा सकता है।

चूँकि किसी का अधिकार अन्य का कर्तव्य होता है अर्थात् अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के पहलु है। इस बात को ध्यान में रखते हुए 1976 में 42वें संशोधन के द्वारा मौलिक कर्तव्यों का उपबन्ध करके सन्तुलन बनाने की कोशिश की गई है।

इस इकाई 7 में हम संविधान के भाग 4 में उपबंधित राज्य के नीति निदेशक तत्वों का विस्तार से अध्ययन करेंगे | इसमें हम यह देखेंगे कि किस प्रकार से इन निदेशक तत्वों के माध्यम से एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का प्रयास किया है | यद्यपि ये निदेशक तत्व न्यायलय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं | लेकिन हम यहाँ स्पष्ट कर दें कि देश में संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया है जिसमें सरकार की जनता के प्रति निरंतर उत्तरदायित्व होता है | ऐसी स्थिति में इन निदेशक तत्वों कि अनदेखी कोई भी सरकार नहीं कर सकती है | इन्हीं पक्षों का हम अध्ययन हम इकाई के अंतर्गत करेंगे |

4.2 उद्देश्य:-

1. इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेंगे कि नीति निदेशक तत्वों को क्यों संविधान में उपबन्ध किया।
2. इसके अध्ययन से हम जान सकेंगे कि किन निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन हुआ उसके परिणाम क्या रहें
3. इसके अध्ययन से हम जान सकेंगे कि इसमें कल्याणकारी राज्य की अभिव्यक्ति होती है।
4. हम जान सकेंगे कि मूल अधिकार और नीति निदेशक तत्वों में क्या सम्बन्ध है।

4.3 नीति निर्देशक तत्व

राज्य की नीतियां क्या होनी चाहिए और कैसी होनी चाहिए इसी को बताने वाले दूसरे तत्व का नाम नीति निर्देशक तत्व है अर्थात् नीति निर्देशक तत्व के आदर्श है जिनके आधार पर राज्य अपनी नीतियां तय करते हैं नीति निर्देशक तत्व का उद्देश्य भारत में सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है।

संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व को संविधान की आत्मा के रूप में देखा था मौलिक अधिकारों का उद्देश्य एक स्वतन्त्र एवं समता मूलक समाज की स्थापना करना है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य व्यक्ति के आर्थिक जीवन में मौलिक परिवर्तन लाना है तथा ऐसी वाह्य परिस्थितियों का सृजन कर सके। मौलिक अधिकार एक साधन है और नीति निर्देशक तत्व एक लक्ष्य।

भारतीय संविधान के भाग-4 में अनु036 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्वों का व्यापक प्रावधान किया गया है। अनु0 36 व 37 नीति निर्देशक तत्व की प्रकृति बताते हैं। अनु0 38 से लेकर अनु0 51 तक में नीति निर्देशक तत्व का उल्लेख है अर्थात् मूल संविधान में इसका उल्लेख कुल 14 अनु0 में था। 42 वें अधिनियम द्वारा अनु0 39(क) अनु 43 (क) और 48 (क) जुड़ जाने से अब कुल 17 अनुच्छेद हो गया है। संविधान की प्रस्तावना में निहित आदर्शों अर्थात् सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय को इसके द्वारा प्रत्यक्ष एवं साकार रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है। अर्थात् ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते। इसे लागू करना देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों पर निर्भर है जैसे देश में भौतिक संसाधन बढ़ते जाएंगे राज्य उसे अपनी नीति का हिस्सा बनाता जाएगा। नीति निर्देशक तत्वों को पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से लागू किया जा सकता है।

संविधान निमात्री सभा में नीति निर्देशक तत्व पर बहस के दौरान इसकी आलोचना करते हुए कुछ लोगों ने इसे धार्मिक उपदेश या नैतिक शिक्षा बताया। T. कृष्णमाचारी ने इसे सच्ची भावनाओं का कूड़ादान बताया K.T. शाह के अनुसार नीति निर्देशक तत्व एक ऐसे चेक की भाँति है जिसका भुक्तान बैंक की सुविधा पर निर्भर है।

डॉ0 अम्बेडकर ने उपर्युक्त आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा कि भले नीति निर्देशक तत्वों के पीछे न्यायालय की शक्ति नहीं है लेकिन इसके पीछे सबसे बड़ी शक्ति जनमत की है। और राज्य का यह कर्तव्य होगा कि अपनी अधिकाधिक नीतियों इन्हीं तत्वों के आधार पर बनाय संविधान लागू होने से लेकर आज तक सरकार ने इसे हर सम्भव से लागू कराने का प्रयास किया है इसके बावजूद अधिकांश नीति निर्देशक तत्व की उपेक्षा हुई है।

नोट - नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक आदेश है जो कि राज्य को कुछ कार्य करने का आदेश देते हैं।

अनुच्छेद 36 इसमें राज्य शब्द की परिभाषा की गयी है और कहा गया है कि यहाँ राज्य शब्द का वही अर्थ है जो भाग 3 में है।

अनुच्छेद 37 यद्यपि नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है इसके बावजूद वे देश के शासन में मूलभूत है और राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपनी अधिकाधिक नीतियाँ इन्हीं तत्वों के आधार पर बनाए।

उपर्युक्त बातों से निम्न 2 अर्थ निकलता है-

1. ये न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराए जा सकते।

2. यहां कर्तव्य इच्छा का नहीं बल्कि अनिवार्यता का प्रतीक है।

अनुच्छेद 38 इसका उद्देश्य भारत में सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना करना है इसमें लोककल्याणकारी राज्य का विचार निहित है। इसमें निम्न प्रावधान है।

अनुच्छेद 38 (1) राज्य लोककल्याण की अभिवृद्धि के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाएगा जिसमें देश के सभी नागरिकों के सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक न्याय सुनिश्चित हो सके।

अनुच्छेद 38(2) राज्य सामान्यतः आय की असमानता को कम करने विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले तथा विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में लगे हुए वर्गों व समूहों के बीच प्रतिष्ठा सुविधाओं व अवसर की असमानता को भी कम करने का प्रयास करेगी।

इसे 44 वें अधिनियम द्वारा संविधान में जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य भारत में समाजवाद लाना है इस पर जय प्रकाश नारायण का पूर्ण प्रभाव है।

अनुच्छेद 39 इसके द्वारा भारत में आर्थिक लोकतन्त्र है कि राज्य अपनी आर्थिक नीतियों का निर्धारण निम्न प्रकार से करेगा।

अनुच्छेद 39(a) पुरुषों और स्त्रियों अर्थात् सभी कर्मकारों को अपनी जीविका प्राप्त करने का पर्याप्त साधन मिल सके।

अनुच्छेद 39(b) देश में उपलब्ध भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से बटा होना चाहिए कि वह समुदाय के पर्याप्त हित का साधन बन सके।

अनुच्छेद 39(c) देश की आर्थिक नीतियों का संचालन इस प्रकार से होना चाहिए कि उसका एक स्थान पर अहितकारी संकेन्द्र न होने पाए।

अनुच्छेद 39(d) 39 (2) व 39(3) के अन्तर्गत भारत में बैंको का राष्ट्रीकरण जमीदार उन्मूलन और प्रिंस परसेस को समाप्त किया गया।

अनुच्छेद 39(e) इसमें सभी कर्मकारों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का उल्लेख है लेकिन यदि कार्य की प्रकृति भिन्न है तो वेतन में असमानता हो सकती है।

अनुच्छेद 39(f) कर्मकारों के स्वास्थ्य व शक्ति तथा सुकुमार बालकों की अवस्था का दुरुपयोग न होने पाए तथा राज्य कोई ऐसी परिस्थिति न पैदा करे जिससे विवश होकर उन्हें किसी ऐसे रोजगार में जाना पड़े जो कि उनके आयु एवं शक्ति दोनों के विपरीत हो।

अनुच्छेद 39(ग) सुकुमार बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए गरिमामय वातावरण का सृजन किया जाए तथा सुकुमार बालकों एवं अल्पवय व्यक्तियों की आर्थिक एवं नैतिक परित्याग से रक्षा की जाए।

अनुच्छेद 39(7.1) इसमें समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किया गया है। दूसरे शब्दों में राज्य का विधिक तन्त्र इस प्रकार से कार्य करेगा कि देश के सभी नागरिकों को समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त हो सके। किसी को भी आर्थिक अयोग्यता या अन्य कारण से इससे वंचित न होना पड़े।

अनुच्छेद 40 राज्य पंचायतों का संगठन करेगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार देगा जिसमें वे एक स्वायत्त शासन की इकाई की दिशा में विकसित हो सके।

इस पर गांधी जी का पूर्ण प्रभाव है इसे 73 वें व 74 वें अधिनियम के द्वारा संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दिया गया लेकिन अभी भी पंचायतें स्वायत्त संस्था के रूप में विकसित नहीं हो सकीं हैं वे

आर्थिक रूप से विपन्न हैं पंचायतें भी राज नीति का अखाड़ा बनती जा रहीं हैं अज्ञानता और अशिक्षा पंचायती राज के विकास में बाधक है।

अनुच्छेद 41 राज्य विकास एवं क्षमता की सीमा भीतर कुछ मामलों में काम पाने शिक्षा पाने बेकारी अंगहानि तथा इसी प्रकार की अन्य अयोग्यता होने पर राज्य उसे दूर करने का प्रयास करेगा।

इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में डवा आगनबाड़ी, प्रौढ़ शिक्षा, सर्वशिक्षा अभियान आपरेशन बोर्ड योजना राष्ट्रीय एड्स नीति विकलांगों को छात्रवृत्ति एवं रिकशा तथा वृद्धावस्था पेंशन जैसे कार्यक्रम चलाए।

अनुच्छेद 42 राज्य काम की न्यायसंगत तथा मान्योचित दशा में सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा प्रसूति सहायता उपलब्ध करायेगा।

अनुच्छेद 43 राज्य उद्योगों में लगे हुए कर्मचारियों के उचित वेतन शिष्ट जीवन स्तर काम के घंटे आदि को सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा तथा इसी में कहा गया है। राज्य ग्रामीण कुटीर उद्योगों को सहकारी एवं व्यक्ति प्रोत्साहन भी देगा।

अनुच्छेद 43 (क) उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मचारियों के भाग लेने व्यवस्था का प्रावधान। इसे 42 वें अधिनियम के द्वारा संविधान में जोड़ा गया।

अनुच्छेद 44 इसमें कहा गया है कि भारत के सभी नागरिकों के लिए एक समान आचार संहिता होनी चाहिए। धर्म निरपेक्षता को व्यवहारिक रूप देने के लिए इसे संविधान में शामिल किया गया है लेकिन राजनीतिक कारणों से इसे अभी तक लागू नहीं किया जा सका। हिन्दूओं के लिए हिन्दू विवाह उत्तराधिकार अधिनियम व दहेज निषेध जैसे कानून बने हैं लेकिन मुसलमानों के लिए ऐसा कोई कानून नहीं है सहबानों के केस में न्यायालय ने इसे लागू कराने की बात कही थी राजीव गांधी ने 1986 में ऐसा कानून बनवाया भी था लेकिन मुसलमानों के व्यापक विरोध के कारण सरकार ने इसे समाप्त कर दिया।

अनुच्छेद 45 संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करेगा

86वें अधिनियम के द्वारा इसे मौलिक अधिकार बनाकर इसे 21(क) में रख दिया गया है और इसके स्थान पर अनु0 45(क) जोड़ा गया है।

अनुच्छेद 45(क) राज्य 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर विशेष ध्यान देगा।

अनुच्छेद 46 राज्य के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक एवं शैक्षिक हितों को बढ़ावा देगा तथा समाज के शोषण और अन्याय से उनकी रक्षा करेगा।

इस पर डॉ0 अम्बेडकर का प्रभाव है इसे क्रियान्वित करने के लिए SC व ST को निःशुल्क कोचिंग संस्थान छात्रवृत्ति प्रतियोगी परिक्षाओं के फार्म में भारी छूट तथा हरिजन एक्ट जैसे कानून का प्रावधान किया गया है।

अनुच्छेद 47 राज्य लोगों के पोषाहार स्तर व जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा औशधीय प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाली औशधि को छोड़कर शेष मादक एवं पेय पदार्थों पर प्रतिबन्ध लगायेगा। इसे राजनीतिक कारणों से अभी तक लागू नहीं किया जा सका।

अनुच्छेद 48 राज्य कृषि और पशुपालन का आधुनिक और वैज्ञानिक तरीके से बढ़ावा देगा तथा गायों बछड़ों दुधारू पशुओं वाहक पशुओं के नस्लों को सुधारने का प्रयत्न करेगा तथा इनके बंध आदि पर प्रतिबन्ध लगायेगा।

इसे क्रियान्वित करने के लिए भारत में हरित क्रान्ति पीली क्रान्ति, नीली क्रान्ति राष्ट्रीय कृषि नीति जैव प्रौद्योगिकी नीति सुधार कार्यक्रम, कृषि विश्व विद्यालयों की स्थापना तथा नये किस्म के बीज एवं खाद्य का निमार्ण आदि हुआ। कई राज्यों ने गोवध आदि पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कानून भी बनाए।

अनुच्छेद 48(क) राज्य पर्यावरण का संरक्षण एवं संवर्धन करेगा। तथा वन एवं वन्य जीवों की रक्षा करेगा। इसको क्रियान्वित करने के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम वन्य जीव संरक्षण अधिनियम तथा राष्ट्रीय वन्य नीति जैसे कानून बनाये गए।

अनुच्छेद 49 राज्य संसद द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व के स्मारक कलात्मक वस्तुओं और ऐतिहासिक घरोहरों की लुन्ठन विरूपण एवं विकृति से रक्षा करेगा।

अनुच्छेद 50 इसमें कहा गया है कि कार्यपालिका व न्यायपालिका के बीच कार्यों में पृथक्करण होगा। आज भी इसे क्रियान्वित नहीं किया जा सका प्रायः यह देखा जाता है कि कार्यपालिका के बहुत से ऐसे कार्य हैं जो न्यायपालिका करती नजर आती है और न्यायपालिका के कार्य कार्यपालिका करती नजर आती है।

अनुच्छेद 51 राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रयत्न करेगा। आपसी विवादों को द्विपक्षीय वार्ता से निपटाएगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि कानूनों एवं वृहयताओं का पालन करेगा।

इस पर पं० नेहरू का प्रभाव है इसमें भारत की विदेश नीति का उल्लेख है इसे लागू करने के लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी पंचशील समझौता किया संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था व्यक्त किया। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध किया और निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया।

4.3.1 मौलिक अधिकार व नीति निर्देशक तत्व में अन्तर

1. मौलिक अधिकार राज्य के लिए नकारात्मक आदेश है अर्थात ये राज्य के कुछ कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाते है जबकि नीति निर्देशक तत्व राज्य के लिए सकारात्मक है अर्थात राज्य को कुछ कार्य करने के लिए आदेश देते है।
2. मौलिक अधिकार वाद योग्य है अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व वाद योग्य नहीं है अर्थात यह न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है।
3. मौलिक अधिकार निरंकुश व सीमित है इन पर आपात काल में प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्व निरंकुश और असीमित है इन पर कभी प्रतिबन्ध लगाया नहीं जा सकता।
4. मौलिक अधिकारों का स्वरूप केवल राष्ट्रीय है जबकि नीति निर्देशक तत्वों का स्वरूप राष्ट्रीय के साथ अन्तराष्ट्रीय भी है।

4.3.2 मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक तत्व

मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक तत्व के बीच विवाद सर्वप्रथम चम्पाकम दोरार्ई राजन बनाम मद्रास राज्य के मामले में सन् 1951 में आया इस मामले में न्यायालय ने कहा मौलिक अधिकार वाद योग्य है अर्थात न्यायालय द्वारा लागू कराया जा सकता है जबकि नीति निर्देशक तत्वों के साथ ऐसी कोई बात नहीं है इसलिए मौलिक अधिकार को नीति निर्देशक तत्व पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लगभग यही बात केशव सिंह बनाम विहार राज्य व सज्जन कुमार बनाम राजस्थान राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा।

गोलकानाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा कि अनु० 368 के अन्तर्गत संसद को मौलिक अधिकारों में संसोधन करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। यह निर्णय 9 न्यायाधीशों की संविधान ने 5:4 के बहुमत से दिया था।

1971 में संसद ने 24 वां 25वां अधिनियम पारित किया। 24 अधिनियम में यह प्रावधान किया गया कि संसद को अनु० 368 के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग में संसोधन करने की असीमित शक्ति प्राप्त है और 25 वें अधिनियम द्वारा संविधान में अनु० 31 (ग) जोड़ते हुए यह प्रावधान कर दिया गया कि अनु० 39 (b) और 39(c) को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्राप्त है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 24वें व 25 वे अधिनियम पर सुनवायी करते हुए दोनों को वैध ठहराया लेकिन 24 वें के सन्दर्भ में कहा कि वह संविधान के मूल ढांचे को नष्ट न करता हो पहली बार इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल ढांचे शब्द का प्रतिवादन किया संविधान का मूल ढांचा का आधार न्यायिक निवचन है। केशवानन्द भारती के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में अब तक की सबसे बड़ी संविधान पीठ 13 न्यायाधीशों की बैठी थी जिसमें 7:6 के अनुपात से निर्णय हुआ।

1976 में 42 वां अधिनियम पारित किया गया जिसमें कहा गया कि अनु0 368 के अन्तर्गत संसोधन का असीमित अधिकार है और इसकी संवैधानिक वैधता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती तथा ये कहा कि सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की जाती है।

42 वें अधिनियम पर सुनवायी करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ 1980 के मामले में 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें कहा गया था कि इसकी वैधता को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायिक पुनरावलोकन संविधान का मूल ढाँचा है और 42 वें अधिनियम के उस भाग को अवैध घोषित कर दिया जिसमें सभी नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता प्रदान की गयी थी। 25 वे अधिनियम को वैध ठहराते हुए केवल अनु0 39(b) और अनु0 39(c) को ही मौलिक अधिकार पर प्राथमिकता बताया।

अभ्यास प्रश्न

1. राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं समृद्धि को बढ़ावा देने का प्रत्यन करेगा। यह प्रावधान किस अनुच्छेद में है ?
2. भारतीय संविधान के किस भाग में नीति निर्देशक तत्वों का प्रावधान किया गया है ?
3. सभी कर्मकारों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन का उल्लेख है किस अनुच्छेद में है ?
4. अनुच्छेद 39 समान न्याय एवं निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान किस अनुच्छेद में किया गया है ?
5. पंचायतों के गठन का निर्देश किस अनुच्छेद में किया गया है ?

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन में हमने यह पाया है कि किस प्रकार से किस प्रकार से संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के प्रावधान के साथ नीति निर्देशक तत्व का प्रावधान किया है। जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि यद्यपि यह न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है अर्थात् सरकार के द्वारा इसके अनुपालन में कार्य न करने पर हम इसको लागू करवाने के लिए न्यायालय में नहीं जा सकते हैं। लेकिन यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है जिसमें सरकार निरंतर जनता के प्रति उत्तरदाई होती है। आज तो मीडिया की अत्यंत जागरूकता के फलस्वरूप सरकार की प्रत्येक गतिविधि की खबर जनता को तुरंत होती रहती है। और नियतकालिक चुनाव में पुनः जनता के जनता के समक्ष जाना होता है समर्थन के लिए। इसलिए जनता की भलाई और कल्याण के लिए जो प्रावधान किये गए हैं उनकी अनदेखी सरकार नहीं कर सकती है। जैसा कि पंचायतों का गठन और महिलाओं और बच्चों तथा समाज के पिछड़े वर्गों के लिए भी नीतियां बनाकर उनका क्रियान्वयन किया जा रहा है। इस प्रकार से ये नीति निर्देशक तत्व यद्यपि न्यायालय द्वारा तो प्रवर्तनीय नहीं हैं परन्तु शासन का जनता के प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धांत के कारण इनके क्रियान्वयन का दबाव निरंतर शासन पर बना रहता है जिसकी वह अनदेखी नहीं कर सकते हैं।

4.5 शब्दावली

कल्याणकारी राज्य - जिस राज्य के द्वारा समाज के कमजोर वर्ग को वे सुविधाएं प्रदान की जाती हैं, जिन्हें समक्ष लोग स्वयं प्राप्त करते हैं।

सामाजिक न्याय - समाज के सबसे निचले पायदान पर रहने वाले को प्राथमिकता के आधार पर बिना की जाति धर्म के भेद भाव किये आवश्यक सेवाएं प्रदान करना है।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अनुच्छेद 51, 2. भाग-4, 3. अनुच्छेद 39(e) 4. अनुच्छेद 39 5. अनुच्छेद 40

4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लक्ष्मीकांत, एम. (2013) भारत की राजव्यवस्था टाटा मैग्रा प्रकाशन, नई दिल्ली
2. शर्मा, ब्रज किशोर (2009) भारत का संविधान एक परिचय पी.एच.आई. लार्निंग, नई दिल्ली।
3. बसु, डी.डी. (2000) भारत का संविधान एक परिचय, नई दिल्ली।
4. मंगलानी, डॉ. रूपा – भारतीय शासन और राजनीति

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बेयर एक्ट, भारत का संविधान
2. जैन, डॉ. पुखराज (2011) पाश्चात राजनीति चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. सिंह, डॉ. वीरकेश्वरप्रसाद (2006) विश्व के प्रमुख संविधान, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नीति निदेशक तत्व राज्य को कल्याणकारी राज्य बनाने लिए किया गया भागीरथ प्रयास है। स्पष्ट कीजिये।
2. नीति निदेशक तत्व और मौलिक अधिकारों में अंतर करते हुए, भारत में इनके महत्व की विवेचना कीजिये।

इकाई 5 राष्ट्रपति , उपराष्ट्रपति

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 राष्ट्रपति

5.3.1 राष्ट्रपति का निर्वाचन

5.4 राष्ट्रपति की शक्तियाँ

5.4.1 कार्यपालिका शक्तियाँ

5.4.2 विधायी शक्तियाँ

5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ

5.4.4 सैनिक शक्तियाँ

5.4.9 न्यायिक शक्तियाँ

5.4.6 आपात कालीन शक्तियाँ

5.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

5.6 उपराष्ट्रपति

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप को ,भारतीय प्रशासन के विभिन्न पक्षों के बारे में जानने में सहायता मिली है । प्रस्तुत इकाई में हम भारत में संघ के कार्यपालिका के प्रमुख ,राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे । इसके अध्ययन से हम राष्ट्रपति के निर्वाचन ,उनकी शक्तियों और उनकी संवैधानिक स्थिति तथा वास्तविक स्थिति के बारे में भी जान सकेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से हमें आगे की इकाइयों में प्रधानमन्त्री सहित मन्त्रिपरिषद के वास्तविक कार्यपालिका प्रधान के रूप में ,समझने में सहायता मिलेगी । साथ ही संसदीय शासन की परम्परा में राष्ट्रपति पद के महत्व को और भी स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलेगी ।

5.2 उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन से आप राष्ट्रपति के बारे में जान सकेंगे-

- 1.इस इकाई के अध्ययन के बाद आप राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के बारे में जान सकेंगे।
- 2.राष्ट्रपति की शक्तियों को जान सकेंगे।
- 3.आप यह जान सकेंगे कि वह कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान ही नहीं है ।

5.3 राष्ट्रपति -

शासन के तीन अंग होते हैं। जो क्रमशः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। व्यवस्थापिका का सम्बन्ध कानून निर्माण से है, कार्यपालिका का सम्बन्ध व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों और नीतियों के क्रियान्वयन से है, जबकि न्यायपालिका का सम्बन्ध न्यायिक कार्यों से है।

संघ की कार्यपालिका के शीर्ष पर राष्ट्रपति होता है। चूँकि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है (नाममात्र की कार्यपालिका) फिर भी उनके पद को सत्ता और गरिमा से युक्त किया गया है। वह राज्य के शक्तिशाली शासक हाने की अपेक्षा, भारत की एकता के प्रतीक हैं। उनकी स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है, फिर भी शासन में उनका पद एक धुरी के समान है जो संकट के समय संवैधानिक तंत्र को संतुलित कर सकता है।

5.4 राष्ट्रपति का निर्वाचन -

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक गणतन्त्र है। गणतन्त्र में राष्ट्र का अध्यक्ष वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से होता है।

योग्यता - राष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

- 1- वह भारत का नागरिक हो
 - 2- वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो ,
 - 3- वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो ,
 - 4- वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो,
 - 9- राष्ट्रपति ,उपराष्ट्रपति ,राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते ,इसलिए उन्हें त्याग पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती।
- अनु. 94 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते हैं जिसमें --

1. संसद के दोनो सदस्य (लोकसभा, राज्यसभा) के निर्वाचित सदस्य।
2. राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे।

राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान के 71वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि पाण्डिचेरी और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली की विधानसभाओं के सदस्य, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल में शामिल किये जायेंगे।

1997 के राष्ट्रपति चुनाव में कुछ स्थान रिक्त होने पर राष्ट्रपति के चुनाव की वैधता को चुनौती दी गई। न्यायालय ने अपने निर्णय में ऐसी स्थिति में भी चुनाव संभव बताया। इस समस्या के निराकरण हेतु 1961 में 11वें संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 71 में उपबन्ध किया गया है कि निर्वाचक मंडल का स्थान रिक्त होने पर भी चुनाव वैध है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन ऊपर वर्णित निर्वाचन मण्डल द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है अनु 99(3)। मतदान गुप्त होता है। इस पद्धति में चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्यासी को न्यूनतम कोटा प्राप्त करना होता है। न्यूनतम काटा निर्धारण का सूत्र इस प्रकार है-

दिये गये मतों की संख्या

$$\text{न्यूनतम कोटा} = \frac{\text{दिये गये मतों की संख्या}}{\text{निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या}} + 1$$

निर्वाचित होने वाले प्रत्याशियों की संख्या

राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचन मण्डल के सदस्यों के मतों का मूल्य समान नहीं होता है। कुछ राज्यों की विधानसभाओं के सदस्य अधिक जनसंख्या का और कुछ कम जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस लिए विधान सभा सदस्य के मत का मूल्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में होता है। साथ ही राष्ट्रपति के चुनाव में केन्द्र और राज्य को बराबर की हिस्सेदारी देने के लिए सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधानसभाओं के समस्त सदस्यों के मत मूल्य और संसद के सभी निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य बराबर रखने पर जोर दिया जाता है। जिससे राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का शिकार न हो और वह राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि हो सके।

मत मूल्य निकालने का तरीका -

विधान सभा के एक सदस्य के

राज्य की जनसंख्या

मत का मूल्य =

$\frac{\text{कुल विधायकों की संख्या} \times 100}{\text{सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों}}$

सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों

संसद सदस्य के एक मत का मूल्य = $\frac{\text{विधानसभा सदस्यों के मतों का मूल्य}}{\text{संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या}}$

संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या

राष्ट्रपति के निर्वाचन में उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित किया जाता है जो न्यूनतम कोटा अर्थात् आधे से अधिक मत प्राप्त करे। राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितने प्रत्याशी होते हैं, मतदाता को उतने मत देने का अधिकार होता है। मतदाता अपना मत वरीयता क्रम के आधार पर देता है। जैसे

।

	प्रत्याशी	A	B	C	D
मतदाता	P	1	3	2	4
	G	2	1	3	4
	R	4	1	2	3
	S	3	1	2	4
	T	2	3	1	4

इस आरेख में चार प्रत्याशी A, B, C, D, है मतदाता P, G, R, S, T हैं जिन्होंने अपने मत वरीयता के आधार पर राष्ट्रपति प्रत्याशी को दिये हैं। सर्वप्रथम प्रथम वरीयता के मत की गणना की जाती है। यदि उसे न्यूनतम कोटा प्राप्त हो जाय तो वह विजयी घोषित होता है। यदि कोटा न प्राप्त हो सके तो द्वितीय वरीयता के मत की गणना होती है। इस द्वितीय दौर में जिस उम्मीदवार को प्रथम वरीयता का सबसे कम मत मिला हो उसे गणना से बाहर कर, उसके द्वितीय वरीयता के मतमूल्य को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय दौर की गणना में किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो तीसरे दौर की मतगणना होती है, जिसमें दूसरे दौर की मतगणना में सबसे कम

मतमूल्य पाने वाले प्रत्याशी के तीसरे वरीयता के मतमूल्य को शेष उम्मीदवारों को स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक अपनायी जाती है जब तक किसी प्रत्याशी को न्यूनतम कोटा न प्राप्त हो जाय।

अभ्यास प्रश्न रा-1-शर्द्धपति के चुनाव में कौन कौन भाग लेता है?

-2 राष्ट्रपति का कार्यकाल कितने वर्ष का होता है?

-3 राष्ट्रपति पर महाभियोग किस अनुच्छेद के तहत लगाया जाता है?

राष्ट्रपति द्वारा शपथ - राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व अनुच्छेद 60 के तहत भारत के मुख्य न्यायाधीश या उनकी अनुपस्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के समक्ष अपने पद की शपथ लेता है।

राष्ट्रपति की पदावधि -संविधान के अनुच्छेद 96 के अनुसार राष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से, पाँच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पाँच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह उपराष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व संविधान के उल्लंघन क लिए संसद द्वारा महाभियोग से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति अपने पाँच वर्ष के कार्यकाल पूर्ण होने के बाद तक अपने पद पर बना रहता है जब तक कि इसके उत्तराधिकारी द्वारा पद ग्रहण न कर लिया जाए।

उन्मुक्तियाँ - राष्ट्रपति अपने कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होता है। अपने पद के कर्तव्यों एवं शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उनके संबन्ध में उसके विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाला जा सकता है।

वेतन - राष्ट्रपति को इस समय 190000 रु/ माह वेतन है। अनुच्छेद 99(3) अनुसार कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और उपलब्धियों में किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया - राष्ट्रपति को अनुच्छेद 61के अनुसार महाभियोग प्रक्रिया द्वारा, संविधान के अतिक्रमण के आधार पर हटाया जा सकता है। संसद के जिस सदन में महाभियोग का संकल्प प्रस्तुत किया गया हो, उसके एक चौथाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर सहित आरोप पत्र राष्ट्रपति को 14 दिन पूर्व दिया जाना आवश्यक है। इस सदन में संकल्प को दो तिहाई बहुमत से पारित करके दूसरे सदन को भेजा जाएगा जो राष्ट्रपति पर लगे इन आरोपों की जाँच करेगा। इस दौरान राष्ट्रपति स्वयं या अपने प्रतिनिधि के द्वारा अपना पक्ष रख सकता है। यदि दूसरा सदन आरोपों को सही पाता है और उसे अपनी संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राष्ट्रपति पद त्याग के लिए बाध्य होता है।

5.9 राष्ट्रपति की शक्तियाँ -

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक शक्तिया प्रदान की गयी हैं, जो निम्नलिखित है -

5.9.1 -कार्यपालिका शक्तियाँ -

संविधान के अनुच्छेद 93(1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इस शक्ति का प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति अपने शक्तियों का प्रयोग करने में मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करेगा। इसके आगे संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा यह जोड़ा गया कि यदि मंत्रिपरिषद की सलाह पर राष्ट्रपति पुनर्विचार करने को कह सकेगा, परन्तु राष्ट्रपति, ऐसे पुनर्विचार के पश्चात दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। राष्ट्रपति की कार्यपालिका संबन्धी शक्तियों में मंत्रिपरिषद का गठन महत्वपूर्ण है। संसदीय परम्परा के अनुरूप निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल के नेता को राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करता है तथा प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। अब तक नियुक्त अधिकांश प्रधानमंत्री लोकसभा के सदस्य रहे हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी पहली ऐसी प्रधानमंत्री थी जो राज्यसभा से मनोनीत सदस्य थी। वर्तमान प्रधानमंत्री डा मनमोहन सिंह भी राज्यसभा

सदस्य हैं। संविधान के 91वें संशोधन 2003 द्वारा अनुच्छेद 79(1-क) के अनुसार मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करते हैं। अनुच्छेद 79(3) के अनुसार, मंत्रिपरिषद के सदस्य, सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अनुच्छेद 79(9) के अनुसार, कोई भी मन्त्री, निरन्तर छः मास तक संसद के किसी सदन का सदस्य हुए बिना भी मन्त्री रह सकता है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि, जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिले अथवा लोकसभा में अविश्वास मत के कारण, मन्त्रिपरिषद को त्यागपत्र देना पड़े, ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति किस व्यक्ति को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करे, इस सम्बन्ध में संविधान मौन है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को स्वविवेकाधिकार प्राप्त है। इस संबंध में संसदीय परम्परा के अनुरूप सर्वप्रथम सबसे बड़े दल के नेता तथा जो बहुमत सिद्ध कर सकता है उसे प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त करते हैं।

इसके साथ-2 राष्ट्रपति को संघ के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्ति की शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति, नियन्त्रक-महालेखक की नियुक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति, राज्यपाल की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य की नियुक्ति, मुख्य निर्वाचन आयोग और निर्वाचन आयोग के अन्य सदस्य की नियुक्ति, अनुसूचित जातियों जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति, भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति।

ये सभी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रिपरिषद की सलाह पर या संविधान द्वारा निश्चित व्यक्तियों से परामर्श के पश्चात् की जाती है। राष्ट्रपति को उपर्युक्त अधिकारियों को हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

5.9.2.विधायी शक्तियाँ -

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संसद का गठन राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा से मिलकर होता है। इस प्रकार संसद का महत्वपूर्ण अंग होने के नाते राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। कोई भी विधेयक संसद के दोनों सदनों (लोकसभा, राज्यसभा) द्वारा पारित होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही अधिनियम का रूप लेता है।

संसद का अंग होने के नाते राष्ट्रपति को लोकसभा और राज्यसभा का सत्र आहूत करने और उसका सत्रावसान करने की शक्ति है। अनुच्छेद 89 के अनुसार वह लोकसभा का विघटन कर सकता है। अनुच्छेद 108 के अनुसार वह साधारण विधेयक पर दोनों सदनों में विवाद होने पर संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। अनुच्छेद 87 के अनुसार राष्ट्रपति प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् प्रथम सत्र के प्रारम्भ पर और प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र के प्रारम्भ पर, एक साथ संसद के दोनों सदनों में अभिभाषण करता है। इसके अतिरिक्त किसी एक सदन या दोनों सदनों में एक साथ अभिभाषण करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य, कला, विज्ञान, या समाजसेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हों और अनुच्छेद 331 के अनुसार लोकसभा में दो सदस्यों को आंग्लभारतीय समुदाय से मनोनीत कर सकता है।

संविधान के उपबन्धों और कुछ अधिनियमों का अनुपालन करने के लिए, राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि कुछ प्रतिवेदनों को संसद के समक्ष रखवायेगा। इसका उद्देश्य यह है कि संसद को उन प्रतिवेदनों और उस पर की गयी कार्यवाही पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो जाएगा। राष्ट्रपति का यह कर्तव्य है कि निम्नलिखित प्रतिवेदनों और दस्तावेजों को संसद के समक्ष रखवाए --

- 1- अनुच्छेद 112 के अनुसार -वार्षिक वित्तीय विवरण (बजट)
- 2- अनुच्छेद 191 के अनुसार -नियन्त्रक महालेखक का प्रतिवेदन
- 3- अनुच्छेद 281 के अनुसार - वित्त आयोग की सिफारिशें
- 4- अनुच्छेद 323 के अनुसार -संघ लाकसेवा आयोग का प्रतिवेदन
- 9- अनुच्छेद 340 के अनुसार - पिछड़ा वर्ग आयोग का प्रतिवेदन
- 6- अनुच्छेद 348 के अनुसार -राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग का प्रतिवेदन

7-अनुच्छेद 394 क के अनुसार -राष्ट्रपति अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए .भारतीय संविधान के अंग्रेजी भाषा में किए गये प्रत्येक संशोधन का हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करायेंगा । इसके अतिरिक्त कुछ विशयों पर कानून बनाने के लिए .उस पर राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति आवश्यक है। जैसे-

अनुच्छेद 3- के अनुसार -नये राज्यों के निर्माण या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन से संबंधित विधेयकों पर । अनुच्छेद 117(1)-धन विधेयकों के संबंध में । अनुच्छेद 117(3) ऐसे व्यय से संबंधित विधेयक. जो भारत की संचित निधि से किया जाना हो । अनुच्छेद 304 के अनुसार-राज्य सरकारों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता पर प्रभाव डालते हों ।

इस बात का हम उल्लेख कर चुके हैं कि संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक कानून तब तक नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति न प्रदान करें । राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति दे सकता है. विधेयक को रोक सकता है या दोनों सदनों द्वारा पुनर्विचार के लिए वापस कर सकता है । यदि संसद पुनर्विचार के पश्चात विधेयक को राष्ट्रपति को वापस करती है, तो वह अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्य है । यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकता है क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही लोकसभा में रखा जाता है ।

2006 में लाभ के पद से संबंधित संसद अयोग्यता निवारण संशोधन विधेयक लोक सभा और राज्यसभा द्वारा पारित होने के पश्चात राष्ट्रपति के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रपति ए.पी.जे.कलाम ने पुनर्विचार के लिए .यह कहते हुए वापस कर दिया कि संसदों और विधायकों को लाभ के पद के दायरे से बाहर रखने के व्यापक आधार बताएँ जँय । संसद के दोनों सदनों ने इसे पुनः मूल रूप में ही पारित कर दिया । यह पहला अवसर था कि राष्ट्रपति की आपत्तियों पर विचार किए विना ही विधेयक को उसी रूप में पारित कर दिया गया । राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के संबंध में भी राष्ट्रपति को विभिन्न शक्तियाँ प्राप्त हैं -

1-राज्य विधानमंडल द्वारा पारित ऐसा विधेयक जो उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है तो राज्यपाल उस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित कर लेगा ।

2-वित्तीय आपात काल लागू होने की स्थिति में .राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकता है कि राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किये जाने से पूर्व सभी धन विधेयकों पर उसकी अनुमति ली जाय ।

3-सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर .राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है ।

4-राज्य के अन्दर या अन्य राज्यों के साथ व्यापार पर प्रतिबंध लगाने वाले विधेयकों को विधानसभा में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है ।

अध्यादेश जारी करने की शक्ति -

जब संसद सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान परिस्थिति में यथाशीघ्र कार्यवाही की आवश्यकता है तो. वे अनुच्छेद 123 के अनुसार अध्यादेश जारी करते हैं। इस अध्यादेश का प्रभाव संसद द्वारा पारित और राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत अधिनियम के समान ही होता है । किन्तु अधिनियम स्थायी होता है और अध्यादेश का प्रभाव केवल छः माह तक ही रहता है । छः माह के अन्दर यदि अध्यादेश को संसद की स्वीकृति न प्राप्त हो तो वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगा ।

वीटो (निषेधाधिकार) की शक्ति - यह कार्यपालिका की शक्ति है जिसके द्वारा वह किसी विधेयक को अनुमति देने से रोकता है। अनुमति देने इन्कार करता है या अनुमति देने में विलम्ब करता है । वीटो के कई प्रकार हैं -

1-आत्यंतिक वीटो या पूर्ण वीटो -यह वह वीटो है जिसमें राष्ट्रपति ससद द्वारा पारित किसी विधेयक को अनुमति देने से इन्कार कर देता है । पूर्ण वीटो का प्रयोग धन विधेयक के संबंध में नहीं किया जा सकता क्योंकि धन विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति से ही लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है ।

2-निलम्बनकारी वीटो -

जिस वीटो को सामान्य बहुमत से समाप्त किया जा सकता है उसे निलम्बनकारी वीटो कहा जाता है। इस प्रकार के वीटो का प्रयोग हमारे राष्ट्रपति उस समय करते हैं जब अनुच्छेद 111 के अनुसार वे किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस करते हैं।

3-पाकेट वीटो या जेबी वीटो -संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति न तो अनुमति देता है और न ही पुनर्विचार के लिए वापस करता है, तब वह जेबी वीटो का प्रयोग करता है। हमारे संविधान में यह स्पष्ट उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति कितने समय के भीतर विधेयक को अपनी अनुमति देगा। फलतः वह विधेयक को अपनी मेज पर अनिश्चित काल तक रख सकता है। जेबी वीटो का प्रयोग 1986 में संसद द्वारा पारित भारतीय डाक अधिनियम के संदर्भ में राष्ट्रपति ज्ञानीजैल सिंह ने किया था।

5.4.3 राजनयिक शक्तियाँ -

यहाँ हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इक्कीसवीं शदी में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रक्रिया ने एक राष्ट्र के हित को विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ जोड़ दिया है। राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों का संचालन राजनय के द्वारा होता है। हमारे देश में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों के संचालन की शक्ति भी राष्ट्रपति को प्रदान की गयी है। इस लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संबंधों का संचालन राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले में वे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत की ओर से भेजे जाने वाले राजदूत की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करते हैं। दूसरे देशों से भारत में नियुक्त होने वाले राजदूत और उच्चायुक्त अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परन्तु इन सभी विशयों में राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार कार्य करता है।

5.4.4 सैनिक शक्तियाँ -

जैसा कि हम इस इकाई में पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि संध की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित है। इसी कारण से वह तीनों सेनाओं का प्रधान सेनापति है। किन्तु हमारे राष्ट्रपति की सैन्य शक्तिया अमेरिका के राष्ट्रपति के समान नहीं है क्यों कि ये अपनी शक्तियों के प्रयोग संसद द्वारा निर्मित कानूनों के अनुसार करते हैं. जब कि अमेरिका के राष्ट्रपति पर इस प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं है।

5.4.9 न्यायिक शक्तियाँ-

हमारे संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को व्यापक रूप से न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो निम्नलिखित हैं -

- 1- न्यायाधीशों की नियुक्ति--अनुच्छेद 217 के अनुसार राष्ट्रपति उच्च न्यायालय और 124 के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करते समय वह उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश से परामर्श कर सकते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करते हैं।
- 2- क्षमादान की शक्ति—राष्ट्रपति को कार्यपालिका और विधायी शक्तियों के साथ-साथ न्यायिक शक्तियाँ- भी प्राप्त हैं , जिनमें क्षमादान की शक्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो अनुच्छेद 72 के अनुसार प्राप्त है। वे इस क्षमादान की शक्ति के तहत किसी दोषी ठहराये गये व्यक्ति के दण्ड को क्षमा तथा सिद्ध दोष के निलंबन. परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में करते हैं -सेना द्वारा दिये गये दण्ड के मामले में..जब दण्ड ऐसे विशयों के मामले में दिया गया हो जो संघ के कार्यपालिका क्षेत्र में आते हों। ऐसी परिस्थिति में जब किसी व्यक्ति को मृत्यु दण्ड दिया गया हो। क्षमादान की शक्ति का प्रयोग भी वह मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार करता है।

क्षमादान की इस शक्ति को देने के पीछे सोच यह है कि न्यायाधीश भी मनुष्य होते हैं। इस लिए उनके द्वारा की गयी किसी भूल को सुधारने की गुंजाइस बनी रहे।

3--उच्चतम न्यायालय से परामर्श लेने का अधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार .यदि राष्ट्रपति को ऐसा कभी प्रतीत होता है कि विधि या तथ्य का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है या उत्पन्न होने की संभावना है जो ऐसी प्रकृति और व्यापक महत्व का है तो उस पर उच्चतम न्यायालय से राय मांग सकता है। इस प्रकार की राय राष्ट्रपति पर बाध्यकारी नहीं होती है। इसके साथ-साथ उच्चतम न्यायालय को. यदि वह आवश्यक समझे तो .अपनी राय देने से इन्कार कर सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति को अन्य अधिकार प्राप्त है -जैसे- संविधान के अनुच्छेद 130 के अनुसार ,यदि सर्वोच्च न्यायालय अपना स्थान दिल्ली के बजाय किसी अन्य स्थान पर स्थानान्तरित करना चाहे तो इसके लिए राष्ट्रपति से अनुमति लेना आवश्यक है ।

अभ्यास प्रश्न -

- 4 उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?
-9 उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति किस अनुच्छेद के तहत की जाती है?

5.9.6 आपात कालीन शक्तियाँ-

हमारे संविधान निर्माता गुलामी की दुखद दास्तान और आजादी की लम्बी लड़ाई के पश्चात आजाद हो रहे देश के दुःखद विभाजन से परिचित थे । इसलिए देश में भविष्य में उत्पन्न होने वाली संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए . संविधान के द्वारा राष्ट्रपति को विस्तृत रूप आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं । हमारे संविधान के भाग 18 के अनुच्छेद 392 से अनुच्छेद 360 तक राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का उपबन्ध किया गया है । ये शक्तियाँ निम्नलिखित तीन प्रकार की हैं --

1-राष्ट्रीय आपात - संविधान के अनुच्छेद 392 में यह उपबन्ध किया गया है कि,यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाय कि युद्ध, वाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है या संकट में होने की आशंका है .तो उनके द्वारा आपात की उद्घोषणा की जा सकती है । यहा यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि मूल संविधान में सशस्त्र विद्रोह की जगह आन्तरिक अशान्ति शब्द था । 1979 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के लोकसभा चुनाव को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रद्द किये जाने के पश्चात आन्तरिक अशान्ति के नाम पर प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय आपात की घोषणा की ।

1977 के लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराजय का मुंह देखना पड़ा । जनता पार्टी की सरकार बनी । इस सरकार ने 1979 के 44वें संविधानिक संशोधन के द्वारा आन्तरिक अशान्ति के स्थान पर सशस्त्र विद्रोह शब्द रखा गया । साथ ही यह भी उपबन्ध किया गया कि आपात काल की घोषणा अब संघ के मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल स्तर के अन्य मंत्री) की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा ही की जाएगी ।

राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा के एक माह के अन्दर संसद के द्वारा विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इस घोषणा को लोकसभा और राज्यसभा द्वारा पृथक-पृथक कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है । आपात की घोषणा के समय यदि लोकसभा का का विघटन हुआ है तो एक माह के अन्दर राज्यसभा की विशेष स्वीकृति आवश्यक है । नवगठित लोकसभा के द्वारा उसकी प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर विशेष बहुमत से स्वीकृति आवश्यक है । आपातकाल को यदि आगे भी लागू रखना है तो उसे प्रत्येक छः माह पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है । यदि आपात काल की घोषणा एक सदन द्वारा की जाय और दूसरा सदन अस्वीकार कर दे तो यह घोषणा एक माह के पश्चात समाप्त हो जाएगी । इस आपात काल को संसद साधारण बहुमत से समाप्त कर सकती है ।

संविधान के 38वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि आपात काल की उद्घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती । 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया । संविधान के प्रारम्भ में यह उपबन्ध था कि अनुच्छेद 392 के अनुसार आपात काल को पूरे देश में ही लागू किया जा सकता है किसी एक भाग में नहीं । परन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि आपात काल की उद्घोषणा देश के किसी एक भाग या कई भागों में की जा सकती है ।

अभी तक कुल तीन बार राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है -

26 अक्टूबर 1962 से 10 जनवरी 1968 तक चीनी आक्रमण के कारण । दूसरी बार -पाकिस्तान के द्वारा आक्रमण के कारण 3 दिसंबर 1971 को घोषणा की गयी तथा 29 जून 1979 को आन्तरिक अशान्ति के आधार पर आपात की घोषणा की गयी , इनकी समाप्ति 21 मार्च 1977 को की गयी ।

राष्ट्रीय आपात काल को लागू करने का प्रभाव -

1-अनुच्छेद 83(2) के अनुसार जब आपात की उद्घोषणा की गयी हो तब लोकसभा अपने कार्यकाल को एक साल के लिए बढ़ा सकती है. किन्तु आपात की उद्घोषणा के समाप्त होने पर यह कार्यकाल वृद्धि अधिकतम छः मास तक ही चल सकती है।

2-अनुच्छेद 290 के अनुसार आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान संबंधित राज्य में संसद को राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। यद्यपि राज्य की विधायी शक्तियाँ राज्य के पास बनी रहती है किन्तु उन पर निर्णायक शक्ति संसद के पास रहती है।

3-हम उपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि अनुच्छेद 73 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति उन विषयों तक सीमित है, जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है किन्तु आपातकाल की उद्घोषणा के दौरान केन्द्र सरकार जहाँ आपातकाल लागू है उस राज्य के साथ ही साथ देश के किसी भी राज्य को यह निदेश दे सकता है कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करे।

4-संविधान के अनुच्छेद 394 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राष्ट्रपति के आदेश से केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंध को उस सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है जिस सीमा तक की स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक हो। राष्ट्रपति के इस प्रकार के आदेश को यथाशीघ्र संसद के समक्ष रखना आवश्यक होता है।

9-मौलिक अधिकारों पर प्रभाव-वाह्य आक्रमण के कारण यदि राष्ट्रीय आपात की घोषणा की गयी है तो अनुच्छेद 398 के अनुसार, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतन्त्रता का अधिकार निलंबित हो जाता है। जबकि अनुच्छेद 399 के तहत उन्हीं अधिकारों का निलंबन होता है, जो राष्ट्रपति के आदेश में स्पष्ट किया गया हो। इसके बावजूद भी अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का निलंबन किसी भी स्थिति में नहीं हो सकता है।

अभ्यास प्रश्न -

6- राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस अनुच्छेद के अनुसार करता है?

7- 1979 में राष्ट्रीय आपात की घोषणा किस आधार पर की गयी थी ?

2- राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता-अनुच्छेद 399 में यह उपबन्ध है कि संघ सरकार का यह दायित्व है कि वह राज्यों की वाह्य आक्रमण और आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करे। साथ ही यह भी देखे कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार चल रहा हो। अनुच्छेद 396(1) के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार न चलने के कारण संवैधानिक तन्त्र विफल हो गया है तो वह राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। राष्ट्रपति का यह समाधान राज्यपाल के प्रतिवेदन पर भी आधारित हो सकता है। अनुच्छेद 369 के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 396 का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब संबंधित राज्य की सरकार संघ सरकार के निर्देशों का पालन करने में असफल हो जाती है।

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा दो माह के लिए होता है किन्तु यदि घोषणा के पश्चात लोकसभा का विघटन हो जाता है तो नवीन लोकसभा के गठन के बाद प्रथम बैठक के तीस दिन के बाद घोषणा तभी लागू रह सकती है जब कि नवीन लोकसभा उसका अनुमोदन कर दे। इस प्रकार की घोषणा एक बार में छः माह के लिए और अधिकतम तीन वर्ष (पंजाब में पांच वश तक लागू थी) के लिए लागू की जा सकती है। 44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा यह उपबंध किया गया कि एक वर्ष से अधिक समय तक राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दो आवश्यक शर्तें हैं --

1-जब संपूर्ण देश में या उसके किसी एक भाग में अनुच्छेद 392 के तहत राष्ट्रीय आपात काल की घोषणा लागू हो।

2-निर्वाचन आयोग इस बात को प्रमाणित करे कि संबंधित राज्य में वर्तमान परिस्थितियों में चुनाव कराना संभव नहीं है। राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने का प्रभाव--

1- राष्ट्रपति इस बात की घोशणा कर सकता है कि राज्य के कानून निर्माण की शक्ति का प्रयोग संसद करेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 396 की घोशणा के पश्चात यह आवश्यक नहीं कि विधानसभा का विघटन कर दिया जाय। विधानसभा को केवल निलंबित भी किया जा सकता है।

2-यदि संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की अनुमति दे सकता है।

3- राष्ट्रपति कार्यपालिका संबंधी सभी या आंशिक कृत्यों को अपने हथ में ले सकता है। उच्च न्यायालय के कार्यों को छोड़कर। अनुच्छेद 392 और अनुच्छेद 396 की तुलना -

जैसा कि ऊपर आप देख चुके हैं अनुच्छेद 392 और 396 का प्रयोग राष्ट्रपति करते हैं किन्तु दोनों के प्रभावों में अन्तर हैं। जब किसी राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल की घोशणा की जाती है तो संसद को समवर्ती सूची के साथ साथ राज्य सूची के विशयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है किन्तु राज्य विधान सभा और कार्यपालिका का अस्तित्व बना रहता है और वे अपना कार्य भी करती रहती हैं। परन्तु अनुच्छेद 396 के तहत जब राष्ट्रपति किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोशणा करते हैं तो संबंधित राज्य की विधान सभा निलंबित कर दी जाती है और कार्यपालिका संबंधी शक्तिया पूर्णतः या आंशिक रूप से राष्ट्रपति द्वारा ग्रहण कर ली जाती हैं।

अनुच्छेद 396 के तहत संवैधानिक तन्त्र के विफलता की घोशणा की अधिकतम अवधि तीन वर्ष हो सकती है जब कि अनुच्छेद 392 के तहत लागू किया जाने वाला राष्ट्रीय आपात काल को प्रत्येक छः माह के पश्चात संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यह प्रक्रिया तब तक चल सकती है जब तक कि संसद स्वयं के संकल्प से समाप्त न कर दे।

3-- वित्तीय आपात काल --

अनुच्छेद 360 में यह उपबंध किया गया है कि .यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी राज्य क्षेत्र में वित्तीय साख को खतरा उत्पन्न हो गया है तो वह वित्तीय संकट की घोशणा कर सकते हैं।

वित्तीय आपात की उद्घोशणा को भी राष्ट्रीय आपात के समान ही दो माह के अन्दर संसद की स्वीकृति आवश्यक है। यदि दो माह के पूर्व संसद के दोनों सदन अपनी स्वीकृति प्रदान कर दे तो .इसे अनिश्चित काल तक लागू किया जा सकता है। अन्यथा यह उद्घोशणा दो माह की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यदि इसी दौरान लोकसभा का विघटन हुआ है तो राज्यसभा की स्वीकृति आवश्यक है। परन्तु नवीन लोक सभा के प्रथम बैठक के तीस दिन के अन्दर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है अन्यथा घोशणा स्वतः ही निरस्त हो जाएगी।

वित्तीय आपात की घोशणा का प्रभाव --

संघ और राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन में कमी की जा सकती है।

इस समय राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन में भी कटौती के आदेश दे सकता है।

राज्य के समस्त वित्त विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश किये जाने के निर्देश दिये जा सकते हैं।

संघीय सरकार ,राज्य की सरकार को शासन संबन्धी आवश्यक निर्देश दे सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय वितरण के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

5.5 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति -

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों के आधार पर यह धारणा बनी कि राष्ट्रपति कुछ शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद के परामर्श के बिना भी कर सकते हैं। जो संसदात्मक व्यवस्था के परम्पराओं के विपरीत है। इस लिए इसके निवारण के लिए 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 74 के स्थान पर इस प्रकार के उपबन्ध किया गया

राष्ट्रपति को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक मन्त्रिपरिषद होगी और राष्ट्रपति अपने कार्यों के संपादन में मन्त्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर कार्य करेगा। इस उपबन्ध से राष्ट्रपति के पद की गरिमा को आघात पहुँचा। इस लिए 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा निम्न उपबन्ध किये गये -

राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद से जो परामर्श पगाप्त होगा उसके संबन्ध में राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह मन्त्रिपरिषद को इस परामर्श पर पुनर्विचार करने के लिए कहे, लेकिन पुनर्विचार के बाद मन्त्रिपरिषद जो परामर्श देगी, राष्ट्रपति उसी परामर्श के अनुसार कार्य करेगा।

इस प्रकार राष्ट्रपति के संबन्ध में संवैधानिक स्थिति यह नियत करती है कि संसदीय शासन की भावना के अनुरूप राष्ट्रपति, राष्ट्र का संवैधानिक प्रधान है। किन्तु भारतीय राजनीति में उभरती हुई अनिश्चितता के दौर में राष्ट्रपति की भूमिका सक्रिय और अतिमहत्वपूर्ण होती जा रही है। राष्ट्रपति की इस सक्रियता और महत्ता का कारण, गठबन्धन की राजनीति और प्रधानमंत्री पद की गरिमा में तेज गिरावट प्रमुख कारण है।

5.6 उपराष्ट्रपति

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 63 के अनुसार भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा।

योग्यता – उपराष्ट्रपति पद के निर्वाचन के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक हैं -

- 1- वह भारत का नागरिक हो
- 2- वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो,
- 3- वह राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो,
- 4- वह संघ सरकार और राज्य सरकारों या स्थानीय सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर न हो, (अनुच्छेद 66)
- 9- उपराष्ट्रपति, राज्यपाल और मन्त्रियों के पद लाभ के पद नहीं माने जाते, इसलिए उन्हें त्याग पत्र देने की आवश्यकता नहीं होती।

अनु. 94 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के सदस्य करते हैं जिसमें --

1. संसद के दोनो सदनों (लोकसभा, राज्यसभा) के सभी सदस्य।

जबकि राष्ट्रपति के निर्वाचन में संघीय संसद के साथ-साथ राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों को शामिल कर इस बात का प्रयत्न किया गया है, कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हों तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रीय पद का रूप प्राप्त हो सके।

उपराष्ट्रपति की पदावधि - संविधान के अनुसार उपराष्ट्रपति अपने पद ग्रहण की तिथि से, पाँच वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है। इस पाँच वर्ष की अवधि के पूर्व भी वह राष्ट्रपति को वह अपना त्यागपत्र दे सकता है या उसे पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व राज्य सभा के द्वारा पारित संकल्प जो लोकसभा से समर्थित हो, के आधार पर भी हटाया जा सकता है। उपराष्ट्रपति पुनर्निर्वाचन का पात्र है।

उपराष्ट्रपति के कार्य – उपराष्ट्रपति के कोई कार्य नहीं होते हैं। वह राज्य सभा के पड़े सभापति होते हैं। किन्तु किन्हीं कारणों से राष्ट्रपति पद रिक्त (मृत्यु, त्यागपत्र, महाभियोग द्वारा पद से हटाये जाने पर) होने की दशा में वह राष्ट्रपति के रूप में भी कार्य करते हैं।

अभ्यास प्रश्न ---

8. राष्ट्रपति का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा होता है - सत्य/असत्य
9. राष्ट्रपति के निर्वाचन में केवल लोक सभा और राज्य सभा के सदस्य भाग लेते हैं - सत्य/असत्य
10. राष्ट्रपति पर महाभियोग अनुच्छेद 63 के तहत लगाया जाता है - सत्य/असत्य
11. राष्ट्रपति को शपथ राज्यपाल दिलाते हैं - सत्य/असत्य
12. राष्ट्रपति राज्यपाल की सिफारिश से अनुच्छेद 396 के तहत राष्ट्रीय आपात की घोषणा करते हैं - सत्य/असत्य

5.7 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट से यह स्पष्ट हो गया है कि राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के साथ ही साथ व्यवस्थापिका का अंग भी है, क्योंकि संसद के द्वारा पारित कोई भी विधेयक तभी कानून बनता है जब राष्ट्रपति उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। इस प्रकार संसदीय शासन की जो प्रमुख विशेषता है - व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप, वह राष्ट्रपति के पद में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। भारत में संसदीय प्रणाली में राष्ट्रपति कार्यपालिका का औपचारिक प्रधान है किन्तु ब्रिटेन के सम्राट के समान वह रबर मुहर नहीं है। राष्ट्रपति को कुछ विवेकी शक्तियाँ प्राप्त हैं और कुछ स्थितियों में भारत के राष्ट्रपति ने बड़ी ही समझदारी से कार्य किया है। जब किसी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिलता है तो राष्ट्रपति स्वविवेक से उसे सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करता है, जिसे वह समझे कि वह सदन में अपना बहुमत सिद्ध कर सकता है। इसके साथ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि 1984 में इन्दिरागांधी की हत्या के उपरान्त प्रधानमंत्री का पद रिक्त न हो, राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीवगांधी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया है। किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राष्ट्रपति के द्वारा लौटाया जाना भी अपने आप में गम्भीर विशय माना जाता है। इस प्रकार जैसा उपर उल्लेख किया गया है राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होने के नाते वयापक रूप से नियुक्तियाँ करने और पदच्युत करने का भी अधिकार है। साथ ही क्षमादान की महत्वपूर्ण शक्ति भी प्राप्त है। विधायन के क्षेत्र में जब संसद का सत्र न चल रहा हो तो राष्ट्रपति की अध्यादेश निकालने की शक्ति भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार से यह पद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

5.8 शब्दावली -

संसद = राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोकसभा

औपचारिक प्रधान:- जिसके नाम से समस्त कार्य किये जाते हैं परन्तु वह स्वयं उन शक्तियों का प्रयोग न करता हो।

गणतन्त्र:- राज्य का प्रधान निर्वाचित हों, वंशानुगत राजा नहीं

कोटा:- जीत के लिए आवश्यक न्यूनतम मत (समस्त का 91 प्रतिशत)

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

- 1- लोकसभा, राज्यसभा और सभी राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य
- 2- 9 वर्ष, 3-अनुच्छेद 61, 4-अनुच्छेद 124, 9-अनुच्छेद 217, 6-अनुच्छेद 392,

7-आन्तरिक अशान्ति , 8- असत्य, 9- असत्य, 10- असत्य, 11- असत्य,
12- असत्य

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची -

डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर त्रिवेदी एवं राय -
भारतीय सरकार एवं राजनीति

महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली भारतीय प्रशासन -
अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री -

भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली

भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा

The Constitution of India – J.C. Johari- 2004- Sterling Publishers Private Limited New Delhi

5.11 निबंधात्मक प्रश्न-

- 1-. राष्ट्रपति कार्यपालिका के औपचारिक प्रधान से अधिक है। स्पष्ट कीजिए।
- 2-. राष्ट्रपति के चुनाव प्रक्रिया की विवेचना कीजिए ?
- 3-. राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्तियों की समीक्षा कीजिए

इकाई 6 मन्त्रिपरिषद ,प्रधानमंत्री के पद एवं स्थिति कि समीक्षा

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 प्रधानमन्त्री एक परिचय

6.3.1 प्रधानमन्त्री की नियुक्ति

6.3.2 प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

6.3.3 प्रधानमन्त्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

6.3.4 प्रधानमन्त्री और संसद के बीच सम्बन्ध

6.4 सारांश

6.5 शब्दावली

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना:-

पिछली इकाई में भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में अध्ययन किया है और पाया कि भारत का राष्ट्रपति ब्रिटेन के सम्राट से अधिक शक्तिशाली और महत्वपूर्ण स्थिति में है क्यों कि एक तरफ वह पर राष्ट्र की एकता और गरिमा का प्रतीक है तो उसे कुछ स्वविवेकि शक्तियाँ प्रदान कर राजव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की गई है।

इस इकाई में हम देखेंगे कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उसका प्रधान प्रधानमन्त्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्यों कि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

6.2 उद्देश्य:-

1. इस इकाई के अध्ययन से हम जान सकेंगे कि संसदीय शासन में प्रधानमंत्री कितना महत्वपूर्ण है।
2. सरकार के गठन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. वह निम्न सदन (लोक सभा) का नेता भी होता है।
4. वह अपने दल का अत्यधिक प्रभावशाली होता है।
5. मन्त्रिपरिषद के विघटन की भी महत्व पूर्ण शक्ति होती है।

6.3 प्रधानमंत्री एक परिचय

भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। इस शासन में प्रधानमंत्री का पद, शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु होता है। इसमें नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। नाममात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति होता है। वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद होती है, जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करता है। राष्ट्रपति के नाम से समस्त कार्यपालिका शक्तियों प्रयोग, प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मन्त्रिपरिषद करती है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74(1) के अनुसार राष्ट्रपति को अपने कार्यों में सहायता तथा मन्त्रणा के लिए एक मन्त्रिमण्डल होगा, जिसका प्रधान प्रणामन्त्री होगा। इसके आगे अनुच्छेद 75(1) में कहा गया है कि, प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श पर करेगा। संसदीय लोकतन्त्र की परम्परा के अनुसार राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है कि राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करने को बाध्य हो।

अनुच्छेद 75(5) के अनुसार के कोई भी व्यक्ति संसद का सदस्य हुए बिना छः माह तक मन्त्री पद पर रह सकता है। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रधानमंत्री का नियुक्ति निम्न सदन (लोक सभा) से ही हो। उदाहरण स्वरूप-इन्दिरागान्धी को जब पहली बार 1966 प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया तो उस समय वे उच्च सदन (राज्य सभा) की सदस्य थी। ब्रिटेन की संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने कभी अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया बल्कि बहुमत प्राप्त दल के नेता, किसी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में सबसे बड़े दल के नेता को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया।

संविधान के उपबन्धों और गत 64 वर्ष के व्यावहारिक अनुभवों से प्रधानमंत्री के पद और स्थिति की जानकारी के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर विस्तृत विचार करना आवश्यक है -

- 1- प्रधानमंत्री की नियुक्ति
- 2- प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध
- 3- प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध
- 4- प्रधानमंत्री और संसद के बीच सम्बन्ध

6.3.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति

इस बात का उल्लेख ऊपर कर चुके हैं कि संसदीय परम्परा के अनुरूप राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को, प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। 1946 की अन्तरिम सरकार में जवाहरला नेहरू को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। 1952, 1957 और 1962 के लोकसभा के आम चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिली और नेहरू जी को प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया जाता रहा। 1964 में इनकी मृत्यु के उपरान्त कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य गुलजारीलाल नन्दा को, अस्थायी रूप से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात कांग्रेस अध्यक्ष कामराज की कुशलता से, लालबहादुर शास्त्री को स्थायी प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया।

1966 में शास्त्रीजी की आकस्मिक मृत्यु के उपरान्त एक बार पुनः नेता के चुनाव के प्रश्न पर मतभेद उभरा, क्योंकि कांग्रेस अध्यक्ष कामराज इन्दिरा गाँधी को चाहते थे जबकि कांग्रेस के वरिष्ठतम सदस्य मोरारजी देसाई भी दावेदारी कर रहे थे। फलस्वरूप दल के चुनाव में श्रीमती गाँधी 169 के मुकाबले 355 मतों से विजयी रहीं। दल में इस विभाजन के कारण 1967 के चुनाव में कुछ राज्यों में भारी पराजय का सामना करना पड़ा। कांग्रेस, लोकसभा के 1962 के चुनाव में 361 स्थानों पर विजयी हुई थी जबकि 1967 में यह संख्या घटकर 283 हो गई। 1967 के चुनाव के उपरान्त इन्दिरा गाँधी सर्वसम्मति से प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त की गयी। दूसरे गुट के सदस्य मोरारजी देसाई को उपप्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। फिर भी मोरारजी देसाई को असन्तोश था और उन्होंने इन्दिरा गाँधी के प्रगतिशील आर्थिक नीतियों का, जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। 1969 के राष्ट्रपति के चुनाव में तो यह विरोध और भी मुखर होकर सामने आ गया। कांग्रेस के अधिकृत उम्मीदवार नीलम संजीव रेड्डी के खिलाफ श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने निर्दल प्रत्याशी वी0वी0 गिरी को राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित करवाया। फलस्वरूप कांग्रेस का विभाजन हो गया। इन्दिरा गुट अल्पमत में आ गयी। प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सिफारिश पर राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन कर दिया। 1971 के पूर्वाद्ध में लोकसभा का प्रथम मध्यावधि चुनाव हुए। इन्दिरा गुट को भारी सफलता प्राप्त हुई और राष्ट्रपति ने इन्दिरा गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। इस सफलता ने श्रीमती गाँधी को एक शक्तिशाली नेता के रूप में, राजनीतिक मंच पर स्थापित कर दिया।

इन्दिरा गाँधी की चुनावी सफलता और समाजवाद के चमत्कारिक नारे ने उनके प्रभाव में ऐसी वृद्धि की कि कांग्रेस के सर्वमान्य नेता के रूप में स्थापित हुई। 1977 के लोक सभा चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई और जनता पार्टी को सफलता मिली। मोरारजी देसाई को, राष्ट्रपति ने, प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया।

जनता पार्टी के सरकार बनाने के समय से ही उसके विभिन्न घटक दलों में मतभेद थे, जो 1977 तक बहुत बढ़ गया। इस स्थिति को देखते हुए जुलाई 1977 में विपक्ष अविश्वास प्रस्ताव ले आया और मोरारजी देसाई ने विना सामना किये ही प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके पश्चात सरकार बनाने की विभिन्न संभावनाओं पर विचार करते हुए, चौधरी चरण सिंह को, तीन महीने में बहुमत सिद्ध करने की शर्त के साथ, सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु कांग्रेस पार्टी ने चरण सिंह से अपना समर्थन वापस ले लिया। यह समर्थन चरण सिंह लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने की तिथि के पहले ही ले लिया। परिणामस्वरूप चौधरी चरण सिंह ने लोकसभा का सामना किये विना ही त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा विघटित करने की सिफारिश की। तत्कालीन राष्ट्रपति ने लोकसभा का विघटन करते हुए, चौधरी चरण सिंह को कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रूप में रहने दिया।

1980 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस पार्टी को एक बार पुनः आश्चर्यजनक सफलता मिली और श्रीमती गाँधी एक बार पुनः प्रभावशाली प्रधानमन्त्री के रूप में स्थापित हुईं। किन्तु श्रीमती गाँधी की दुर्भाग्यपूर्ण हत्या (31 अक्टूबर 1984) हो गयी। तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने कांग्रेस संसदीय बोर्ड की सिफारिश पर राजीव गाँधी को प्रधानमन्त्री पद पर नियुक्त किया। चूँकि श्रीमती गाँधी की हत्या के कारण राजीव गाँधी के साथ जनता की बहुत सहानुभूति थी। इस लिए 1984 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को अब तक सर्वाधिक सीटें प्राप्त हुईं। इस सफलता के केन्द्र में राजीव गाँधी थे। इस लिए राजीवगाँधीका प्रधानमन्त्री बनना तय था। भारतीय राजव्यवस्था और प्रधानमन्त्री पद के लिए 1989 का लोकसभा चुनाव, एक विभाजक चुनाव था। इस चुनाव ने एकदलीय प्रभुत्व का अन्त किया क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। जनता दल के वी0पी0 सिंह भाजपा

सहित अन्य दलों के समर्थन से प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किये गये किन्तु नवम्बर 1990 में भाजपा के समर्थन वापस लेने की वजह से वी०पी० सिंह सरकार का पतन हो गया। वी०पी० सिंह सरकार के पतन के साथ ही जनता दल का विभाजन हो गया। चन्द्रशेखर सिंह (जनता दल -समाजवादी-61 लोकसभा सदस्य) ने कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमंत्री पद प्राप्त किया। कांग्रेस के समर्थन वापस लेने कारण चन्द्रशेखर सरकार का भी अल्पायु में ही, जून 1991 में पतन हो गया। 1991 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। मई 1991 राजीव गांधी की हत्या हो गयी। इस राजनीतिक वातावरण में पी०वी० नरसिंहराव को राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया।

1996 के लोकसभा चुनाव में भी किसी दल को बहुमत नहीं मिला। तेरह दलों के सहयोग प्राप्त भाजपा के अटलविहारी वाजपेयी को राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। किन्तु इस सरकार का कार्यकाल मात्र तेरह दिन ही रहा। इसके पश्चात एच०डी० देवगौड़ा और इन्दुकुमार गुजराल की काग्रेस समर्थित सरकारें बनीं जों अल्पकालिक ही रहीं। 1998 के लोकसभा चुनाव में के पश्चात भाजपा और उसके सहयोगी दलों के नेता अटलविहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार भी स्थायी नहीं रही और पुनः 1999 में लोकसभा के चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा सहित पन्द्रह दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस गठबंधन सरकार में मंत्रिमंडल के सदस्यों का चयन प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर न होकर घटक दलों की इच्छा और उनकी सौदेवाजी की स्थिति पर आधारित था।

इसी प्रकार 2004 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में ग्यारह दलों के औपचारिक समर्थन और आठ दलों के बाहर से समर्थन से सरकार गठबंधन सरकार का गठन हुआ। इस सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः काग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि गठबंधन सरकार में मंत्रिपरिषद के गठन में प्रधानमंत्री पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं होते हैं क्योंकि क्षेत्रीय दल, सरकार को समर्थन अपने हितों की सिद्धि के लिए करते हैं। ऐसे सौदेबाजी के वातावरण में प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत मजबूत एवं निर्णायक नहीं हो सकती

6.3.2 प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल के बीच सम्बन्ध

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की मंत्रणा से करता है। भारत में भी इंग्लैण्ड के समान संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय परम्परा का अनुसरण करते हुए भारत में भी मंत्री पद के लिए चयन प्रधानमंत्री करते हैं, राष्ट्रपति की स्वीकृति एक औपचारिकता हाती है। प्रधानमंत्री मंत्रियों के चयन में उस समय शक्तिशाली होता था और उसके निर्णय निर्णायक भी होते थे, जब एक दल बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करता था। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में स्थिति काफी हद तक बदल गयी है क्योंकि किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पा रहा है। सरकार के गठन और उसकी स्थिरता के लिए, विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग की आवश्यकता होती है। ये क्षेत्रीय दल सहयोग के बदले में मंत्री पद प्राप्त करने की सौदेबाजी करते हैं। मंत्रियों को विभागों का बंटवारा भी प्रधानमंत्री का विवेकाधिकार होता है परन्तु मंत्रिपरिषद का गठन करते समय उन्हें जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र तथा सहयोगी क्षेत्रीय दलों की निम्न सदन (लोकसभा) में सफल सदस्यों की संख्या को महत्व देना पड़ता है।

अब तक प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त व्यक्तियों के नाम , उनके दल / गठबंधन और कार्यकाल निम्नलिखित है –

क्रम संख्या	नाम	दल/गठबंधन	कार्यकाल
1	जवाहर लाल नेहरू	कांग्रेस	15 अगस्त 1947- 27 मई 1964
2	गुलजारी लाल नन्दा	कांग्रेस	27 मई 1964- 9 जून 1964 (कार्यवाहक)
3	लालबहादुर शास्त्री	कांग्रेस	9 जून 1964 - 11 जनवरी 1966
4	गुलजारी लाल नन्दा	कांग्रेस	11 जनवरी 1966-24 जनवरी 1966 (कार्यवाहक)
5	इंदिरा गाँधी	कांग्रेस	24 जनवरी 1966 - 24 मार्च 1977
6	मेरारजी देसाई	जनता पार्टी	24 मार्च 1977 - 28 जुलाई 1979
7	चौधरी चरण सिंह	बी०के०डी० और कांग्रेस	28 जुलाई 1979 - 14 जनवरी 1980
8	इंदिरा गाँधी	कांग्रेस	14 जनवरी 1980 - 31 अक्टूबर 1984
9	राजीव गांधी	कांग्रेस	31 अक्टूबर 1984 - 1 दिसम्बर 1989
6	विश्वनाथ प्रताप सिंह	जनता दल और भाजपा	1 दिसम्बर 1989 - 6 नवम्बर 1990
11	चन्द्रशेखर		11 नवम्बर 1990 - 21 जून 1991
12	पी०वी० नरसिम्हा राव	कांग्रेस	21 जून 1991 - 16 मई 1996
13	अटलबिहारी वाजपेयी	एन०डी०ए०	16 मई 1996 - 1 जून 1996
14	एच०डी० देवगौड़ा		1 जून 1996 - 21 अप्रैल 1997
15	इन्द्र कुमार गुजराल		21 अप्रैल 1997 - 18 मार्च 1998
16	अटलबिहारी वाजपेयी	एन०डी०ए०	18 मार्च 1998 - 13 अक्टूबर 1999
17	अटलबिहारी वाजपेयी	एन०डी०ए०	13 अक्टूबर 1999 - 21 मई 2004
18	डॉ मनमोहन सिंह	यू०पी०ए०	22 मई 2004 से 26 मई 2014
19.	श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी	एन०डी०ए०	26 मई 2014 से अद्यतन

16.3.3 प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध

भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच का संबंध अतिमहत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। संसदीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका हाते हैं, जिनके नाम से सभी कार्य किये जाते हैं। जबकि मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होती है। प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मूल संविधान में यह उपबन्ध था कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं थे किन्तु 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा यह उपबन्ध किया गया कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सिफारिस मानने के लिए बाध्य है। 44वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पुनः पूर्व स्थिति को बहाल कर दिया गया।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच संबंध मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है-1- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच का दलीय संबंध - यदि दोनों एक ही दल के हैं तो दलीय अनुशासन के कारण, संबंध सामान्य बने रहेंगे। जैसा कि 1977 तक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 2- राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व और उनके राजनीतिक प्रभाव भी, दोनों के बीच के संबंध को प्रभावित करते हैं। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में प्रधानमंत्री की भूमिका है तो दोनों के बीच के संबंध काफी हद तक सामान्य रहे हैं, जैसा कि जाकिर हुसैन, वी0वी0 गिरि, फखरुद्दीन अली अहमद और ज्ञानी जैल सिंह के मामले में हुआ है। किन्तु 31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गान्धी की हत्या हो गयी। इसके पश्चात राजीव गांधी को राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया। 1986 तक तो संबंध अच्छे रहे किन्तु 1987 के प्रारम्भ से दोनों के बीच के संबंधों में कड़वाहट शुरु हुई और ऐसा लगने लगा कि राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, प्रधानमंत्री राजीव गांधी को पद से हटाकर लोकसभा का विघटन कर देंगे। संविधान लागू होने के पश्चात ऐसा सर्वप्रथम हुआ कि एक ही दल का होने के बावजूद राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में गम्भीर मतभेद उभर कर सामने आये।

6.3.4 प्रधानमंत्री और संसद के बीच सम्बन्ध

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। भारत में प्रधानमंत्री की नियुक्ति निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल की जाती है। यद्यपि उच्च सदन से प्रधानमंत्री की नियुक्ति को लेकर कोई कानूनी बंधन नहीं हैं। हमारे देश में सर्वप्रथम 1966 में श्रीमती इन्दिरा गांधी को राज्य सभा के सदस्य के रूप में प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इसके पश्चात वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह भी राज्यसभा सदस्य हैं।

प्रधानमंत्री लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है, इस लिए सदन का भी नेता होता है। सदन का नेता होने के नाते विपक्ष के अधिकारों के रक्षा की और सदन की कार्यवाही में उनकी भागीदारी हेतु अवसर प्रदान करेंगे। इस हेतु वे विपक्ष से परामर्श करते हैं और उनकी शिकायतों का निराकरण करने का प्रयत्न भी करते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का अस्तित्व तभी तक है जब तक कि उसे लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है। किन्तु व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है, क्योंकि दलीय अनुशासन के कारण, लोकसभा में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल, मंत्रिमण्डल के विरुद्ध नहीं जा पाता है। संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति से सिफारिश करके लोकसभा का विघटन करवा सकता है। इस अधिकार के कारण प्रधानमंत्री लोकसभा को

नियंत्रित करने में काफी हद तक सफल रहता है। प्रथम लोकसभा के गठन से आज तक 59 वर्षों में कई बार लोकसभा का विघटन समय से पूर्व करते हुए मध्यावधि चुनाव कराये गये।

समय से पूर्व लोकसभा का विघटन

क्रम	किस प्रधानमंत्री की सिफारिश पर	राष्ट्रपति ने विघटन किया	सन्
1	श्रीमती इन्दिरा गॉंधी		1970
2	श्रीमती इन्दिरा गॉंधी		1977
3	चौधरी चरण सिंह		1979
4	राजीव गॉंधी		1984
5	चन्द्रशेखर सिंह		1991
6	अटल बिहारी वाजपेयी		1998
7	अटल बिहारी वाजपेयी		1999

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब किसी एक दल को निरपेक्ष बहुमत रहा है तो लोकसभा पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण बहुत ही प्रभावशाली रहा है परन्तु जब गठबंधन सरकारें रहीं हैं (जैसे 1977, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 और 2009 में) तब लोकसभा पर नियंत्रण की बात तो दूर की रही, वे स्वयं ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रधानमंत्री की नियुक्ति की जाती है, या निर्वाचित होता है
2. निम्न सदन का नेता कौन होता है ?
3. प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?
4. भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री कौन है ?
5. भारत की प्रथम प्रधानमंत्री जो राज्य सभा सदस्य थी
6. कोई मंत्री बिना संसद सदस्य रहे कितने माह मंत्री रह सकता है ?

6.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम संसदीय शासन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति हेतु अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। साथ ही यह भी देखा कि किस प्रकार से प्रधानमंत्री इस शासन व्यवस्था में बहुत ही शक्तिशाली होकर उभरता है। यहाँ यह भी देखने को मिला कि प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद और राष्ट्रपति के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करता है और समय समय पर मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए निर्णयों की जानकारी भी राष्ट्रपति को देता है।

उपरोक्त अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार से इस शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के केंद्र में प्रधानमंत्री होता है।

6.5 शब्दावली

1. मंत्रिपरिषद = मंत्रिमण्डल, राज्यमंत्री, उपमंत्री
2. निम्न सदन = लोक सभा को कहते हैं।
3. उच्चसदन = राज्य सभा को कहते हैं।

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. नियुक्ति 2. प्रधानमंत्री 3. राष्ट्रपति 4. डॉ. मनमोहन सिंह 5. श्रीमती इन्दिरा गांधी 6 छः माह

6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ. रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्रप्रतापसिंह

6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान -	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन -	बी.एल. फड़िया

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के प्रधानमंत्री की पद एवं स्थिति की विवेचना कीजिए ?
2. प्रधानमंत्री की सदन के नेता और सरकार के मुखिया के रूप में महत्व की व्याख्या कीजिए।
3. गठबन्धन सरकारों के युग में प्रधानमंत्री कमजोर हुआ है या मजबूत समीक्षा कीजिए।

इकाई 7 : संसद: संगठन एवं शक्तियां

इकाई की संरचना

- 7.1. प्रस्तावना
- 7.2 उद्देश्य
- 7.3 भारतीय संसद
- 7.4 संसद का संगठन
- 7.5 राज्यसभा
- 7.6 लोकसभा
- 7.11 संसद की शक्तियाँ
- 7.8 सारांश
- 7.9 शब्दावली
- 7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इकाई में हमने यह अध्ययन किया है कि कि राष्ट्रपति के नाम से जिन शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है। उस मन्त्रिपरिषद का प्रधान प्रधानमन्त्री होता है। प्रधानमन्त्री का पद हमारे देश में संसदीय शासन प्रणाली होने के नाते बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होने के नाते इस कारण से सदन का नेता होने के कारण और अन्ततः दलीय अनुशासन के कारण से शासन व्यवस्था को नेतृत्व प्रदान करता है। किन्तु यही शक्तिशाली प्रधानमन्त्री की स्थिति, गठबंधन सरकार होने पर अत्यन्त कमजोर हो जाती है फिर भी वह केन्द्रीय सत्ता की धुरी होता है।

इस इकाई में हम संसद के संगठन, कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे। जिसमें हम यह अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योंकि कार्यपालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं क्योंकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

इसके साथ ही साथ हम यह भी अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार कानून निर्माण में राज्य सभा को, लोक सभा के सामान शक्तियाँ न होते हुए भी वह महत्वपूर्ण है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के उपरान्त हम

1. संसद के संगठन के सम्बन्ध में जान सकेंगे
2. राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
3. लोक सभा की शक्तियों को जान सकेंगे
4. अंततः कानून निर्माण में लोक सभा के सापेक्ष राज्य सभा की शक्तियों को जान सकेंगे

7.3 भारतीय संसद

जैसा कि हम पहले की इकाइयों में स्पष्ट कर चुके हैं कि ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए हमारे देश में भी संविधान के द्वारा संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। यह संसदीय प्रणाली संघ और राज्य दोनों ही स्तरों पर अपनाई गई है। संघीय स्तर के विधान निर्मात्री संस्था को संसद कहते हैं। राज्य स्तर पर विधान निर्मात्री संस्था को हम विधानमंडल कहते हैं। प्रस्तुत इकाई में संघीय विधायिनी संस्था संसद का ही अध्ययन करेंगे।

संसद का गठन द्विसदनीय सिद्धान्त के आधार पर किया गया है।

(1) उच्च सदन-राज्यसभा और (2) निम्न सदन-लोकसभा (जनप्रतिनिधि सदन)। यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यहाँ दोनों सदन मिलकर ही संसद का गठन नहीं करते हैं वरन् - लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर संसद बनती है। चूँकि संसद का मुख्य कार्य कानून निर्माण है। और कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं ग्रहण करता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति नहीं मिल जाती है। इसलिए राष्ट्रपति संसद का महत्वपूर्ण अंग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 119 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।

भारतीय संसद के संगठन और उसके कार्यों आदि के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के भाग-5 के अध्याय 2 में अनुच्छेद 119 से 122 तक प्रावधान किया गया है।

यद्यपि हमने ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है, परन्तु भारतीय संसद ब्रिटेन की संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। क्योंकि उसके सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि वह स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है।

7.4 संसद का संगठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 119 के अनुसार संघ के लिए संसद होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी। संसद के अंग - राष्ट्रपति और दो सदन - 1. राज्यसभा 2. लोकसभा

राष्ट्रपति - संसद का अंग है, जिसकी स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक कानून का रूप नहीं ले सकता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा 5 वर्ष के लिए किया जाता है निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, सभी राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य हैं। राष्ट्रपति का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति के द्वारा किया जाता है। समय से पूर्व वह उपराष्ट्रपति को त्यागपत्र दे सकता है या साबित कदाचार या संविधान के उल्लंघन के आरोप में महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा पद से हटाया जा सकता है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 61 में किया गया है।

7.5 राज्यसभा

राज्यसभा की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्यसभा संसद का उच्च सदन है, जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 250 हो सकती है। (यद्यपि वर्तमान समय में इसमें सदस्य संख्या 245 है।)

250 में से 238 सदस्य राज्यों और संघ-राज्य क्षेत्र से होगा जबकि 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। जो साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा के क्षेत्र में ख्यातिलबध व्यक्तित्व होंगे। इस उपबन्ध को रखने के पीछे संविधान निर्माताओं की मंशा यह थी कि सदन को समाज के योग्य और अनुभवी लोगों के अनुभव का लाभ प्राप्त हो सके।

भारतीय संविधान की चौथी अनुसूची में राज्य ओर संघशासित क्षेत्रों से प्रतिनिधियों की 233 की संख्या का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार से $233+12 =$ (राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत) कुल 245 सदस्य राज्यसभा में है। राज्य और संघ-राज्य क्षेत्र में राज्य सभा का प्रतिनिधित्व इस प्रकार है-

राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र	स्थानों की संख्या	राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र	स्थानों की संख्या
आन्ध्र प्रदेश	- 10	उत्तर-प्रदेश	- 31
असम	-11	उत्तराखंड	-3
बिहार	- 16	पश्चिम बंगाल	-16
झारखंड	-6	जम्मू - कश्मीर	- 4
गोवा	-1	नागालैण्ड	-1
गुजरात	- 11	हिमांचल प्रदेश	-3
हरियाणा	-5	मणिपुर	-1
केरल	-9	त्रिपुरा	1
मध्यप्रदेश	-11	मेघालय	-1
छत्तीसगढ	-5	सिक्किम	-1
तमिलनाडू	- 18	मिजोरम	-1
महाराष्ट्र	-19	अरुणाचल प्रदेश	-1
कर्नाटक	-12	दिल्ली	-3
उड़ीसा	-10	पाण्डिचेरी	-1
पंजाब	-11		
राजस्थान	-10		

राज्यसभा स्थायी सदन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाता है। राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार। यहाँ हम यह बताते चलें कि संघ शासित क्षेत्रों में केवल दिल्ली और पांडिचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

यद्यपि हमारे देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है, जिसमें उच्च सदन में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाता है, चाहे वे राज्य छोटे हो या बड़े हो। अमेरिका में 50 राज्य हैं सभी राज्यों से उच्च सदन (सीनेट) में दो प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। इस प्रकार कुल 100 सदस्य होते हैं, जबकि हमारे यहाँ उच्च सदन (राज्य सभा) में राज्यों को समान प्रतिनिधित्व न प्रदान कर जनसंख्या के आधार पर प्रदान किया गया है।

अवधि - राज्यसभा एक स्थायी सदन है जिसका कभी विघटन नहीं होता है। किन्तु इसके एक तिहाई सदस्य दो वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि सदन तो स्थायी है इसके सदस्यों का कार्यक्रम 6 वर्ष का होता है।

योग्यताएँ- राज्यसभा की सदस्यता के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ अपेक्षित हैं-

1. वह भारत का नागरिक है।
2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो
3. वह किसी लाभ के पद पर न हो,
4. वह पागल या दिवालिया न हो,
5. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 102 में स्पष्ट उल्लेख है कि संघ अथवा राज्य के मंत्री पद लाभ के पद नहीं समझे जाएंगे।

राज्यसभा के सन्दर्भ में दो पक्ष बहुत ही महत्वपूर्ण हैं-

- 1- राज्यसभा के लिए वह देश के किसी भी प्रदेश का हो, किसी भी प्रदेश में लड सकता है।
- 2- राज्यसभा के लिए मतदान खुला और पारदर्शी होगा।

पदाधिकारी:- राज्य के पदाधिकारी

सभापति

उपसभापति

उपराष्ट्रपति निर्वाचन

राज्यसभा से ही निर्वाचित

संसद के सभी सदस्यों द्वारा (लोकसभा, राज्यसभा)

राज्यसभा में एक सभापति और एक उपसभापति होते हैं। उपराष्ट्रपति ही राज्यसभा के सभापति होते हैं। अनुच्छेद - 89 और राज्यसभा अपने सदस्यों में से ही उपसभापति का चुनाव करती है। उपसभापति सभापति की अनुपस्थिति में सभापति के रूप में कार्य करते हैं।

(अनुच्छेद 91 के अनुसार) सभापति और उपसभापति को वेतन भारत के संचित निधि से प्रदान किया जाता है। राज्य सभा की गणपूर्ति सदन के सम्पूर्ण सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत। चूंकि वर्तमान में 245 सदस्य हैं। इसलिए इसकी गणपूर्ति संख्या 25 है।

राज्य सभा के सभापति को सदन को सुचारु संचालन हेतु व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं।

जब सभापति और उपसभापति दोनों अनुपस्थित हो तो, राज्यसभा के सभापति के कार्यों का निर्वहन राज्यसभा का वह सदस्य करेगा जिसे राष्ट्रपति नामित करेगा।

राज्य सभा के कार्य एवं शक्तियाँ-

1. विधायी शक्तियाँ - राज्य सभा, लोकसभा के साथ मिलकर कानून निर्माण का कार्य करती है। साधारण विधेयको (अवित्तीय विधेयकों) के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी पहले पेश किया जा सकता है। दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति के पास उनकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यद्यपि अधिकांश विधेयकों को लोकसभा में ही पहले प्रस्तुत किया जाता है।

यदि विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और दूसरा सदन छ माह तक अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो, राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन आहूत करता है। इस संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता लोकसभा के अध्यक्ष करते हैं। इसमें निर्णय बहुमत से होता है। सैद्धान्तिक रूप से तो दोनों सदनों को समान शक्तियाँ हैं परन्तु व्यवहारतः लोकसभा के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, इसलिए लोकसभा का निर्णय ही निर्णायक होता है।

2- संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान हेतु दोनों सदनों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं क्योंकि, यह विधेयक भी संसद के दोनों सदनों में से किसी में भी पेश किये जा सकते हैं। वे तभी पारित माने जाएंगे जब दोनों सदनों ने अलग-अलग संविधान में उल्लिखित रीति से पारित किया हो, अन्यथा नहीं। क्योंकि संविधान संशोधन विधेयक के सन्दर्भ में दोनों सदनों में विवाद की स्थिति में किसी प्रकार से संयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार यदि राज्य सभा संशोधन से असहमत है तो वह, संशोधन विधेयक गिर जाएगा।

3- वित्तीय शक्तियाँ- वित्तीय शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा की स्थिति, लोकसभा के समक्ष अत्यन्त निर्बल है क्योंकि कोई भी वित्तीय विधेयक केवल लोकसभा में ही पेश किये जा सकते हैं। जब कोई वित्त विधेयक लोकसभा द्वारा पारित होने के पश्चात् राज्यसभा में पेश किया जाता है तो राज्यसभा अधिकतम 14 दिन तक उस विधेयक पर विचार करते हुए अपने पास रोक सकती है। उसके विचार को लोकसभा माने या न माने यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। यदि राज्य सभा के विचार को लोकसभा न माने तो 14 दिन की समाप्ति पर विधेयक उसी रूप में पारित समझा जाएगा, जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था।

4- कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियों - जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन प्रणाली प्रचलित है। इसमें कार्यपालिका निम्न सदन (लोकसभा) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। न कि राज्यसभा के प्रति। इसलिए राज्यसभा के सदस्य विभागीय मंत्रियों से प्रश्न पूरक प्रश्न, तारांकित, अतारांकित प्रश्न पूछ सकते हैं, परन्तु मंत्रिपरिषद के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव नहीं ला सकते हैं। इस प्रकार की शक्ति केवल लोकसभा के पास है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्यपालिका शक्तियों के सन्दर्भ में राज्यसभा, लोकसभा से बहुत ही निर्बल है।

5- अन्य शक्तियाँ - ऊपर हमने राज्यसभा की शक्तियों का अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शक्तियाँ भी राज्य सभा की हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. राष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य भाग लेते हैं।
2. उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में राज्यसभा के सभी सदस्य (निर्वाचित+मनोनीत) 233+12 भाग लेते हैं।
3. यह लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से उपराष्ट्रपति को पदच्युत करती है।
4. जब देश में आपात काल लागू हो, तो उसे एक माह से अधिक और संवैधानिक तन्त्र की विफलता की घोषणा हो तो उसे 2 माह से अधिक लागू करने हेतु, लोकसभा के साथ राज्यसभा के द्वारा भी स्वीकृति आवश्यक होती है।
5. लोकसभा के साथ मिलकर राज्यसभा राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदमुक्त करती है।

राज्यसभा के विशेषाधिकार- उपरोक्त शक्तियों के अतिरिक्त राज्यसभा की कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं, जिनका प्रयोग वह अकेले करती है। वे निम्नलिखित हैं-

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 में उल्लिखित है कि - यदि राज्यसभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि नई अखिल भारतीय सेवा के सृजन का अधिकार मिल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि राज्य सभा इस तरह के प्रस्ताव न पारित करे तो केन्द्र सरकार नई अखिल भारतीय सेवा का सृजन नहीं कर सकती है।
2. इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 249 - यदि राज्यसभा के, सदन में उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले दो तिहाई सदस्य राज्य सूची के किसी विशय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दे तो उस पर संसद को कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का प्रस्ताव प्रारम्भ में केवल एक वर्ष के लिए ही होता है, परन्तु राज्यसभा की इच्छा से इसे बार-बार 1 वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राज्यसभा द्वितीय सदन है तो, साथ ही दूसरे स्तर के महत्व का भी सदन है।

7.6 लोकसभा

जैसा कि हम पहले भी पढ़ चुके हैं कि लोकसभा संघीय संसद का निम्न सदन है, जिसे लोकप्रिय सदन या जनप्रतिनिधि सदन भी कह सकते हैं क्योंकि इनका निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से वयस्क मताधिकार (18 वर्ष की आयु के भारतीय) के द्वारा किया जाता है। भारतीय संविधान में इस बात का प्रावधान है कि लोकसभा में राज्यों से अधिकतम 530 सदस्य हो सकते हैं। 20 सदस्य संघ शासित क्षेत्रों से तथा 2 सदस्य आंग्ल भारतीय

समुदाय के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जा सकते हैं। इस प्रकार लोकसभा में अधिकतम सदस्यों की संख्या 552 हो सकती है।

योग्यता- 1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह भारतीय नागरिक 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
3. संघ सरकार या राज्य सरकार के अधीन, वह किसी लाभ के पद पर न हो।
4. वह, पागल या दिवालिया न हो।

इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ जिसका निर्धारण समय-समय पर संसद करे।

कार्यकाल- मूल संविधान के अनुसार लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था। परन्तु 42 वें संवैधानिक संशोधन 19116 के द्वारा इसका कार्यकाल 6 वर्ष कर दिया गया। परन्तु पुनः 44 वें संवैधानिक संशोधन 19118 के द्वारा कार्यकाल को घटाकर 5 वर्ष के पूर्व भी लोकसभा का विघटन किया जा सकता है। इस प्रकार 19110,191111,19119,1990,19911,1999 और 2004 में समय पूर्व विघटन किया गया।

राष्ट्रपति लोकसभा का अधिवेशन बुलाते हैं। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि लोकसभा की दो बैठकों के बीच अन्तराल अर्थात् बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि के बीच अन्तराल 6 मास से अधिक नहीं होना चाहिए। राज्यसभा के समान इसकी गणपूर्ति भी समस्त सदस्यों का दसवाँ भाग है।

लोकसभा की संरचना - प्रथम आम चुनाव के समय (1952) लोकसभा के सदस्यों की निर्धारित संख्या 500 थी। 31 वें संवैधानिक संशोधन 19114 के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि इनकी अधिकतम संख्या 500 हो सकती है। जिनमें 530 सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होंगे। राज्यों से। जबकि 20 सदस्य संघ-राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। इसके साथ ही साथ 2 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जा सकते हैं। यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत हो कि आंग्लभारतीय समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है। परन्तु व्यवहार में वर्तमान समय में 545 सदस्य हैं जिनमें 530 राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं, 13 संघ राज्य क्षेत्रों से और 2 राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत। राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को लोकसभा में स्थानों का आवंटन

निर्वाचन - लोकसभा के सदस्यों का निर्वाचन भारतीय नागरिकों द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। मूल संविधान के अनुसार मताधिकार हेतु न्यूनतम उम्र 21 वर्ष रखी गई थी जबकि 61 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। अर्थात् 18 वर्ष की आयु का भारतीय नागरिक अपनी पसन्द के प्रत्याक्षी को मतदान कर सकता है।

कार्यकाल- लोकसभा की अवधि का निर्धारण उसकी बैठक की तिथि से किया जाता है। अपनी बैठक की प्रथम तिथि से 5 वर्ष की अवधि होती है। परन्तु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 83 (2) के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सिफारिश पर 5 वर्ष के पूर्व भी विघटित कर सकता है। किन्तु यह विघटन अवधि 6 माह से अधिक नहीं हो सकती है। अर्थात् विघटन के 6 माह बीतने के पूर्व ही लोकसभा का निर्वाचन हो जाना चाहिए। इस प्रकार के

उपबन्ध को रखने का कारण यह कि लोकसभा के दो सत्रों के बीच की अवधि 6 माह से अधिक का नहीं होनी चाहिए।

अधिवेशन - एक वर्ष में लोकसभा के कम से कम दो अधिवेशन होने चाहिए। साथ ही पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की प्रथम तिथि के बीच का अन्तराल 6 माह से अधिक का नहीं होना चाहिए। परन्तु यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह अवधि एक ही स्थिति में 6 माह से अधिक हो सकती है जब आगामी अधिवेशन के पूर्व लोकसभा विघटित हो जाए।

पदाधिकारी- लोकसभा में दो मुख्य पदाधिकारी होते हैं- 1. अध्यक्ष 2. उपाध्यक्ष।

अपने सभी सदस्यों में से ही लोकसभा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष, अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। परन्तु यदि दोनों अनुपस्थित हो तो सदन का वह व्यक्ति अध्यक्ष के दायित्वों का निर्वहन करेगा जिसे राष्ट्रपति इस हेतु नियुक्त करे।

अध्यक्ष के द्वारा शपथ, अध्यक्ष के रूप में नहीं वरन् लोकसभा के सदस्य के रूप में ग्रहण करता है। यह शपथ उसे लोकसभा का कार्यकारी अध्यक्ष (प्रोटेम स्पीकर) दिलाता है जो सदन का सबसे वरिष्ठ सदस्य होता है। इस परम्परा का अनुसरण फ्रान्स की परम्परा से लिया गया है।

अध्यक्ष को पद से हटाया जाना - लोकसभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव के द्वारा, अध्यक्ष को हटाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव रखने के 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है। यहाँ यह पक्ष महत्वपूर्ण है कि जब अध्यक्ष को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तो, अध्यक्ष, लोकसभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

लोकसभा की शक्तियाँ –

हमारे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। जिसका तात्पर्य है कि अन्तिम रूप से सत्ता जनता में निहित है। लोकसभा जनप्रतिनिधि सदन है क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसलिए लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के अनुरूप लोकसभा को राज्यसभा की अपेक्षा शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया है। इसलिए संसद में लोकसभा, राज्यसभा और राष्ट्रपति से मिलकर होता है। अब हम लोकसभा के कार्यों और शक्तियों का अध्ययन करेंगे।

1. विधायी शक्ति- जैसा कि हम पहले ऊपर देख चुके हैं कि साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्राप्त है। यह विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित हो।

परन्तु वित्तीय विधेयक लोकसभा में ही पेश किए जा सकते हैं। साथ ही वित्त विधेयक उसी रूप में पारित हो जाता है, जिस रूप में लोकसभा चाहती है। क्योंकि लोकसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को राज्य सभा केवल 14 दिन रोक सकती है। इसके पश्चात् वह उसी रूप में पारित समझा जाएगा जिस रूप में उसे लोकसभा ने पारित किया था। राज्यसभा के किसी भी संशोधन को स्वीकार करना या अस्वीकार करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है।

कार्यपालिका शक्ति- भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से लिखा है भारत की संघीय कार्यपालिका सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि उसी दल को सरकार बनाने का अधिकार होता, और उसी दल के नेता को राष्ट्रपति प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते हैं। जिसे लोकसभा में समस्त सदस्यों का बहुमत प्राप्त हो। और सरकार तभी तक अस्तित्व में रहती है जब तक उसको लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। मन्त्रिपरिषद् पर प्रश्न पूछकर, पूरक पत्र, अविश्वास प्रस्ताव, कामरोको प्रस्ताव, कटौती प्रस्तावों के माध्यम से नियंत्रण रखते हैं।

संविधान संशोधन की शक्ति - संविधान संशोधन के महत्वपूर्ण कार्य में भी लोकसभा को शक्तियाँ प्राप्त हैं। संविधान संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किए जा सकते हैं और यह तभी पारित समझा जाएगा जब दोनों सदन, अलग-अलग संविधान में वर्णित रीति से पारित करें।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है इस सम्बन्ध में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं है। इसलिए दोनों की शक्तियाँ समान हैं।

निर्वाचन सम्बन्धी कार्य- लोकसभा , राज्यसभा के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन तथा राज्यसभा और राज्य विधानसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है।

7.11 संसद की शक्तियाँ

भारतीय संसद यद्यपि ब्रिटिश संसद के समान सर्वशक्तिमान नहीं है। परन्तु देश की सर्वोच्च विधायी संस्था है जिसकी प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1- कानून निर्माण की शक्तियाँ- शासन के तीन अंग होते हैं। व्यवस्थापिका ,कार्यपालिका और न्यायपालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कार्यकारी कार्य और न्यायिक कार्य करते हैं। संसद को संघ सूची, समवर्ती सूची और अवशिष्ट शक्तियों पर कानून निर्माण का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विशयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है-

1. जब राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा चल रही हो।
 2. जब राज्यसभा, अनुच्छेद 249 के अनुसार, दो तिहाई बहुमत से राज्यसूची के विशय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर संसद से विधि निर्माण हेतु आग्रह करें।
 3. जब दो या दो से अधिक राज्य विधानमंडल द्वारा प्रस्ताव पारित कर राज्य सूची के विशय पर कानून निर्माण हेतु संसद से आग्रह करें।
2. कार्यकारी कार्य- संसद का अंग लोकसभा होती है। जिसके बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही राष्ट्रपति प्रधानमंत्री उन्हीं में से अपने मन्त्रिपरिषद् का गठन करते हैं।

अनु0 115 (3) के अनुसार मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

वित्तीय कार्य- संसद ही संघ के वित्त नियंत्रण रखती है। वित्त का नियमन करने में संसद की भूमिका निर्णायक होती है। जिसमें उसकी दो महत्वपूर्ण समितियाँ लोकलेखा समिति, प्राक्कलन समिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भारत के संचित निधि से धन, संसद की स्वीकृति से ही प्राप्त हो सकता है। वार्षिक बजट और रेल बजट संसद के समक्ष पेश किया जाता है। उक्त के साथ-साथ संसद विनियोग विधेयक, अनुपूरक अनुदान, अतिरिक्त अनुदान, लेखानुदान आदि के सम्बन्ध में निर्णायक शक्ति है।

राज्यों से सम्बन्धित कार्य- नए राज्य के गठन, उसकी सीमा और नाम में परिवर्तन का अधिकार संसद को है। इसके तहत वह एक राज्य को विभाजित कर सकती है, दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य बना सकती है।

महाभियोग सम्बन्धी कार्य- संविधान के अनुच्छेद 61 में स्पष्ट उल्लेख है कि संसद साबित कदाचार या संविधान के अतिक्रमण के आरोप में राष्ट्रपति पर विशेष प्रक्रिया से महाभियोग लगा सकती है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को भी पदच्युत कर सकते हैं।

संविधान संशोधन की शक्ति - उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संसद की शक्तियाँ व्यापक हैं। परन्तु वे अमर्यादित नहीं हैं क्योंकि भारतीय संसद अपनी सीमाओं में ही कार्य करती है।

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रपति संसद का अंग है। सत्य असत्य /
2. संसद राज्य सभा और लोक सभा से मिलकर बनती है,। सत्य असत्य /
3. राज्य सभा संसद का जनप्रतिनिधि सदन है। सत्य असत्य /
4. लोक सभा के सदस्यों का जनता के द्वारा निर्वाचन किया जाता है। सत्य असत्य /
5. राज्य सभा का कार्य कल ६ वर्ष है। सत्य असत्य /
6. राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव जनता करती है। सत्य असत्य /
11. राज्य सभा में वर्तमान समय में 543 सदस्य हैं। सत्य असत्य /

7.8 सारांश

इस इकाई में हमने संसद के संगठन और कार्यों का अध्ययन किया है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से राष्ट्रपति संसद का अंग है और उसके पद में संसदीय शासन की प्रमुख विशेषता का समावेश किया गया है। क्योंकि संसदीय शासन की मुख्य विशेषता, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का मिश्रित स्वरूप है क्योंकि कार्यपालिका के सभी सदस्यों के लिए व्यवस्थापिका का सदस्य होना अनिवार्य होता है। और राष्ट्रपति के पद में ये दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं क्योंकि एक तरफ वह कार्यपालिका का प्रमुख होता है तो दूसरी तरफ वह संसद का अंग होता है क्योंकि कोई भी विधेयक तब तक कानून का रूप नहीं लेता है जब तक कि उसे राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति नहीं प्रदान कर देता है।

साथ ही हमने इस इकाई में यह भी अध्ययन किया है कि राज्य सभा प्रथम दृष्टया तो कानून निर्माण में सामान दिखाई देती है परन्तु संवैधानिक संशोधन विधेयक के अतिरिक्त सामान्य विधेयक और वित्तीय विधेयक के मामले

में स्थिति गौण है क्योंकि राज्य सभा सामान्य विधेयक को अधिकतम ६ माह तक रोक सकती है और वित्त विधेयक को केवल १४ दिन तक रोक सकती है, इसके पश्चात वह उसी रूप में पारित होगा जिस रूप में लोक सभा चाहेगी। राज्य सभा की आपत्तियाँ का उस विधेयक पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं छोड़ सकती हैं। फिर भी जल्दबाजी में कोई विधेयक न पारित हो, उसके सभी पक्षों पर विचार हो सके इस दृष्टि से राज्य सभा अति महत्वपूर्ण सदन है। इस समय तो और भी जबकि लोक सभा में किसी दल या संगठन को बहुमत हो जबकि राज्य सभा में किसी दल या संगठन को।

7.9 शब्दावली

संसद -- राष्ट्रपति + राज्य सभा + लोक सभा

नाम मात्र की कार्यपालिका – संसदीय शासन प्रणाली में नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में अंतर पाया जाता है। नाम मात्र की कार्यपालिका वह होता है जिसमें संवैधानिक रूप से सभी शक्तियाँ निहित होती हैं परन्तु उन शक्तियों का वह स्वयं प्रयोग नहीं करता है, वरन मंत्रिपरिषद करती है। भारत में नाम मात्र की कार्यपालिका राष्ट्रपति और ब्रिटेन में सम्राट होते हैं।

वास्तविक कार्यपालिका – यह वह कार्यपालिका जो नाम मात्र की कार्यपालिका को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग उसके नाम से करती है। जैसे भारत और ब्रिटेन में मंत्रिपरिषद।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 11. असत्य

7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय संविधान	-	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन	-	बी.एल. फड़िया
भारतीय लोक प्रशासन	-	अवस्थी एवं अवस्थी

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान	-	डी.डी. बसु
भारतीय लोक प्रशासन	-	एस.सी. सिंहल

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. संसद के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये ?

इकाई 8 : केन्द्र तथा राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध

इकाई की संरचना

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध
 - 8.3.1 राज्य सूची के विषय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति
 - 8.3.1.1 राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर
 - 8.3.1.2 संकट कालीन घोशणा होने पर
 - 8.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर
 - 8.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु
 - 8.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
 - 8.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर
 - 8.3.1.6 कुछ विषयों के प्रस्तावित करने और कुछ को अन्तिम स्वीकृत के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक
- 8.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध
 - 8.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति
 - 8.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव
 - 8.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार
 - 8.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति
 - 8.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बरखास्तगी
 - 8.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना
 - 8.4.7 मुख्यमन्त्रियों के विरुद्ध जांच आयोग
 - 8.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण
- 8.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध
 - 8.5.1 संघ और राज्यों की बीच राजस्व वितरण
 - 8.5.2 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संग्रहित तथा विनियोजित शुल्क
 - 8.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर
 - 8.5.4 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर
 - 8.5.5 संघ के प्रयोजन के लिए कर
 - 8.5.6 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर
 - 8.5.7 राजस्व में सहायक अनुदान
 - 8.5.8 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध
- 8.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण
- 8.7 वित्तीय संकटकाल
- 8.8 सारांश
- 8.9 शब्दावली

- 8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.11 संदर्भ ग्रन्थ
- 8.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारत एक परिसंघ है और उसका संविधान परिसंघीय है। परिसंघ में शासन के दो स्तर होते हैं। सभी शक्तियाँ इन स्तरों में विभाजित की जाती हैं। संघ, अट्ठाइस राज्य और सात संघ राज्य क्षेत्र सभी संविधान से शक्तियाँ प्राप्त करते हैं। राज्यों को शक्ति संघ नहीं प्रदान करता है। सबकी शक्ति का एक ही स्रोत है और वह है संविधान। संविधान में सभी शक्तियों का विभाजन संघ और राज्यों के मध्य किया गया है।

प्रत्येक परिसंघीय राज्य व्यवस्था का यह चिन्ह और आवश्यक लक्षण है कि शक्तियों का विभाजन और वितरण राष्ट्रीय सरकार और राज्य सरकारों के बीच किया जाता है जिन शक्तियों को इस प्रकार विभाजित किया जाता है वे साधारणतया चार प्रकार की होती है ;क- विधायी , ख- कार्य पालिका ,ग- वित्तीय , घ- न्यायिक। अतः संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध 2.केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध 3.केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- 1.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कर सकेंगे।
- 2.केन्द्र एवं राज्यों के बीच प्रशासनिक शक्ति यों के विभाजन की विवेचना कर सकेंगे।
- 3.केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे।
- 4.केन्द्र राज्य सहयोग प्राप्त करने के विभिन्न उपयों की व्याख्या कर सकेंगे।

8.3 केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध

हमारे संविधान के अनुच्छेद 245.255 में केन्द्र राज्य के मध्य विधायी सम्बन्धों के बारे में बताया गया है। संघ व राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है। जिन्हें संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

१. संघ सूची: इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विशयों को रखा गया है। जिसके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विशयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विशय है। जिनमें से कुछ प्रमुख है- रक्षा, वैदेशिक मामले, देशीकरण व नागरिकता, रेल, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा, खाने व खनिज आदि।

२. राज्य सूची: इस सूची में साधारणतया वो विशय रखे गये हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विशयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। इस सूची में 66 विशय है, जिनमें से कुछ प्रमुख है- पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक व्यवस्था, कृषि, सिंचाई आदि।

३. समवर्ती सूची: इस सूची में सामान्यतया वो विशय रखे गये हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दृष्टियों से है। इस सूची के विशयों पर संघ तथा राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि समवर्ती सूची के विशय पर संघीय संसद तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो तो सामान्यतयः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विशय है। जिनमें से कुछ प्रमुख ये है- फौजदारी, निवारक बिरोध, विवाह तथा विवाह विच्छेद दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ औद्योगिक विवाद, आर्थिक और समाजिक योजना और सामाजिक बीमा, पुर्नवास और पुरातत्व आदि।

अवशेश विशय: आट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका में अवशेश विशयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाईयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की भांति अवशेश विशयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गयी है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शक्तियों के बटवारे में केन्द्र सरकार की तरफ झुकाव अधिक है।

8.3.1 राज्य सूची के विशय पर संसद की व्यवस्थापन की शक्ति

सामान्यतया संविधान द्वारा किये गये शक्ति विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा, नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विशय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघ सूची के किसी विशय पर निर्मित कानून अवैध होगा। लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विशयों पर भी कानून का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं।

8.3.1.1 राज्य सूची का विशय राष्ट्रीय महत्व का होने पर

संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपने दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में उल्लिखित कोई विशय राष्ट्रीय महत्व का हो गया है तो संसद को उस विशय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्य सभा द्वारा पुनः प्रस्ताव स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वृद्धि और हो जाएगी।

8.3.1.2 संकट कालीन घोशणा होने पर

अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकालीन घोशणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिनी शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है ; अनुच्छेद 250 इस घोशणा की समाप्ति के छः माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत चलते रहेंगे।

8.3.1.3 राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर

अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्हीं विशयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाय, तो उन राज्यों के लिए उन विशयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाएगा। राज्यों के विधानमण्डल न तो इन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्ण रूप से समाप्त कर सकते हैं।

8.3.1.4 विदेशी राज्यों से हुई संधियों के पालन हेतु

; अनुच्छेद 253, यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की संधि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विशय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

8.3.1.5 राज्यों में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर

यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया जाता है इस स्थिति में राज्य की समस्त विधायी शक्तियां संसद द्वारा अथवा संसद के प्राधिकार के अधीन इस्तेमाल की जाती हैं इस अधिकार के तहत संसद किसी भी सूची के किसी भी विशय पर विधायन बना सकता है।

8.3.1.6 कुछ विशयों के प्रस्तावित करने और कुछ को अन्तिम स्वीकृत के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक

उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विशयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विशयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304 ;ख के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं जिनके राज्य विधान मण्डल में प्रस्तावित किए जाने के पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृत की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए वे विधेयक जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से उस राज्य के अन्दर या उससे बाहर, वाणिज्य या मेल जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

8.4 केन्द्र राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध

किसी भी परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत केन्द्र व राज्यों की कार्यपालिकायें अलग-अलग होती हैं। जहाँ तक विधान बनाने का प्रश्न है दोनों के क्षेत्र को तय करना कठिन नहीं है क्योंकि सप्तम अनुसूची में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है। प्रशासनिक मामलों में बहुत सी कठिनाइयां सामने आती हैं कुछ मामले ऐसे होते हैं जिन्हें स्थानीय स्तर पर अच्छी तरह निपटाया जा सकता है और कुछ मामले ऐसे होते हैं जिनके लिए बड़े संगठन की आवश्यकता होती है जिससे क्षमता और मितव्ययता संभव हो सके। इसके अतिरिक्त परिसंघ की विभिन्न इकाइयों के बीच समन्वय स्थापित करना तथा उनके झगड़े तय करना भी आवश्यक हो जाता है। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखकर संविधान निर्माताओं ने अनुच्छेद 256 से 263 तक कुछ उपबन्ध किए हैं।

8.4.1 राज्य सरकारों को निर्देश देने की संघ सरकार की शक्ति

संविधान के अनुच्छेद 256 के अनुसार राज्य सरकार का यह कर्तव्य है कि संसद द्वारा पारित विधि को मान्यता है। इस प्रावधान का यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक राज्य की प्रशासनिक शक्ति को इस प्रकार प्रयोग में लाना होता है कि वह संघ सरकार की प्रशासनिक शक्ति को प्रतिबन्धित न करें। संघ सरकार आवश्यकतानुसार इस प्रकार के निर्देश भी राज्य सरकार को दे सकती है। इसके अतिरिक्त संघ सरकार राज्यों को निम्नलिखित विशयों पर निर्देश दे सकती है-

1. राष्ट्रीय तथा सैनिक महत्व के यातायात तथा सूचना के साधनों का निर्माण और उनकी देखभाल करना।

2. राज्य में विद्यमान रेलमार्ग की सुरक्षा करना। तो भी जब कभी किसी यातायात के साधन के निर्माण अथवा देखभाल करने में अथवा रेलमार्ग की सुरक्षा करने में राज्य सरकार को अतिरिक्त व्यय करना पड़ जाता है तो भारत सरकार उसका भुगतान राज्य को कर देती है। और यदि अतिरिक्त व्यय की राशि के लिए कोई मतभेद हो जाता है तो भारत को मुख्य न्यायाधीश के द्वारा नियुक्त मध्यस्थ इसका निर्णय करता है। ; अनुच्छेद 257।

3. परिगणित जनजातियों के हित के लिए बनाई योजनाओं को लागू करना ; अनु. 339।

8.4.2 संघ सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने में असफल रहने का प्रभाव

संघ सरकार को संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत सामान्य तथा असामान्य अवस्थाओं में जो निर्देश देने की शक्ति दी गई है उसके परिणामस्वरूप यह भी बात सामने आती है कि यदि संविधान के किसी भी प्रावधान के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन राज्य सरकार नहीं करती तो राष्ट्रपति यह मान सकता है कि राज्य सरकार संविधान के अनु. 365 के अन्तर्गत प्रावधान के अनुसार कार्य करने के समर्थ नहीं है। जैसे ही यह घोशणा की जायेगी, राज्य सरकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत बरखास्त कर दी जायेगी। इस आधार पर राज्य की विधानसभा या तो निलम्बित की जा सकती है या भंग की जा सकती है।

8.4.3 संघ द्वारा राज्यों की शक्ति देने का अधिकार

भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषता यह है कि यह सहकारी संघ प्रणाली पर आधारित है। भारत सरकार के 1935 के विधान के समान यह संघ को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह प्रतिबन्ध सहित अथवा प्रतिबन्ध

रहित कुछ कार्य राज्य सरकारों को सौंप दे अथवा राज्य सरकारों को स्वीकृति से इसके अधिकारियों को सौंप दे ;अनु. 258।

इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में तो राज्य सरकारों की अनुमति के बिना भी लोकसभा कानूनन अधिकार दे सकती है और राज्य के अधिकारियों को कार्य सौंप सकती है। जो भी ऐसे मामलों में यदि राज्य सरकार को कुछ अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है तो उसको भारत सरकार अदा करती है। यदि होने वाले अतिरिक्त व्यय के विशय में भारत सरकार और राज्य सरकारों में मतभेद हो जाता है तो उसका निर्णय भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ के द्वारा किया जाता है। इस अनुच्छेद के अनुसार जनगणना करवाना, चुनाव के लिए मत-सूची तैयार करवाना और चुनाव करवाना ये तीनों काम राज्य सरकारों को सौंपे हुए हैं।

8.4.4 राज्य सरकारों द्वारा संघ सरकार को कार्य सौंपने की शक्ति

मूलतः संविधान में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है जिसके अनुसार एक राज्य सरकार कुछ कार्य भारत सरकार के किसी अंग को सौंप सकें। सम्भवतः संविधान निर्माताओं ने यह कभी नहीं सोचा था कि कभी ऐसी भी घटना हो सकती है। केन्द्र सरकार ने जब उड़ीसा सरकार की ओर से हीराकुण्ड बांध का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया और यह निर्णय किया कि इसकी लागत राज्य सरकार के खातों से खर्च होगी तो लेखा नियन्त्रक ;कन्ट्रोलर अथवा महालेखा परीक्षक ;ऑडिटर जनरल ने आपत्ति की। उसके पश्चात् 1956-का सातवां संविधान संशोधन पारित किया गया और संविधान में अनुच्छेद 258 ए जोड़ दिया गया। इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य के राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया कि वह सप्रतिबन्ध अथवा अप्रतिबन्ध रूप से कुछ कार्य सौंप दे जिससे राज्य की प्रशासनिक शक्ति संघीय सरकार के अधिकारियों के पास पहुँच जाये। परन्तु यह सब भी भारत सरकार की अनुमति से ही हो सकता है।

8.4.5 राज्यपालों की नियुक्ति और बर्खास्तगी

राज्यपाल किसी भी राज्य के संवैधानिक प्रमुख होते हैं। राष्ट्रपति इनकी नियुक्ति बरखास्तगी अथवा स्थानान्तरण करता है। वस्तुतः वे शुद्ध रूप से संघीय सरकार की दयाभाव पर निर्भर हैं। इसलिए अनेक बार उन्हें केन्द्रीय सरकार के दबाव के कारण मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करने तथा पदच्युत करने और विधानसभा की बैठक बुलाने, स्थगित करने तथा भंग करने का कर्तव्य निबाहना पड़ता है। राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों को निश्चित करने और राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए सिफारिश करने के अधिकारों का प्रयोग केन्द्र में सत्ता दल के हितों को ध्यान में रखते हुए करना पड़ता है। इस प्रकार बहुत हद तक केन्द्र राज्यों की स्वायत्ता को राज्यपालों के द्वारा नष्ट कर देता है।

8.4.6 राज्य सरकारों को बरखास्त करना

संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। यद्यपि इसमें यह अवश्य है कि यदि राष्ट्रपति सन्तुष्ट हो जाता है कि परिस्थिति ऐसी बन गई है जिसमें राज्य की सरकार संविधान में यि गये प्रावधान के अनुसार कार्य नहीं कर रही है। इस अनुच्छेद का केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी ने पुनः-पुनः प्रयोग पक्षपातपूर्ण उद्देश्यों के लिए किया और दूसरी और राज्यों की स्वायत्ता को नष्ट करने के लिए किया। जो भी राज्य सरकार अपने अनूकूल न दिखाई दी उसे ही पदच्युत कर दिया गया तथा विधानसभाओं को या तो निलम्बित कर दिया गया अथवा केन्द्र में शासन करने वाली पार्टी के हितों को ध्यान में रखते हुए उसे

भंग कर दिया गया। उस अनुच्छेद ने वस्तुतः राज्य सरकारों को प्रशासन की दृष्टि से सर्वथा केन्द्र के अधीन बना दिया।

8.4.7 मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध जाँच आयोग

एक दूसरा उपाय जिसके द्वारा संघ सरकार राज्य सरकारों पर पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रखती है, वह है केन्द्र सरकार द्वारा मुख्यमंत्रियों के भूल-चूक या अच्छे-बुरे कार्यों के लिए उनके विरुद्ध जाँच-आयोग बैठाना। इस प्रकार का जाँच आयोग सबसे पहले पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रताप सिंह कैरों के विरुद्ध संघ सरकार ने 1963 में दास आयोग के नाम से बैठाया था। इसके उपरान्त इस प्रकार के जाँच आयोग बैठाए गए जैसे 1972 में पंजाब में सरकार प्रकाश सिंह बादल के विरुद्ध, 1976 में तमिलनाडु में करुणानिधि के विरुद्ध सरकारिया आयोग, आन्ध्र में वेंगल राव के विरुद्ध विया दलाल आयोग, कर्नाटक में देवराज उर्स के और हरियाण में बंसी लाल के विरुद्ध 1978 में, और त्रिपुरा के मुख्यमन्त्री एस. एस. सेन गुप्त के विरुद्ध 1979 में बर्मन आयोग। 1981 में संघ सरकार ने तमिलनाडु और केरल में स्पिरिट घोटाले के विषय में जांच करने लिए प्रे आयोग की नियुक्ति की थी।

8.4.8 अखिल भारतीय सेवाओं पर नियन्त्रण

संविधान में राज्यों की सेवाओं और केन्द्र सेवाओं का प्रावधान है। तो भी कुछ सेवाएँ ऐसी हैं जो अखिल भारतीय हैं, जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा ;इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, और भारतीय पुलिस सेवा ;इण्डियन पुलिस सर्विस, केन्द्र सरकार इसके अतिरिक्त भी अखिल भारतीय सेवाओं का निर्माण कर सकती है यदि राज्य सभा उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके इस प्रकार की अखिल सेवा के बनाने की सिफारिश करें। केन्द्र की अनुमति के बिना उन पर कोई भी अनुशासनिक कार्यवाही नहीं की जा सकती।

8.5 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध

कोई भी सरकार बगैर धन के सुचारू रूप से नहीं चल सकती है एक परिसंघीय संविधान के अन्तर्गत राज्यों की स्वतंत्रता आवश्यक होती है। यह स्वतंत्रता तभी रह सकती है जब राज्यों के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था हो। प्रायः सभी मुख्य परिसंघों में वित्तीय व्यवस्था की राज्यों पर नियंत्रण रखने के लिए भी प्रयाग किया जाता है। इसलिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 263.293 तक वित्तीय सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। अनुच्छेद 265 के उपबन्ध प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के करों पर लागू होते हैं। अनुच्छेद 266 के अनुसार भारत सरकार प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया गया धन तथा उद्योग के प्रतिदान में प्राप्त सभी धनों की एक संचित निधि बनेगी जो भारत की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी और इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा प्राप्त सभी राजस्व उधार लिया धन तथा उधार के प्रतिदान में प्राप्त धनों की एक संचित निधि बनेगी जो राज्य की संचित निधि ; के नाम से ज्ञात होगी। भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सभी सार्वजनिक धन लोक लेखे ; में जमा किया जाएगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 267 में भारत व राज्यों के लिये आकस्मिकता निधि की व्यवस्था है जो अपूर्व दृष्ट ; व्यय के लिए क्रमशः राष्ट्रपति व राज्यपालों के हाथ में रखी जाएगी।

8.5.1 संघ और राज्यों की बीच राजस्व वितरण

भारतीय संघ में संघ और राज्यों के बीच राजस्व वितरण की निम्नलिखित पद्धति अपनाई गई है।

8.5.2 संघ द्वारा आरोपित किन्तु राज्यों द्वारा संग्रहित तथा विनियोजित शुल्क

अनुच्छेद 268 में यह उपलब्ध है कि ऐसे मुद्रा शुल्क औशधीय और प्रसाधनीय पर ऐसे उत्पादन शुल्क जो संघ सूची में वर्णित है, भारत सरकार द्वारा आरोपित किये जायेंगे परन्तु संघ राज्य क्षेत्र के भीतर उदग्रहीत ;समअपमकद्ध किए जाने वाले शुल्क भारत सरकार द्वारा और राज्यों के बीच उदग्रहीत शुल्क राज्य सरकारों द्वारा संग्रहीत किये जाएंगे। जो शुल्क राज्यों के भीतर उदग्रहीत किए जाएंगे वे भारत की संचित निधि में जमा न होकर उस राज्य की संचित निधि में जमा किए जाएंगे।

8.5.3 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत परन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले कर

कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल समुद्र तथा वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान प्रदान पर मुद्राक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य से माल के क्रय विक्रय पर कर।

8.5.4 संघ द्वारा उदग्रहीत तथा संग्रहीत किन्तु संघ और राज्यों के बीच वितरित कर

कुछ कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं किन्तु उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आयकर का विभाजन संघीय भू भागों के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आयकर के अतिरिक्त दवा तथा शौक श्रृंगार सम्बन्धी जीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

8.5.5 संघ के प्रयोजन के लिए कर

अनुच्छेद 271 में यह उपबन्ध है कि संसद 269 और 270 में निर्दिष्ट शुल्कों या करों की अधिभार द्वारा वृद्धि कर सकती है। अधिभार से हुई सारी आय भारत की संचित निधि का भाग होगी। संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार आदि।

8.5.6 राज्यों के प्रायोजन के लिए कर

अनुच्छेद 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। इससे प्राप्त आय राज्य या उसकी नगर पालिकाओं, जिला वार्डों या स्थानीय बोर्डों के हितों में प्रयोग की जाएगी। राज्यों के मुख्य राजस्व स्रोत हैं- प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं और नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर वाहनों पर चुंगी कर आदि।

8.5.7 राजस्व में सहायक अनुदान

अनुच्छेद 273 के तहत पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान पैदा करने वाले राज्यों- बंगाल, उड़ीसा, बिहार व असम को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के लिए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है।

8.5.8 ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध-संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संपत्ति निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को भी प्राप्त है परन्तु वे विदेशी से उधान नहीं ले सकते। यदि राज्य सरकार पर केन्द्र सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कंही से कर्ज केन्द्र सरकार की अनुमति से ही ले सकती है।

8.6 भारत के नियंत्रक एवं महालेखा द्वारा नियन्त्रण

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने का ढंग एवं उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संसद राज्यों की आय पर अपना नियंत्रण रखती है।

8.7 वित्तीय संकटकाल

वित्तीय संकटकाल की स्थिति में राज्यों का आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान अथवा संघ के करों की आय में भाग बंटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1. अनुच्छेद 276 के अन्तर्गत राज्यों को वृत्तियों व्यापारों अजीविकाओं नौकरियों पर कर लगाने का प्राधिकार दिया गया है। सत्य असत्य/
2. अनुच्छेद 275 में उन राज्यों के लिए अनुदान की व्यवस्था है जिनके बारे में संसद यह निर्धारित करे कि उन्हें सहायता की आवश्यकता है। सत्य असत्य/
3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 265 में यह व्यवस्था है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई कर न लगाया जाएगा और न वसूल किया जाएगा। सत्य असत्य/
4. संघीय सरकार को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू करने की अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति दी गई है। सत्य असत्य/

8.8 सारांश

जिस प्रकार से एक गाड़ी को चलाने के लिए उसके दोनों पहियों, के मध्य समन्वय का होना आवश्यक है उसी प्रकार से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर समन्वय ही देश को विकास के क्षेत्र में ऊर्चाइयों पर ले जा सकता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात आरम्भिक वर्षों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य परस्पर सहयोग की भावना थी किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया दोनों के मध्य सम्बन्धों में दरारें दिखनी लगीं। इसका एक कारण तो यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सभी में अपने देश की सरकार के प्रति चरम सीमा पर उत्साह था तथा दूसरा कारण यह था कि ज्यादातर राज्यों में कांग्रेस की सरकार थी तथा केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य बड़े भाई तथा छोटे भाई जैसा रिश्ता था अतः तनाव न के बराबर था। तनाव उत्पन्न होने का मुख्य कारण राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का उदय होना था। धीरे-धीरे समय बीतने के साथ-साथ विभिन्न मुद्दों पर केन्द्र तथा राज्यों के मध्य तनाव बढ़ाने के मुख्य कारणों में राज्यपाल की भूमिका भी मुख्य रही है। क्योंकि राज्यपाल सरकारों में संविधानिक प्रमुख होने के स्थान पर केन्द्रीय एजेंट के रूप में ज्यादा कार्य करने लगे हैं। तनाव का एक और मुख्य कारण अखिल भारतीय सेवाएँ हैं जिसके कि सदस्यों को नियन्त्रित करने वाली केन्द्र सरकार होती है जबकि वो कार्य राज्य सरकारों में करते है और बगैर केन्द्र की अनुमति के उनके खिलाफ कड़ी कार्यवाही नहीं कर सकती है। तनाव का एक अन्य कारण वित्त भी है। कुछ सरकारें केन्द्र से मिले धन को राज्य के विकास में न लगाकर अपने राजनीतिक जनाधार को बढ़ाने में लगी रहती है। जिसे कि केन्द्र द्वारा अक्सर ही विरोध प्रकट किया जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्र राज्यों के मध्य सम्बन्ध केन्द्र में प्रधानमंत्री की स्थिति के ऊपर भी निर्भर करता है। 1990 के पश्चात केन्द्र में ज्यादातर सरकारें कमजोर रही हैं उसका सबसे बड़ा कारण साक्षात् सरकार का होना रहा है। केन्द्र में सरकार राज्यों के क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बनायी जा रही है। जिसकी कि वहज से समर्थन देने वाली पार्टी के राज्यों में केन्द्र सरकार ब्लेक मेल होती रहती है। इसके उदाहरण हमको दिन प्रतिदिन देखने को मिलते रहते हैं। यदि हमको वास्तव में अपने देश को तरक्की की राह पर ले जाना है तो केन्द्र सरकारों का राज्यों सरकारों के मध्य विवाद रहित तथा स्वार्थ रहित सम्बन्ध होने चाहिये।

संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रशासनिक, विधायी तथा वित्तीय क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया है और यह विभाजन संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची के माध्यम से किया गया है। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितियों में भी केन्द्र तथा राज्यों के मध्य सम्बन्धों को बताया गया है। स्पष्ट विभाजन के बावजूद भी विभिन्न क्षेत्रों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कठिनाइयाँ आती हैं। यह कठिनाइयाँ वहाँ अवष्य उत्पन्न होती हैं जहाँ केन्द्र तथा राज्यों में अलग-अलग पार्टी की सरकारें होती हैं। देश की तरक्की के लिए केन्द्र तथा राज्यों के मध्य मधुर सम्बन्ध का होना अत्यन्त आवश्यक है।

8.9 शब्दावली

अनुच्छेद 352	:	राष्ट्रीय आपात काल
अनुच्छेद 356	:	राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता
अनुच्छेद 360	:	वित्तीय आपात काल
अखिल भारतीय सेवाएँ :		भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

8.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. भारत का संविधान: ब्रज किशोर शर्मा, 2008ए प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लि. नई दिल्ली।
2. भारत में लोक प्रशासन : डा. बी. एल. फडिया, 2002ए साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
3. भारतीय प्रशासन : प्रो. मधू सूदन त्रिपाठी 2008ए ओमेगा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
4. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन डा. बी. एल. फडिया, डा. कुलदीप फडिया 2007ए साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

8.12 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन: अवस्थी एवं अवस्थी 2009ए लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा।
2. इंडियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: रमेश अरोडा, रजनी गोयल 2001ए विश्व प्रकाशन नई दिल्ली।
2. भारत का संविधान: डा. जी. एस. पाण्डेय 2001ए यूनिवर्सिटी बुक हाउस जयपुर।

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विधायी सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।
2. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
3. केन्द्र तथा राज्यों में मध्य वित्तीय सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
4. केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवाद के क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।

इकाई-9 राज्यपाल, मुख्यमंत्री

इकाई की संरचना

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.2 राज्यपाल
 - 9.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल
 - 9.2.2 राज्यपाल की शक्तियां और कार्य
 - 9.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध
 - 9.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति
 - 9.2.5 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति
- 9.3 मंत्रीपरिषद और मुख्यमंत्री
 - 9.3.1 मुख्यमंत्री की शक्तियां
 - 9.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य
 - 9.3.3 मंत्रीपरिषद और व्यवस्थापिका
 - 9.3.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व
- 9.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री
- 9.5 सारांश
- 9.6 शब्दावली
- 9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 9.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारत में जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर सभी राज्यों में शासन की वही पद्धति है जो केन्द्रीय स्तर पर मान्य है। दूसरे शब्दों में सभी राज्यों में संसदीय व्यवस्था है। प्रत्येक राज्य में कार्यपालिका का एक प्रमुख है जिसे राज्यपाल कहा जाता है। साथ में एक मन्त्रिपरिषद है, जिसका प्रमुख मुख्यमंत्री है जो राज्यपाल की सहायता करता है तथा परामर्श देता है। मन्त्रिपरिषद राज्य की विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है।

राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम से चलता है। राज्य की कार्यकारिणी शक्तियाँ राज्यपाल में निहित हैं। आमतौर पर एक राज्य का एक राज्यपाल होता है लेकिन कभी-कभी दो राज्यों का भी एक राज्यपाल होता है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

1. राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति को समझ पायेंगे।
2. राज्यपाल की शक्तियों और कार्यों की जानकारी ले सकेंगे।
3. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
4. राज्यपाल की आपातकालीन शक्तियों को समझ सकेंगे।
5. राज्य की राजनीति में राज्यपाल की भूमिका को समझ सकेंगे।
6. तुलनात्मक दृष्टि से राज्यपाल और राष्ट्रपति की शक्तियों की जानकारी लेंगे।
7. मुख्यमंत्री और विधानसभा के रिश्तों की जानकारी लेंगे।

9.2 राज्यपाल

संविधान के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होती है। केवल भारत का ऐसा नागरिक जो 314 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, राज्यपाल के पद पर नियुक्त हो सकता है। संविधान राज्यपाल की नियुक्ति के लिए कोई निश्चित योग्यता तय नहीं करता है। लेकिन साधारणतया विशिष्ट लोग इस पर नियुक्त किये जाते हैं। इसमें अवकाश प्राप्त राजनीतिक, सेना के पदाधिकारी, सेवी वर्ग के अधिकारी, प्रसिद्ध शिक्षाविद् इत्यादि होते हैं।

14.2.1 राज्यपाल का कार्यकाल

साधारणतया एक राज्यपाल पांच वर्ष के लिए नियुक्त होता है। वह राष्ट्रपति की मर्जी तक बना रहता है। अतः एक राज्यपाल पांच वर्ष से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। राज्यपाल यदि स्वयं चाहे तो राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है।

महाभियोग के द्वारा राज्यपाल को हटाने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही उसको हटाने में व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की कोई भूमिका है।

राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को उसके पद से हटाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है लेकिन पद के दुरुपयोग, भ्रष्टाचार, पक्षपात पूर्ण व्यवहार, संविधान के उल्लंघन, नैतिक पतन आदि के आधार पर राज्यपाल को हटाया जा सकता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के साथ राज्यों के राज्यपाल भी बदल दिये जाते हैं।

एक राज्यपाल अनेक बार राज्यपाल हो सकता है।

9.2.2 राज्यपाल की शक्तियाँ और कार्य

संवैधानिक रूप से राज्यपाल की अनेक शक्तियाँ हैं जिनमें कार्यकारिणी विधायनी तथा न्यायिक प्रमुख हैं। परन्तु यहाँ याद रखना होगा कि व्यवहार में राज्यपाल की यह शक्तियाँ नाम मात्र की हैं। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है:-

कार्यकारिणी शक्तियाँ

1. राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से मन्त्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है।
2. महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है।
3. राज्यपाल की मर्जी तक महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) अपने पद पर बना रह सकता है। वह राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को बर्खास्त कर सकता है लेकिन पदच्युत नहीं कर सकता।
4. यद्यपि राज्यपाल को उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है, लेकिन राष्ट्रपति इन न्यायधीशों को राज्यपाल के परामर्श से नियुक्त करता है।

14. यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हो कि एंग्लो इण्डियन सम्प्रदाय का कोई सदस्य यथावत् निर्वाचित नहीं हो सकता तो विधान सभा के लिए एक एंग्लो इण्डियन को मनोनीत कर सकता है।

6. यदि राज्य में विधान परिशद है तो राज्य पाल को विधान परिशद के 1/6 सदस्यों को नामित करने का अधिकार है परन्तु ऐसे सदस्य साहित्य, कला, विज्ञान, समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हो ।

विधायनी शक्तियाँ--राज्यपाल राज्य व्यवस्थापिका का एक अंग है। वह सदन का सत्र बुलाता है अथवा व्यवस्थापिका के किसी भी सदन के सत्र को स्थगित कर सकता है। वह सम्पूर्ण विधान सभा को भी भंग कर सकता है।

राज्यपाल को विधान सभा और विधान परिशद के सत्रों को अलहदा अथवा संयुक्तरूप से सम्बोधित करने का अधिकार है। वह दोनों सदनों को संदेश भी भेज सकता है।

राज्यपाल राज्य व्यवस्था के सामने वार्षिक वित्त लेखा जोखा (बजट) प्रस्तुत करने की संस्तुति देता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना वित्त विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकते जब तक कि राज्यपाल की अनुमति न मिले। जब एक विधेयक राज्यपाल के सम्मुख उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है तो वह-

1. विधेयक को अपनी संस्तुति प्रदान कर सकता है और विधेयक कानून बन जाता है।
2. या वह विधेयक पर अपनी संस्तुति रोक सकता है और विधेयक कानून नहीं बनता।
3. या वित्त विधेयक को छोड़कर साधारण विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका के पास पुर्नविचार के लिए वापस भेज देता है। यदि पुर्नविचार के बाद व्यवस्थापिका विधेयक को राज्यपाल के पास भेजती है तो वे विधेयक पर संस्तुति देने के लिए बाध्य हैं ।
4. वह विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर लेता है। ऐसा विधेयक तब ही कानून होगा जब राष्ट्रपति अपनी संस्तुति प्रदान करेंगे।

अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ

यदि व्यवस्थापिका के सदन सत्र में नहीं है, और किसी विशय पर कानून बनाने की तुरन्त आवश्यकता है, इस संदर्भ में राज्यपाल एक अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश का वही प्रभाव और दर्जा होगा जो व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। राज्यपाल उन्हीं विशयों पर अध्यादेश जारी करता है जो राज्य सूची या समवर्ती सूची में निहित हैं

अध्यादेश जारी करने की शक्ति राज्यपाल के औचित्य या स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति नहीं है। वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर ही अध्यादेश जारी करता है।

निम्न मामलो पर राज्यपाल तब तक अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जब तक पहले से उस पर राष्ट्रपति की अनुमति न हो-

1. ऐसा विशय जिस से सम्बन्धित विधेयक को राज्य व्यवस्थापिका में प्रस्तुतिकरण से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता हो: या
2. राज्यपाल ऐसे विशय से संबन्धित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता महसूस करता हो।

राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश राज्य व्यवस्थापिका के सम्मुख तब रखना अनिवार्य होता है जब उसका सत्र आरम्भ होता है और यदि 6 सप्ताह के भीतर वह अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है, तो वह समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा अध्यादेश व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो कानून बन जाता है।

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल की न्यायिक शक्तियों का सम्बन्ध ऐसे कानून से है जिनका उल्लंघन कार्यपालिका अर्थात् मंत्रीमंडल करता है। वह कानूनों का रखवाला है।

राज्यपाल कठोर दण्ड को हल्के दण्ड में (कम्यूटेशन) बदल सकता है, सजा को माफ (रेमीशन) कर सकता है, वह सजा या फता को राहत (रेस्पाइट) दे सकता है। लेकिन राज्यपाल का क्षमादान का अधिकार मृत्युदण्ड से सम्बन्धित नहीं है।

आपातकालीन शक्तियाँ

यदि राज्यपाल सन्तुष्ट हैं कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रहा है तो संविधान के अनुच्छेद 3146 के तहत राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश कर सकता है। जैसे ही राष्ट्रपति शासन राज्य में लागू होता है, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल राज्य का प्रशासन संभाल लेता है। परन्तु राज्यपाल की यह शक्ति बड़ी विवादास्पद रही है। उस पर आरोप लगता रहता है कि वह अकसर अपने औचित्य का गलत प्रयोग करता है।

विवेकाधीन शक्तियाँ

राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियाँ प्रयोग करने का अधिकार है। ऐसी शक्तियाँ-न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर है। इस सम्बन्ध में राज्यपाल को यह भी स्वतन्त्रता है कि वह तय करें कि उसे किस मामले पर विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करना है और इस बारे में उसका निर्णय अंतिम है।

कुछ ऐसी शक्तियाँ जिनके प्रयोग के लिए राज्यपाल मन्त्रिपरिषद से परामर्श के लिए बाध्य नहीं है। संभव है उसका ऐसा कदम मन्त्रिपरिषद की इच्छा के विरुद्ध हो। उदाहरण के लिए -

1. जब राज्यपाल अनुच्छेद 3146 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की सलाह दे।
2. राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल को अपनी विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग का अवसर मिलता है।

3.राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करके यह तय करता है कि राज्य व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत किस विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए आरक्षित रखा जाये।

कुछ राज्यपालों के पास अपने राज्यों से सम्बन्धित विशिष्ट उत्तरदायित्व भी है। इन राज्यों में नागालैण्ड, मणिपुर, आसाम, गुजरात और सिक्कम के राज्यपाल आते हैं।

9.2.3 राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्ध -

विधानसभा में बहुसंख्यक दल के नेता को राज्यपाल मुख्यमंत्री नियुक्त करता है। मुख्यमंत्री की सलाह पर राज्यपाल अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। यदि मन्त्रि परिशद विधान का विश्वास खो देती है तो राज्यपाल मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री को नियुक्त करने की तथा मन्त्रिपरिषद को बर्खास्त की शक्ति समय-समय पर विवादास्पत रही है। ऐसी स्थिति तब आती है जब विधान सभा में चुनाव के बाद बहुमत स्पष्ट न हो अथवा किसी समय विधान सभा में शासक दल में टूट फूट हो और बहुमत स्पष्ट न हो। तब राज्यपाल अपने विवेक से काम लेता है। परन्तु उसका यह विवेक परिस्थितियों के अनुसार होता है। क्योंकि वह केन्द्र के प्रति वफादार होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में जब राज्य और केन्द्र में दो विपरीत दलों की सरकारें हो, तब वह केन्द्र के हितों को ध्यान में रखकर विवेक का प्रयोग करता है जो किसी भी स्थिति में विवेकपूर्ण नहीं होता। ऐसी स्थिति में पीडित दल न्यायालय की शरण लेता है। राज्यपाल के पक्षपातपूर्ण रवैये की कड़ी आलोचना हुई है।

राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य टकराव का एक बड़ा कारण संविधान का अनुच्छेद 314 है। केन्द्र में सत्ताधारी दल सदा ही राज्यों की ऐसी सरकारों को गिराने का प्रयास करता है जहाँ राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार के विपरीत होती हैं। यह काम केन्द्रीय सरकार अपने प्रतिनिधि राज्यपाल से लेता है। वह केन्द्र के इशारे पर दुविधापूर्ण स्थिति का लाभ उठाकर अनुच्छेद 314 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर देता है, इससे राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच टकराव बढ़ता है और संघात्मक संरचना पर आंच आती है। यद्यपि इस व्यक्तिगत पसन्द को अक्सर न्यायपालिका ने नापसन्द किया है।

9.2.4 राज्यपाल की वास्तविक स्थिति

भारत में एक ओर संघात्मक व्यवस्था है तो दूसरी ओर संसदात्मक जो केन्द्र में भी है और राज्यों में भी। केन्द्र के समान राज्यपाल राज्य कार्यपालिका का संवैधानिक प्रधान (हैड) है। कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद करती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद अपने सभी कृत्यों के लिये व्यवस्थापिका के निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी है। यह स्थिति बिल्कुल केन्द्र के समान है।

इन समानताओं के बावजूद, जो केन्द्र और राज्यों में पाई जाती है, राज्यपाल की स्थिति और भूमिका राष्ट्रपति की स्थिति के समान नहीं है। कारण है राज्यपाल की दोहरी भूमिका। एक ओर राज्यपाल राज्य शासन का मुखिया है तो दूसरी ओर वह राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है। यह एक विशम स्थिति है क्योंकि संविधान में राज्यपाल की शक्तियाँ स्पष्ट नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि राज्यपाल को हटाने या उसको नियन्त्रित करने की शक्ति राज्य में निहित नहीं है। इस स्थिति ने राज्यपाल की कुर्सी को मजबूत किया है और वह केन्द्र में सत्ताधारी दल से सरलता से प्रभावित

होता है। परिणामस्वरूप राज्य के सत्ताधारी दलों से उसका टकराव बढ़ जाता है। सक्रिय अथवा अवकाश प्राप्त राजनीतिज्ञों ने इस पद पर पहुँचकर स्थिति को और गंभीर बनाया है।

वास्तव में अनुच्छेद 314 के अक्सर दुरुपयोग करके राज्यपाल ने स्वयं को राज्य का एक संवैधानिक मुखिया कम एक कुशल राजनीति अधिक सिद्ध किया है। इससे राज्य में अस्थिरता, दल- बदल और जोड़-तोड़ की राजनीति को बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिये 1960 से 1967 तक राज्यों में विरोधी दलों की ग्यारह बार सरकारें बर्खास्त की गईं जबकि 1967 से 1977 तक 8 बार ऐसी सरकारें बर्खास्त की गईं। 1977 के आम चुनावों के बाद केन्द्र में जनता दल की सरकार ने राज्यों में कांग्रेस की नौ राज्यों की सरकारों को बर्खास्त किया। 1980 में कांग्रेस ने बदले में विरोधी दलों की ग्यारह राज्य सरकारों को अपदस्थ किया, और यह सब कुछ केन्द्र ने राज्यपालों के माध्यम से कराया।

9.2.14 राज्यपाल की संवैधानिक स्थिति

राज्य के शासनतंत्र में राज्यपाल की एक महत्वपूर्ण हैसियत है। यथार्थ उस से राज्य में शासन के मुखिया की हैसियत से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, और इसलिये वह मन्त्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करता है, परन्तु उसे मात्र रबर की मोहर नहीं कहा जा सकता। राज्यपाल की स्थिति के बारे में संविधान में दो प्रावधान हैं। अनुच्छेद 114 के तहत राज्यपाल को जो शपथ लेनी होती है उसके अनुसार यह स्पष्ट है कि वह पूरी निष्ठा से अपने पद का निर्वाह करेगा, अपनी पूरी योग्यता से संविधान और कानून की रक्षा करेगा, और राज्य के लोगों की सेवा में स्वयं को समर्पित करेगा। इस शपथ से यह स्पष्ट होता है कि लोगों की सेवा से संबन्धित उसकी सोच और मन्त्रिपरिषद की सोच में अन्तर हो सकता है, जो टकराव का कारण बन सकता है।

उधर अनुच्छेद 163(1) स्पष्ट करता है कि अपने कार्यों के निष्पादन के लिये राज्यपाल को परामर्श और सहायता प्रदान करने के लिये एक मन्त्रिपरिषद होगी, लेकिन वहीं तक जहाँ राज्यपाल की स्वतन्त्र शक्तियों के निष्पादन का प्रश्न न हो। स्वतंत्र शक्तियों के प्रयोग में राज्यपाल का निर्णय अन्तिम होगा।

अनुच्छेद 163(2) पुनः व्यवस्था करता है कि राज्यपाल का कौन सा कार्य उसके क्षेत्राधिकार में आता है और कौन सा नहीं, यह राज्यपाल ही तय करेगा और वह जो भी करेगा उस पर जबाब तलब नहीं किया जायेगा।

प्रत्येक राज्यपाल परिस्थितियों के अनुसार अपने औचित्य की शक्ति का प्रयोग करता है, समान परम्पराएँ नहीं हैं। यद्यपि इस व्यवहार की आलोचना की गई है, लेकिन संवैधानिक दृष्टि से यह उचित है। राज्यपाल की हैसियत राजनीतिक है इसलिये पूरी निष्पक्षता के साथ उसका व्यवहार करना असंभव है। वास्तव में अक्सर विधायक स्वयं ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करते हैं जहाँ राज्यपाल को बड़े कदम उठाने पड़ते हैं।

9.3 मन्त्रिपरिषद और मुख्यमंत्री

प्रत्येक राज्य में एक मन्त्रिपरिषद होती है जिसका मुखिया मुख्यमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद का कार्य राज्यपाल को उसके कार्यों के निष्पादन के लिये सहायता करना और परामर्श देना है लेकिन राज्यपाल के स्वविवेकी कार्य मन्त्रिपरिषद के क्षेत्राधिकार से बाहर हैं।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है और उसके परामर्श से राज्यपाल अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। आम या मध्यावधि चुनावों के बाद यदि विधान सभा में दल के नेता को बहुमत प्राप्त होता है तो राज्यपाल का कार्य सरल हो जाता है। वह बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद पर नियुक्त कर देता है। अगर किसी भी दल का बहुमत नहीं होता तो स्थिति जटिल हो जाती है और राज्यपाल को अपने विवेक का प्रयोग करना होता है। यही वह स्थिति है जो अक्सर विवादास्पद बन जाती है।

9.3.1 मुख्यमंत्री की शक्तियाँ

मुख्यमंत्री की हैसियत मन्त्रिपरिषद में महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। वास्तव में मन्त्रियों की नियुक्ति वही करता है और उन्हें बर्खास्त करने का अधिकार भी उसी के पास है। वह अपने मंत्रियों में विभाग आवंटित करता है। वह कैबिनेट की मीटिंगों की अध्यक्षता करता है। आमतौर पर मुख्यमंत्री स्वयं अनेक विभाग अपने पास रखता है। इसके अतिरिक्त शासन के सभी विभागों का निरीक्षण करना भी मुख्यमंत्री का उत्तरदायित्व है।

भारतीय संविधान में मुख्यमंत्री की शक्तियों का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु व्यवहार में राज्य में उसकी वही स्थिति है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री की है। दूसरी ओर राज्यपाल के संदर्भ में संविधान की यह व्यवस्था है कि मुख्य मंत्री के कुछ उत्तरदायित्व हैं:

(अ) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह राज्य से संबन्धित प्रशासन तथा विधि प्रस्तावों से राज्यपाल को अपने निर्णयों के बारे में अवगत कराये।

(आ) मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि राज्य के मामलों से सम्बन्धित प्रशासन के बारे में तथा विधि प्रस्तावों के बारे में यदि राज्यपाल कोई सूचना मांगे तो वह उसे मुहैया कराये तथा

(इ) राज्यपाल मुख्यमंत्री से ऐसे मामलों पर सूचना मांग सकता है जिसका निर्णय मंत्री ने तो लिया है पर जिसे मन्त्रिपरिषद के सम्मुख न रखा गया हो।

मुख्यमंत्री की एक महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि वह विधान सभा को भंग करने की सिफारिश, राज्यपाल से कर सकता है।

9.3.2 मुख्यमंत्री के कार्य

शक्तियों और कार्यों की दृष्टि से मुख्यमंत्री की अपनी हैसियत उसके व्यक्तित्व में निहित है। यदि उसका व्यक्तित्व मजबूत है तो वह प्रभावशाली मुख्य मंत्री होता है। परन्तु सच यह है कि मुख्य मंत्री की सारी शक्तियाँ और कार्य मंत्री परिषद में निहित है जिसका व्यक्तित्व सामुहिक है।

मन्त्रिपरिषद वास्तव में राज्य की मुख्य कार्यपालिका है। यह प्रशासन की नीतियों का निर्माण करती है। विधि निर्माण के कार्य को तैयार और प्रक्रिया आगे बढ़ाती है और कानून पास हो जाते हैं तो उनके कार्यान्वयन का निरीक्षण करती है। कैबिनेट द्वारा वार्षिक बजट तैयार किया जाता है और विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है। लगभग सभी वित्तीय शक्तियाँ परिषद में निहित हैं यद्यपि यह राज्यपाल के नाम से पहिचानी जाती है।

संविधान ने राज्यपाल को व्यवस्थापिका के सत्र की अनुपस्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया है परन्तु यथार्थ में यह शक्ति भी कैबिनेट के पास है। राज्यपाल व्यवस्थापिका के सम्बोधित करता है तथा संदेश भेजता है परन्तु उसका अभिभाषण कैबिनेट द्वारा तैयार किया जाता है। राज्यपाल को विधान सभा को बर्खास्त करने का अधिकार है लेकिन इस अधिकार का प्रयोग भी मन्त्रिपरिषद करती है। ऐसा राज्य जिसमें विधान परिषद होती है उसमें कुछ सदस्य नामित करने का अधिकार राज्यपाल को है परन्तु व्यवहार में यह कार्य भी राज्यपाल कैबिनेट की सिफारिश पर करता है। इसी तरह राज्य की क्षमादान या क्षमा को कम करने की शक्ति भी मन्त्रि परिषद की सिफारिश पर आधारित है।

9.3.3 मन्त्रिपरिषद और व्यवस्थापिका

मन्त्रिपरिषद के मंत्री व्यवस्थापिका के सदस्यों से लिये जाते हैं और वे सामूहिक रूप से व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यदि एक मंत्री विधान सभा में पराजित हो जाता है तो सब को त्यागपत्र देना चाहिए। यह सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। इसलिए सभी मंत्री व्यवस्थापिका के सदन पर एक दूसरे का बचाव करते हैं।

व्यवस्थापिका सदस्य प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के माध्यम से मंत्रियों को नियंत्रित करते हैं। इस तरह वे सरकार की कमियों और गलतियों को उजागर करते हैं। वे मंत्रालय के विरुद्ध स्थगन और निन्दा प्रस्ताव लाते हैं। अन्त में विधान सभा के सदस्य सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव लाते हैं। यदि यह प्रस्ताव पारित हो गया, तो सरकार को त्यागपत्र देना होता है। इसी तरह यदि सरकार द्वारा पारित और समर्थित विधेयक विधान सभा में पराजित हो गया तो इसको अविश्वास का मत समझा जायेगा और सरकार को त्यागपत्र देना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रिपरिषद का अस्तित्व पूरी तरह सदन के विश्वास पर टिका होता है।

मन्त्रिपरिषद भी व्यवस्थापिका पर नियंत्रण रखती है। वास्तव में व्यवस्थापिका में पूरी कार्यवाही को नियंत्रित करते हैं। अधिकांश विधेयक मंत्रालयों द्वारा लाये जाते हैं और क्योंकि उनको बहुमत दल का विश्वास प्राप्त होता है, यह विधेयक सफलता से पास हो जाते हैं। कोई भी ऐसा विधेयक जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होता, पास नहीं हो सकता। संविधान के 142वें संशोधन ने जिस दल-बदल विरोध कानून कहा जाता है, मन्त्रिपरिषद की स्थिति को मजबूत किया है।

जब दल-बदल आम बात थी, राज्य के मंत्रियों के सिर पर तलवार लटकी रहती थी। यह अस्थायित्व का काल था लेकिन अब यदि कोई सदस्य दल बदलता है तो वह अपने सदन की सीट खो देता है। इससे दल-बदल की परम्परा समाप्त हुई है।

मन्त्रिपरिषद के हाथों में एक और ऐसा शक्तिशाली हथियार है जो व्यवस्थापिका को उसके नियंत्रण में रखता है। विधान सभा को भंग कराने का अधिकार मुख्यमंत्री के पास है। यदि उसके दल के सदस्य अनुशासनहीन होते हैं और सरकार के विरुद्ध मतदान करते हैं, तो मुख्यमंत्री विधान सभा को भंग करने की सिफारिश कर सकता है। सीट खोने का भय सदस्यों को अनुशासित रखता है। फिर भी मिला-जुला मन्त्रि मण्डल सदा अस्थिर होता है और ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री की स्थिति कमजोर होती है। यहाँ तक कि दल-बदल विरोधी कानून भी मिली जुली सरकार को स्थिरता की गारण्टी नहीं दे सकता।

9.3.4 मुख्यमंत्री का अपना व्यक्तित्व

मुख्यमंत्री की स्थिति बहुत कुछ हद तक उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (सीपीएम) के पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु एक लम्बे समय तक अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपने बहुमत दल का विश्वास प्राप्त करके अपने पद पर बने रहे। उनका अपना दल, सीपीएम कभी केन्द्र में सत्ताधारी दल नहीं रहा।

कोई भी मुख्यमंत्री जिसका प्रभावशाली व्यक्तित्व है, शक्तिशाली समझा जाता है। उसके सहयोगी उसके लिए वफादार होते हैं। ऐसी सरकार जनहित के कार्य करती है। वह केन्द्र के दबावों से मुक्त रहता और खुलकर काम करता है।

9.4 राज्यपाल और मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री और राज्यपाल के रिस्तों में अक्सर कड़वाहट रहती है। इस कड़वाहट का कारण है दलीय द्वन्द। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है। जब केन्द्र में और राज्य में एक ही दल की सरकारें होती हैं, तब राज्यपाल और मुख्यमंत्री में सामंजस्य बना रहता है। लेकिन जब केन्द्र और राज्य में विरोधी दलों की सरकारें होती हैं तो टकराव की स्थिति आ जाती है। विशेष रूप से जहाँ राज्य में मिली जुली सरकारें हैं वहाँ राज्यपाल स्थिति का लाभ उठाकर राज्य सरकार को बर्खास्त करने का प्रयास करता है। ताजा उदाहरण उड़ीसा का जहाँ, भारतीय जनता पार्टी की येदुरप्पा की सरकार को राज्यपाल ने बर्खास्त करने का प्रयास किया।

1992 में भारतीय जनता पार्टी की तीन सरकारों को केन्द्र के इशारे पर राज्यपाल ने बर्खास्त कर दिया। कारण था 06 दिसम्बर 1992 को अयोध्या के विवादित ढाँचे को कारसेवकों द्वारा ध्वस्त किया जाना। सरकारों को बर्खास्त करना एक राजनीतिक फैसला था। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि मध्य प्रदेश में बीजेपी सरकार की बर्खास्तगी गैर कानूनी थी क्योंकि राज्यपाल ने केन्द्र को जो रिपोर्ट भेजी थी, वह पर्याप्त रूप में यह सिद्ध नहीं करती थी कि राज्य में सरकार संविधान के अनुसार चलने में असफल हो गयी है। लेकिन जब यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो उसने यह फैसला दिया कि राज्यपालों का फैसला, जो वास्तव में ग्रेस सरकार का फैसला था औचित्यपूर्ण था क्योंकि बर्खास्तगी का आधार “धर्म निरपेक्षता” था। जो भारतीय संविधान की मूल आत्मा है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि तीनों राज्यों की बीजेपी सरकारें अपना धर्म निरपेक्ष आचार खो चुकी थी। इसलिए उनका बना रहना संविधान की आत्मा के विपरीत था।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले से राज्यपाल को अपने औचित्य की शक्ति को सशक्त करने का और अवसर मिला और इसका एक नतीजा यह निकला कि मुख्यमंत्री, राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व अपनी पसंद और नापसंद की बात करने लगे।

मुख्यमंत्रियों ने भी सरकारी आयोग का हवाला दिया। सरकारी आयोग ने अपनी सिफारिशों में कहा कि राज्यपाल अपने पद से सेवानिवृत्त होने के बाद किसी प्रकार की राजनीति में भाग नहीं लेगा। इस सिफारिश को अंतर्राज्यपरिषद ने दिसम्बर 1991 में स्वीकार कर लिया। दूसरी सिफारिश यह थी कि राज्यपाल की नियुक्ति से पहले उस राज्य के मुख्यमंत्री से सलाह ली जाये।

अक्सर यह देखा गया है कि राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद राज्यपाल सक्रिय राजनीति में दाखिल हो गये, मुख्यमंत्री बनाये गये, चुनाव लडा और संसद सदस्य बने तथा अन्य लाभ के पदों पर नियुक्त किये गये। इसका नतीजा यह निकलता है कि राज्यपाल एक निष्पक्ष भूमिका अदा नहीं करते और परिणाम स्वरूप राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य खटास उत्पन्न होती है।

अभ्यास प्रश्न:

1. राज्यपाल की नियुक्ति कौन करता है ?
2. राज्यपाल की नियुक्त हेतु न्यूनतम आयु क्या हो?
3. राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता किस अनुच्छेद के तहत होती है?
4. भारत में एकात्मक शासन है या संघात्मक?
14. राज्य में मंत्रिपरिषद का मुखिया कौन होता है ?
6. राज्य में संवैधानिक प्रधान कौन होता है?
7. दलबदल विरोधी कानून सर्वप्रथम किस संवैधानिक संशोधन द्वारा बनाया गया?
8. अयोध्या का विवादित ढांचा १९९२ में किस तिथि को गिराया गया ?

9.14 सारांश

भारत में संसदीय व्यवस्था है, केन्द्र में भी, राज्य में भी। राज्यों में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त है-राज्यपाल जो नियुक्त है और मुख्यमंत्री जो निर्वाचित है। राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि है और राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है। लेकिन मुख्यमंत्री जनता का प्रतिनिधि है और विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए मुख्यमंत्री राज्यपाल से अधिक महत्वपूर्ण है।

राज्यपाल की जो शक्तियाँ हैं वह संवैधानिक हैं लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमंत्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है, इसलिए वह अधिक सशक्त है।

मन्त्रिपरिषद जो एक सामूहिक उत्तरदायित्व वाली संस्था है। मुख्यमंत्री इस संस्था को नेतृत्व करता है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। अनुच्छेद-3146 का प्रयोग करके अक्सर राज्यपाल को बदनामी मिली है।

सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। 30प्र0 के प्रथम मुख्यमंत्री पं० गोविंद वल्लभ पंत अदम्य साहस और अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। वह एक कुशल वक्ता और कुशाग्र बुद्धि के धनी थे।

राज्यपाल बड़ी गरिमा का पद है। उदाहरण 30प्र0 की पहली राज्यपाल श्रीमती सरोजनी नायडू ने इस पद को गौरवान्वित किया है।

राज्य में मुख्यमंत्री के कार्य वही हैं जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

9.6 शब्दावली

कन्वेंशन	परम्परा
रेमीशन	सजा को कम करना या उसका स्वरूप बदलना
रेपरीव	सजा माफ करना या टालना
डिसक्रीशन	छूट की स्वतंत्रता
रेस्पाइट	सजा में राहत देना

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. राष्ट्रपति २. ३५ वर्ष ३. अनुच्छेद ३५६ ४. संघात्मक ५. मुख्यमंत्री ६. राज्यपाल ७. ५२वे संवैधानिक संशोधन ८. ६ दिसम्बर

9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

दुबे, एस0एन0	भारतीय संविधान और राजनीति
माहेश्वरी, श्रीराम	स्टेट गवर्नमेंट्स इन इण्डिया
पाण्डे, लल्लन बिहारी	दि स्टेट एक्जीक्यूटिव
पायली, एम0वी0	इण्डियाज़ कान्स्टीट्यूशन

9.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय शासन एवं राजनीति -	डॉ रूपा मंगलानी
भारतीय सरकार एवं राजनीति -	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति -	महेन्द्रप्रतापसिंह
भारतीय संविधान -	ब्रज किशोर शर्मा
भारतीय लोक प्रशासन -	बी.एल. फड़िया

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्यपाल और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका कौन है और उसका स्वरूप क्या है?
3. मंत्री परिशद क्या है? मुख्यमंत्री से उसके सम्बन्ध क्या है?
4. मुख्यमंत्री और व्यवस्थापिका के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

इकाई - 10 राज्य विधान मंडल

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 राज्य विधान मंडल

10.3.1 राज्य विधान परिशद्

10.3.2 राज्य विधान सभा

10.3.4 राज्य विधानमण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ

10.3.4.1 विधायी शक्तियाँ

10.3.4.2 कार्यपालिका शक्तियाँ

10.3.4.3 वित्तीय शक्तियाँ

10.4 सारांश

10.5 शब्दावली

10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व की इकाई 14 में हमने राज्यपाल के बारे में अध्ययन किया है। जिसमें यह देखा है कि राज्य में राज्यपाल की जो शक्तियाँ हैं वह संवैधानिक हैं लेकिन इन शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल के नाम से मन्त्रिपरिषद करती है। इसलिए मुख्यमंत्री, मन्त्रिपरिषद का मुखिया होता है, इसलिए वह अधिक सशक्त है।

राज्यपाल अपने विवेकाधीन शक्तियों के कारण शक्तिशाली भी है और विवादास्पद भी। सशक्त मुख्यमंत्री वह है जिसका व्यक्तित्व प्रभावशाली है। राज्यपाल का पद बड़ी गरिमा का पद है। राज्य में मुख्यमंत्री के कार्य वही है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री के। यद्यपि राज्य सरकार की वास्तविक शक्ति मंत्री परिषद में निहित है, लेकिन मुख्यमंत्री कार्यपालिका की केन्द्रीय धुरी है। वह समानों में प्रथम ही नहीं है, वरन् राज्य शासन का मुख्य संचालक है।

अब हम इस इकाई में राज्य विधान मंडल के बारे में अध्ययन करेंगे जिसमें यह देखेंगे कि राज्यों में भी संघ का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। इस लिए राज्य में विधान मंडल की वही भूमिका है जो संघ में संसद की है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम

1. यह जानेगे कि राज्य विधान मंडल की संरचना किस प्रकार की है।
2. यह समझ सकेंगे कि विधान सभा के संरचना किस प्रकार से होती है।
3. यह अध्ययन करेंगे कि विधान सभा की संरचना किस प्रकार की होती है।
4. अंततः हम विधान मंडल की शक्तियों का अध्ययन कर सकेंगे।

10.3 राज्य विधान मंडल

भारत में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यह न केवल संघ के स्तर पर वरन् राज्य के स्तर पर अपनाया गया है। राज्य विधानमण्डल में दो सदन होते हैं। विधान परिशद्- जो कि उच्च सदन है, जो परोक्ष रूप से निर्वाचित किये जाने के साथ मनोनीत किये जाते हैं, जबकि विधानसभा, जिसे निम्न सदन भी कहते हैं। इसे जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है।

वर्तमान में उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार एवं जम्मू-कश्मीर पाँच राज्यों में विधान परिशदें सृजित हैं।

10.3.1 राज्य विधान परिशद

विधान परिशद् की संरचना-संविधान के अनुच्छेद 171 के अनुसार राज्य विधान परिशद् के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई (1/3) से अधिक नहीं होगी। लेकिन किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी। विधानपरिशद् के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से एक निर्वाचन मंडल द्वारा किया जाता है। इसका गठन इस प्रकार से होता है-

1- समस्त सदस्यों का एक तिहाई भाग नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों और स्थानीय प्राधिकारियों के सदस्यों से मिलकर बनने वाले निर्वाचन मंडल के द्वारा निर्वाचित किया जाता है।

2- समस्त सदस्यों के बारें भाग के बराबर (1/12) का निर्वाचन तीन वर्ष के स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण सदस्यों के द्वारा।

3- सदस्य न्यूनतम तीन वर्ष से शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों के द्वारा जो (1/12) माध्यमिक पाठशाला की शिक्षण संस्थाएं न हो।

4- एक तिहाई सदस्य राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा।

5- अनन्ततः समस्त सदस्यों के छठे भाग के बराबर राज्यपाल द्वारा मनोनीत किया जाता है जो साहित्यिक, कला, विज्ञान, समाजसेवा और सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में ख्याति उपलब्ध व्यावहारिक अनुभवी हो।

एम.वी.पायली के अनुसार कहा जा सकता है कि राज्य विधानसभा की रचना लोकसभा के ढाँचे पर है तथा विधान परिशद की राज्यसभा से समानता है।

विधान परिशद् की अवधि:- संसदीय परम्परा के अनुरूप और राज्य सभा के समान विधान परिशद् का भी विघटन नहीं होता है। इनके तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष पर सेवानिवृत्त होते हैं।

इसलिए सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष का होता है। परन्तु यदि मृत्यु, त्याग-पत्र आदि कारणों से आकास्मिक रिक्ति की दशा में उस पद हेतु जो सदस्य निर्वाचित होगा वह शेष अवधि के लिए होगा न कि 6 वर्ष के लिए।

सदस्यता के लिए अर्हता:- विधानमण्डल के दोनों में से किसी भी सदन के सदस्य होने के लिए निम्न अर्हताएं होना आवश्यक है-

- 1- वह भारत का नागरिक हो।
- 2- विधानपरिषद् के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष और विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए।
- 3- उसके पास वे अर्हताएं भी हो जो संसद समय-समय पर विधि द्वारा निर्धारित करें। अनुच्छेद 171।

निरर्हता:- इसके संबंध में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 191 में किया गया है-

- 1- केन्द्र या राज्य के अधीन लाभ का पद धारण करने की स्थिति में।
- 2- यदि वह पागल हो।
- 3- यदि वह दिवालिया हो।
- 4- जब उसने विदेशी राज्य की नागरिकता ले ली है अनुच्छेद 190 में प्रावधान है कि कोई सदस्य एक साथ मंत्रिमंडल के दोना सदस्य नहीं हो सकता।

अनुच्छेद 190 (2) यदि कोई सदस्य दो या अधिक राज्यों के विधानमण्डल सदस्य हो जाता है तो उसे 10 दिन के भीतर एक राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्यों के विधानमण्डल से त्याग-पत्र देना होगा।

अन्यथा वह कहीं का सदस्य नहीं रहेगा। 190 (4) में यह प्रावधान है कि बिना सदन की अनुमति के यदि कोई सदस्य 60 दिन तक सदन से अनुपस्थित रहता है तो सदन के स्थान को रिक्त घोषित कर देगा।

एक महत्वपूर्ण तथ्य और स्पष्ट करना आवश्यक है कि यदि किसी सदन के सदस्य के निरर्हता का प्रश्न उठता है तो इस संबंध में राज्यपाल निर्वाचन आयोग की राय के अनुसार कार्य करना होगा। अनुच्छेद 192 (2)

विधानपरिषद् के पदाधिकारी:- विधानपरिषद् अपने सदस्यों में से सदन के कार्य के सुचारू संचालन हेतु सभापति और उपसभापति का चुनाव करते हैं। जो सदन का सदस्य बने रहने तक अपने पद पर बने रहते हैं। इसके पूर्व दोनों एक दूसरे को त्याग-पत्र देकर पदमुक्त हो सकते हैं तथा सदन यदि 14 दिन की पूर्व सूचना देकर बहुमत के समर्थन से पद से हटा सकती है।

गणपूर्ति:- यह प्रावधान है कि दो बैठकों के बीच छः माह से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए। सदन की कार्यवाही तभी प्रारम्भ हो सकती है जब सदन के सदस्यों का 10 प्रतिशत अवश्य उपस्थित हो तथा यह संख्या 10 से कम न हो।

10.3.2 राज्य विधान सभा

जैसा कि हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि यह जनप्रतिनिधि सदन है। क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के द्वारा किया जाता है। विधान सभा के सदस्यों की संख्या 500 से अधिक नहीं हो सकती और 60 से कम नहीं हो सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 333 में यह प्रावधान किया गया है कि यदि राज्यपाल की राय में आंगतक भारतीय समुदाय को विधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो उस समुदाय से एक व्यक्ति को वह मनोनीत कर सकता है।

विधान सभा के सदस्यों की अर्हता:-

अनुच्छेद 173 के अनुसार-

1. वह भारत का नागरिक हो,
2. वह 25 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो,
3. वह भारत सरकार या किसी राज्य के अधीन लाभ के पद पर न हो,
4. संसद द्वारा बनायी गयी किसी विधि के अधीन विधि निर्धारित शर्तों को पूर्ण करता हों,
5. वह अन्य निर्धारित शर्तें पूर्ण करता हो, अर्थात् वह दिवालिया, पागल न हो एवं उसने अन्य विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा व्यक्त न की हो

विधान सभा की अवधि:- इसकी अवधि 5 वर्ष होती है। 24 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 1976 में यह अवधि 6 वर्ष कर दिया गया जिसे 44 वें संवैधानिक संशोधन 1978 के द्वारा पुनः 5 वर्ष कर दिया राज्यपाल विधानसभा को 5 वर्ष से पूर्व भी भंग कर सकता है। आपातकाल में संसद विधि द्वारा एक वर्ष का कार्यकाल बढ़ा सकती है। परन्तु, आपातकाल समाप्त होने की दशा में यह वृद्धि 6 माह से अधिक समय तक लागू नहीं कि जा सकती।

गणपूर्ति, अधिवेशन:- विधान सभा की कार्यवाही तभी प्रारम्भ की जा सकती है जब समस्त संख्या की न्यूनतम 10 प्रतिशत उपस्थित हो राज्यपाल विधानसभा के अधिवेशन बुलाता है। किन्तु दो अधिवेशनों के बीच का अन्तर 6 माह से अधिक नहीं होना चाहिए।

अनुच्छेद 176 यह उपबन्ध करता है कि प्रत्येक आम चुनाव के उपरांत, राज्यपाल, प्रथम सत्र को संबोधित करेगा।

विधानसभा के पदाधिकारी- राज्य विधानसभा में दो पदाधिकारी होते हैं- अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष। इन दोनों पदाधिकारियों का निर्वाचन विधानसभा सदस्यों द्वारा सदन की प्रथम बैठक में किया जाता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके कर्तव्यों का निर्वहन करता है। यदि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों के पद रिक्त हो तो विधानसभा दूसरे अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। विधानसभा के बहुमत द्वारा अध्यक्ष को भी पदच्युत किया जा सकता है।

10.3.4 राज्य विधानमण्डल के कार्य एवं शक्तियाँ

संसदीय परम्परा के अनुरूप भारत में राज्यों में कानून निर्माण का अधिकार राज्य के विधानमण्डल को होता है। इन्हें सातवीं अनुसूची के राज्यसूची में उल्लिखित विशयों पर कानून बनाने का अधिकार होता है। राज्य विधान मण्डल के कार्य और शक्तियों का अध्ययन हम निम्न बिन्दुओं में कर सकते हैं-

10.3.4.1 विधायी शक्तियाँ

राज्य विधान मण्डल को राज्य सूची के अतिरिक्त समवर्ती सूची के विशयों पर भी कानून निर्माण का अधिकार है परन्तु संसद को भी समवर्ती सूची पर कानून बनाने का अधिकार है। जिसमें यह प्रावधान है कि यदि समवर्ती सूची के किसी विशय पर संसद और विधानमण्डल कानून बनाते हैं तो और उनमें विवाद उत्पन्न हो तो संसद द्वारा निर्मित का कानून प्रभावी होगा। कोई भी विधेयक जहाँ दो सदन हैं वहाँ पर दोनों द्वारा पारित होकर और जहाँ केवल विधानसभा है उसके द्वारा पारित होकर, राज्यपाल की स्वीकृति मिलने पर ही कानून बनता है।

सधारण विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई समान अधिकार नहीं है। यदि कोई विधेयक विधानपरिशद में पेश किया जाता है और विधानसभा उस विधेयक को अस्वीकार कर दे तो वह समाप्त हो जाता है।

विधानसभा में पारित करने के पश्चात जब विधेयक विधानपरिशद में भेजा जाता है तो उसे तीन माह के भीतर वापस किया जाना आवश्यक है।

दोनों सदनों में किसी विधेयक पर असहमति होने की दशा में संयुक्त अधिवेशन का प्रावधान नहीं किया गया है। फलस्वरूप विधानसभा द्वारा विधेयक पर किया गया निर्णय अन्तिम होता है।

10.3.4.2 कार्यपालिका शक्तियाँ

- 1- मंत्रियों से नीति के विशयों पर प्रश्न पूछने का।
- 2- बजट पर विमर्श की शक्ति।
- 3- मंत्रीपरिशद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव।

10.3.4.3 वित्तीय शक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

राज्य के बजट को विधानमण्डल की स्वीकृति अनिवार्य है। विधानसभा का राज्य के धन पर पूर्ण नियन्त्रण है। राज्य के बजट को विधानमण्डल द्वारा ही स्वीकृति प्रदान की जाती है। वित्तीय मामलों में विधानसभा की शक्तियाँ विधान परिशद से अधिक हैं। संविधान के अनुसार धन विधेयक केवल विधानसभा में पेश किया जाता है इसके द्वारा पारित होने पर विधान परिशद को भेजा जाता है। विधानसभा के किसी भी संशोधन को मानने के लिए विधानसभा बाध्य नहीं है। कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं इसका निर्धारण विधानसभा अध्यक्ष के द्वारा किया जाता है। धन विधेयक को राज्यपाल पुनर्विचार के लिए वापस नहीं कर सकते हैं। साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिशद 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। विधान परिशद के सुझावों को मानना विधानसभा में ही अनुदानों की मांगों पर मतदान बजट में निहित राशियों में कटौती, अरोपित करों में छूट दी जा

सकती है। वित्त पर नियन्त्रण सार्वजनिक लेखा समिति तथा अनुमान समिति के माध्यम से किया जाता है। वित्तीय आपातकाल में संसद राज्य विधानसभा को वित्त सम्बन्धी निर्देश दे सकती है तथा राज्य के वित्त विधेयक को अपने समक्ष प्रस्तुत करके उसमें संशोधन या परिवर्तन कर सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1. राज्य विधान परिशद् के सदस्यों की संख्या उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के एक तिहाई (1/3) से अधिक नहीं होगी। सत्य / असत्य
2. राज्य विधान परिशद् लिए किसी भी दशा में यह संख्या 40 से कम न होगी। सत्य / असत्य
3. विधान परिशद् के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष होनी चाहिए। सत्य / असत्य
4. विधानसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए। सत्य / असत्य
5. साथ ही विधानसभा द्वारा पारित वित्त विधेयक को विधान परिशद 14 दिन से अधिक नहीं रोक सकती है। सत्य / असत्य

10.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचाते हैं कि हमारे संविधान के द्वारा संघ के सामान्य राज्य में भी संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है। जहाँ पर दो सदन हैं वहाँ विधान परिशद, विधान सभा और राज्यपाल को मिलाकर विधानमंडल कहलाता है। जिन राज्यों में विधान परिशद नहीं है वहाँ पर राज्यपाल और विधान सभा मिलकर विधानमंडल कहलाते हैं।

हमारे विधानमंडल में विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। जबकि विधान परिशद के सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। यह एक स्थायी सदन है जिसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष के अंतराल पर सेवा निवृत्त होते हैं। यद्यपि सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष होता है। जबकि विधान सभा के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होता है। यह कार्यकाल विधान सभा का भी है परन्तु इसके पूर्व भी कुछ दशकों में इसका विघटन किया जा सकता है। हमने यह भी अध्ययन किया है इस इकाई में कि राज्य में मुख्य कानून निर्मात्री संस्था राज्य विधानमंडल ही है।

10.5 शब्दावली

जनप्रतिनिधि सदन - विधान सभा को जनप्रतिनिधि सदन भी कहते हैं क्योंकि इनके सदस्यों का निर्वाचन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

संसद - राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोक सभा को मिलाकर बनती है।

10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति
2. आर.एन. त्रिवेदी एवं एम.पी.राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति
3. महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति

10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ब्रज किशोर शर्मा - भारतीय संविधान
2. दुर्गादास बसु - भारतीय संविधान

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. राज्य विधान मंडल पर एक निबंध लिखिए।
2. राज्य विधान मंडल की शक्तियों की विवेचना कीजिये।

इकाई -11 : सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय, संगठन ,कार्य एवं शक्तियां**इकाई की संरचना**

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 न्यायपालिका
- 11.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन
 - 11.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति
 - 11.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध
 - 11.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय
 - 11.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकार:
- 11.5 उच्च न्यायालय
 - 11.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार
- 11.6 सारांश
- 11.7 शब्दावली
- 11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम भारत में किस प्रकार से एकीकृत न्यायपालिका का प्रावधान किया गया है उसके बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे। इसमें हम यह अध्ययन करेंगे कि सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्य क्या है, उसकी अधिकारिता क्या है? उनके न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता है और किस आधार पर इसका अध्ययन करते हुए उसके अगले चरण में हम देखेंगे कि किस प्रकार से यह संविधान की संरक्षक है उसका व्याख्याकार है। यही नहीं नहीं लोकतंत्र में नागरिकों के अधिकारों को बहुत महत्व होता है। इस लिए उन अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी अर्थात् उसके प्रवर्तन में किसी प्रकार के अवरोध आने पर सर्वोच्च न्यायालय में जाया जा सकता है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम-

1. लोकतंत्र में स्वतन्त्र न्यायलय के महत्व को जान सकेंगे।
2. सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों के बारे में जान सकेंगे।
3. सर्वोच्च न्यायलय को स्वतंत्रता पूर्वक कार्य करने में लिए क्या प्रावधान किये गए हैं, उसका अध्ययन कर सकेंगे।
4. न्यायिक पुनरावलोकन के अर्थ को जान सकेंगे।

11.3 न्यायपालिका

शासन के तीन अंग होते हैं। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायापालिका जो क्रमशः कानून निर्माण, कानून के क्रियान्वयन और कानून की व्याख्या और उसकी वैधता, अवैधता की व्याख्या से संबंध रखती है। प्रस्तुत इकाई में हमें न्यायपालिका का अध्ययन करेंगे। लोकतंत्र में तो यह और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि एक तरफ तो यह व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानूनों का परीक्षण करती है तो कार्यपालिका के कार्यों का भी संविधान के उपबंधों के अधीन परीक्षण कर उसकी वैधता और अवैधता का निर्णय करती है। साथ ही भारत में न्यायपालिका तो संविधान की रक्षण भी है। जहाँ अस्पष्टता की स्थिति हो, संविधान की मूलभावना के अनुरूप उसकी व्याख्या भी करती है। संविधान के द्वारा नागरिकों को प्रदान किये गये मौलिक अधिकारों की रक्षा और व्याख्या के गुरुतर दायित्व का निर्वाह भी करती है।

भारत में अमेरिका के समान दोहरी न्यायिक व्यवस्था नहीं है वरन यहाँ पर एकीकृत न्यायपालिका जो पिरामिडाकार में सर्वोच्च न्यायालय से उच्च न्यायालय तक आदि संगठित है।

11.4 सर्वोच्च न्यायालय का संगठन

उच्चतम न्यायालय के गठन के संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 224 में किया गया है। संविधान इस बात का प्रावधान करता है कि सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना गठन और उसकी शक्तियों से संबंधित विधान करने का अधिकार संसद को है।

मूल संविधान के द्वारा जो प्रावधान किया गया उसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 7 अन्य न्यायाधीश थे। परन्तु बाद के परिवर्तनों के द्वारा जिसमें अन्ततः 1986 में संविधान में संशोधन कर प्रावधान के अनुसार एक मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीश हैं। इस प्रकार वर्तमान समय में यह संख्या 26 है।

तदर्थ न्यायाधीश:- अनुच्छेद 127 इस बात का उपबन्ध करता है कि यदि उच्चतम न्यायालय में, न्यायाधीशों की गणमूर्ति न हो तो, राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से, मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से बैठकों में उपस्थित होने के लिए अनुरोध कर सकते हैं।

अनुच्छेद 128 इस बात का प्रावधान करता है कि राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश जो उच्चतम न्यायालय में जज हो सकता है, उससे उच्चतम न्यायालय में बैठने और कार्य करने का अनुरोध कर सकते हैं।

11.4.1 न्यायाधीशों की नियुक्ति

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। इस हेतु राष्ट्रपति, अनुच्छेद 124 (2) के अनुसार, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से परामर्श करेंगे। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की स्थिति में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से अनिवार्य रूप से परामर्श करेंगे।

न्यायाधीश की नियुक्ति हेतु योग्यता:- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 (3) में इस प्रकार का प्रावधान किया गया है जो इस प्रकार है-

- 1- वह भारत का नागरिक हो
- 2- देश के किसी उच्चतम न्यायालय का न्यूनतम 5 वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो या
- 3- न्यूनतम 10 वर्ष किसी उच्च न्यायालय का अधिवक्ता रहा हो, या
- 4- राष्ट्रपति की राय में पारंगत विधिवत्ता हो।

कार्यकाल:- इस संबंध में न्यूनतम आयु का उल्लेख नहीं किया गया है। इनका कार्यकाल 65 वर्ष की उम्र तक है इसके पूर्व वह राष्ट्रपति को संबोधित हस्ताक्षर से त्याग-पत्र दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें 'सावित कदाचार' या असमर्थता के आधार पर संसद के विशेष बहुमत से पारित प्रस्ताव पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से भी पद से हटाया जा सकता है।

महाभियोग:- जैसा कि हम ऊपर यह देख चुके हैं कि अनुच्छेद 124 (4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। संविधान के द्वारा प्राप्ति शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने न्यायाधीश (जाँच) अधिनियम 1968 अधिनियमित किया है। जिसमें न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया इस प्रकार है-

- 1- सर्वप्रथम इस हेतु राष्ट्रपति से इस हेतु समावेदन करना होगा। यदि प्रस्ताव को लोकसभा में प्रस्तुत करना है तो कम-से-कम 100 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति और यदि राज्यसभा में प्रस्तुत करना है तो कम-से-कम 50 सदस्यों के हस्ताक्षर सहित सहमति होनी आवश्यक है।
- 2- यदि प्रस्ताव लोकसभा में हो तो लोकसभा में अध्यक्ष और यदि राज्यसभा में है तो सभापति आवश्यकतानुसार परामर्श किसी से ले सकता है। परन्तु वह प्रस्ताव का स्वीकार/अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होगा।
- 3- अध्यक्ष/सभापति यदि प्रस्ताव को ग्रहण कर लेते हैं तो एक समिति गठित की जायेगी जिसमें तीन सदस्य होंगे-
 - a. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या कोई अन्य एक न्यायाधीश
 - b. उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों में से कोई एक
 - c. कोई पारंगत विधिवेत्ता
- 4- यदि यह तीन सदस्यीय समिति इस प्रस्ताव पर सहमत होती है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी है या असमर्थता से ग्रस्त है तो, समिति प्रस्ताव और अपने प्रतिवेदन को उस सदन में रखती है, जहाँ प्रस्ताव लंबित है।
- 5- प्रस्ताव पर दोनों सदनों के अलग-अलग कुल सदस्य संख्या के बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के विशेष बहुमत से यदि पारित हो जाता है तो वह राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

6- अन्ततः राष्ट्रपति न्यायाधीश को हटाने का आदेश जारी करता है।

11.4.2 उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की स्वतंत्रता को बनाये रखने वाले उपबन्ध

जैसा कि हम ऊपर यह स्पष्ट कर चुके हैं कि संविधान के रक्षक उसके व्याख्याकार और नागरिकों के अधिकारों के रक्षक के रूप में न्यायापालिका को बहुमत ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने की जिम्मेदारी संविधान के द्वारा प्रदान किया गया है। ऐसी स्थिति में इतने गुरुतर दायित्व के निर्वहन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि न्यायापालिका को उसके कार्यों में अन्य संस्थाओं (विधायिका, कार्यपालिका) के दखल से स्वतन्त्र रखा जाए। इस बात का ऐहसास भारतीय संविधान निर्माताओं को था इसलिए उन्होंने इस हेतु, प्रावधान किये हैं, जो इस प्रकार हैं-

- 1- संविधान के द्वारा न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के उपरान्त पद से हटाने की प्रक्रिया बहुत ही दुरूस्त है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।
- 2- उच्चतम और उच्च न्यायालय पर होने वाला व्यय भारत की संचित निधि पर पारित है, जिससे कोई दबाव वित्तीय कारकों के आधार पर नहीं बनाया जा सकता है।
- 3- सेवाकाल में न्यायाधीशों के लिए कोई अलामकारी परिवर्तन (जैसे वेतन, भत्ते कम करना आदि) नहीं किया जा सकता। ऐसा के वित्तीय आपातकाल के दौरान किया जा सकता है न तो उसके पहले और न ही बाद में।
- 4- किसी न्यायाधीश के द्वारा अपने कर्तव्यों के अनुपालन में किये गये आचरण में संसद/राज्यविधान मण्डल में चर्चा नहीं हो सकती।
- 5- उच्चतम और उच्च न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति है।

11.4.3 उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय

संविधान के अनुच्छेद 129 के अनुसार उच्चतम न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है। किसी न्यायालय को अभिलेख न्यायालय कहने के मुख्यतः दो आधार होते हैं।

- 1- जब न्यायालय के पास अपनी अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति हो।
- 2- इसके निर्णय साक्ष के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। जब से निर्णय साक्ष के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते हैं तो ये प्रश्नगत नहीं किये जा सकते, वरन् ये तो निश्चयात्मक प्रकृति के होते हैं।

11.4.4 उच्चतम न्यायालय के अधिकार:

इसके अन्तर्गत मुख्यतः निम्न विशय आते हैं-

1. प्रारंभिक अधिकारिता

2. अपीलीय अधिकारिता

3. लेख क्षेत्राधिकार

4. परामर्श अधिकारिता

5. न्यायिक पुनरावलोकन

1- प्रारम्भिक अधिकारिता:- संविधान के अनुच्छेद 131 के द्वारा उच्चतम न्यायालय को कुछ प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे विषयों पर सुनवाई का प्रारम्भिक अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को है। किसी अन्य न्यायालय को नहीं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित प्रारम्भिक अधिकारिता सर्वोच्च न्यायालय को है-

(अ) संसदीय सरकार और एक राज्य या उससे अधिक राज्यों के अन्य उत्पन्न किसी विवाद के सन्दर्भ में,

(ब) दो या दो से अधिक राज्यों के बीच उठने वाले विवाद,

(स) दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद जो कि उनके वैधानिक अधिकारों के प्रश्न से संबंधित हो।

2- अपीलीय क्षेत्राधिकार:- सर्वोच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है। जिसे उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार है। निम्नलिखित मामले में सर्वोच्च न्यायालय को अपीलीय अधिकार है-

(अ) संवैधानिक मामले में- जब उच्च न्यायालय के किसी निर्णय में संविधान की व्याख्या से संबंधित को विषय हो तो, उसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

(ब) दीवानी मामले में- अनुच्छेद 133 इस बात का प्रावधान करता है कि निम्नलिखित स्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय में, दीवानी मामलों में अपील की जा सकती है जबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि-

I. मामले में विधि या लोकमहत्व का कोई सारभूत प्रश्न निहित हो,

II. मामलों का निर्णय उच्चतम न्यायालय के द्वारा किया जाना आवश्यक है।

(स) फौजदारी मामले में- अनुच्छेद 134 में उन दशाओं का उल्लेख है जब फौजदारी मामलों में सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

I. जब उच्च न्यायालय के द्वारा किसी दोषमुक्त व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिये जाने का निर्णय दिया गया हो।

II. जब अपने अधीनस्थ न्यायालय से कोई वाद अपने को हस्तान्तरित करवाकर, अभियुक्त को दोषी करार देते हुए मृत्युदण्ड का निर्णय दे।

III. ऐसा तब भी किया जा सकता है जबकि उच्चतम न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि विशय, उच्चतम न्यायालय में अपील किये जाने लायक हो।

3. लेख क्षेत्राधिकार: संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक भी बनाया गया है। इसी क्रम में नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 32 के तहत मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निम्नलिखित लेख जारी कर सकता है- बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार पृच्छा। इसके सन्दर्भ में हम मौलिक अधिकार के अध्याय में अध्ययन कर चुके हैं।

4. परामर्शी क्षेत्राधिकार- हमारे संविधान के अनुच्छेद 143 के द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह किसी विशय में विधि के सारवान प्रश्न शामिल होने की दशा में, आवश्यक समझने पर सर्वोच्च न्यायालय से राय मांग सकता है। जिस विशय की सुनवाई कर न्यायालय अपनी राय दे सकता है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि ऐसी राय मांगने पर, न तो सर्वोच्च न्यायालय राय देने के लिए बाध्य है, और न ही, सर्वोच्च न्यायालय यदि राय दे तो राष्ट्रपति उसे मानने के लिए बाध्य हैं।

5. न्यायिक पुनरावलोकन- न्यायपालिका लोकतंत्र में नागरिक स्वतन्त्रता और अधिकारों के रक्षक के रूप में अपने दायित्वों को सफलतापूर्वक तभी निर्वाह कर सकता है, जब उसे कुछ बुनियादी अधिकार हो, जिसमें न्यायिक पुनरावलोकन भी एक है। इसकी शुरुआत अमेरिका में हुई है।

न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता है यदि उन्हें उपबंधों के अनुरूप नहीं पाता है तो उसे शून्य घोषित करता है।

11.5 उच्च न्यायालय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 214 में इस बात का प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा। परन्तु, यदि संसद आवश्यक समझे तो वह दो या दो से अधिक राज्यों के लिए या दो से अधिक राज्यों और किसी संघशासित क्षेत्र के लिए एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना की जा सकती है।

संगठन - अनुच्छेद 216 में यह प्रावधान है कि एक मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों को मिलाकर (जो राष्ट्रपति आवश्यक समझे) उच्च न्यायालय का गठन होगा।

अर्हताएं (योग्यताएं)- इस संबंध में प्रावधान अनुच्छेद 217 में किया गया है-

- 1- वह भारत का नागरिक हो।
- 2- वह भारत में कम-से-कम 10 वर्ष कोई न्यायिक पद ग्रहण कर चुका हो या
- 3- उच्च. न्यायालय का कम-से-कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

नियुक्ति-इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए वह उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श के अतिरिक्त, उस न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी परामर्श करता है।

पदावधि-उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की उम्र तक अपना पद ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त वह राष्ट्रपति को समय से पूर्व त्यागपत्र दे सकता है।

तथा साबित कदाचार और असमर्थता के आधार पर जिस प्रकार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। वैसे ही इन्हें भी हटाया जा सकता है।

न्यायाधीशों का स्थानान्तरण- अनुच्छेद 222 के अनुसार राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश से परामर्श पर किसी भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित कर सकता है।

11.5.1 उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय के निम्नलिखित क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं-

- 1- अपीलीय- अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलीय अधिकार है।
- 2- प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार- अनुच्छेद 226 के अनुसार राजस्व संग्रह और मूलअधिकारों के प्रवर्तन हेतु, प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है।
- 3- अन्तरण के अधिकार- अनुच्छेद 228 में प्रावधान है कि यदि उच्च न्यायालय को प्रतीत हो कि उसके किसी अधीनस्थ न्यायालय में लंबित किसी मामले में संविधान की व्याख्या का कोई प्रश्न निहित है तो उस मामले को अपने पास मंगाकर उस पर दो निर्णय दे सकता है।
- 4- अधीक्षण का अधिकार- अनुच्छेद 227 के तहत, उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ सभी न्यायालयों के अधीक्षण की शक्ति प्राप्त है।
- 5- अनुच्छेद 231 में यह प्रावधान किया गया है कि जहाँ पर दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय है वहाँ उन क्षेत्रों तक अन्यथा जिस राज्य के लिए उच्च न्यायालय होगा, वहाँ तक उसकी अधिकारिता होगी।

उच्च न्यायालय-अधिकारिता और अवस्थान				
क्रमांक	नाम	स्थापनाकी तारीख	राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता	अवस्थान
1	इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद (लखनऊ में न्यायपीठ)

2	आंध्रप्रदेश	1954	आंध्रप्रदेश	हैदराबाद
3	मुंबई	1862	महाराष्ट्र, दादर और नागर हवेली और गोवा, दमण और दीव (नागपुर)	मुंबई नागपुर, पणजी, औरंगाबाद में न्यायपीठ
4	कलकत्ता	1862	पश्चिमी बंगाल तथा अंडमान और निकोबार द्वीप	कलकत्ता(पोर्ट प्लेयर में न्यायपीठ)
5	छत्तीसगढ़	2000	छत्तीसगढ़	बिलासपुर
6	दिल्ली	1966	दिल्ली	दिल्ली
7	गुवाहाटी	1948	असम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश	गुवाहाटी(कोहिमा में न्यायपीठ, और इम्फाल, अगरतला और शिलांग में सर्किट न्यायपीठ)
8	गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
9	हिमांचल प्रदेश	1971	हिमांचल प्रदेश	शिमला
10	सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक
11	जम्मू-कश्मीर	1957	जम्मू-कश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
12	झारखण्ड	2000	झारखण्ड	राँची
13	कर्नाटक	1884	कर्नाटक	बंगलौर
14	केरल	1950	केरल और लक्षदीप	एर्नाकुलम
15	मध्यप्रदेश	1956	मध्यप्रदेश	जबलपुर (ग्वालियर और इंदौर में न्यायपीठ)
16	मद्रास	1862	तमिलनाडु और पांडिचेरी	मद्रास
17	उड़ीसा	1948	उड़ीसा	कटक
18	उत्तराखंड	2000	उत्तराखंड	नैनीताल
19	पटना	1916	बिहार	पटना (राँची में न्यायपीठ)

20	पंजाब और हरियाणा	1966	पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़	चंडीगढ़
21	राजस्थान	1950	राजस्थान	जोधपुर (जयपुर में न्यायपीठ)

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में कुल कितने उच्च न्यायलय हैं ? २१
2. सबसे बड़ा उच्च न्यायलय कौन सा है ?
3. सर्वोच्च न्यायलय का मुख्यालय कहाँ है ?
4. सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीश की नियुक्ति कौन करता है ?
5. सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीश को किस आधार पर उनके पद से हटाया जा सकता है ?

11.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के आधार पर हम पर हमें भारत में न्यायपालिका की संरचना का अध्ययन करने को मिला है जिसमें हमने यह देखा है कि किस प्रकार से भारत में एकीकृत न्यायपालिका है जिसके शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायलय है | जो जहा एक तरफ संविधान की संरक्षक है तो दूसरी तरफ नागरिकों के मौलिक अधिकारों की भी संरक्षक है | जहाँ पर संविधान के किसी भाग को स्पष्ट समझने में किसी प्रकार की समस्या होती है तो वहाँ भी सर्वोच्च न्यायलय संविधान के आधारभूत ढाँचे के सिद्धांत के आधार पर व्याख्या करने का कार्य भी करती है | इसके साथ ही न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए व्यस्थापिका के द्वारा निर्मित कानूनों का और कार्यपालिका के कृत्यों का परीक्षण संविधान के उपबंधों के आधार पर करती है ,यदि उन्हें संविधान के उपबंधों के विपरीत पाती है तो उन्हें ,संविधान के उल्लंघन की मात्रा तक शून्य घोषित करती है | इस प्रकार से भारत में न्यायपालिका शासन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है |

11.7 शब्दावली

न्यायिक पुनरावलोकन - न्यायिक पुनरावलोकन का तात्पर्य है कि संसद और राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के कार्यों का संविधान के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय परीक्षण करता है यदि उन्हें उपबंधों के अनुरूप नहीं पाता है तो उसे शून्य घोषित करता है।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 21 ,2.इलाहाबाद , 3.नई दिल्ली , 4.राष्ट्रपति , 5.साबित कदाचार ,असमर्थता

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 1.डॉ रूपा मंगलानी - भारतीय शासन एवं राजनीति (2009), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- 2.त्रिवेदी एवं राय - भारतीय सरकार एवं राजनीति
- 3.भारत का संविधान - ब्रज किशोर शर्मा (2008), प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया नई दिल्ली
- 4.महेन्द्र प्रताप सिंह - भारतीय शासन एवं राजनीति (2011), ओरियन्टल ब्लैक स्वान नई दिल्ली

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- 1.भारतीय प्रशासन - अवस्थी एवं अवस्थी (2011), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा
- 2.भारत में लोक प्रशासन - बी.एल. फड़िया (2010) साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- 3.The Constitution of India – J.C. Jauhari-2004-Sterling Publishers Private Limited New Delhi

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

- 1.सर्वोच्च न्यायलय के संगठन और कार्यों की विवेचना कीजिये |
- 2.संविधान और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायलय के कार्यों पर एक निबंध लिखिए |

इकाई 12 : भारतीय राजनीति में न्यायालय की भूमिका, न्यायिक सक्रियता

इकाई की रूपरेखा

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 संघीय राज व्यवस्था और न्यायपालिका
- 12.4 जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1952
- 12.5 संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय
- 12.6 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन
- 12.7 न्यायिक सक्रियता
- 12.8 जनहित/लोकहित याचिकाएं(पी.आई.एल.)
- 12.9 सारांश
- 12.10 शब्दावली
- 12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 12.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

आजादी के बाद से आज तक भारतीय राजनीति ने कई उतार-चढ़ाव देखे। आजादी के वक्त हमारी राजनीतिक स्थिति अत्यधिक दुर्बल थी। आज उसमें परिपक्वता आयी है। राजनीतिक समझ बढ़ी है। राजनीतिक सामाजिकरण का स्तर उपर उठा है। हमारे नीति नियंताओं ने संघात्मक शासन व्यवस्था को उचित समझते हुए भारत में इस व्यवस्था को लागू किया। आज भारत का लोकतंत्र विश्व के सफलतम लोकतंत्रों में एक है। इसकी ये सफलता इसके चार स्तंभों पर टिकी है। ये चार स्तंभ कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायापालिका और समाज को सबसे अधिक जागृत व सचेत करने वाला मीडिया या पत्रकारिता है। आज लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने लोकतंत्र के चारों स्तंभों को बदलने के लिये मजबूर किया है। आज यदि भारतीय राजनीति का चेहरा बदला है तो न्याय की गति में भी परिवर्तन आया है। भारतीय राजनीति में जहाँ आम आदमी का हस्तक्षेप बढ़ा है वहीं दूसरी तरफ अपराध ने भी राजनीति में प्रवेश किया है। भारत में राजनीतिक अपराधीकरण को लेकर कई बार न्यायपालिका और विधायिका एक दूसरे के आमने सामने आते रहे हैं।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारत में वर्तमान राजनीति का जो स्वरूप है उसका अध्ययन करेंगे तथा उन बिन्दुओं तक पहुँचने का प्रयास करेंगे जहाँ पर राजनीति अपना स्वरूप खो कर न्याय की शरण में आ जाती है। इस अध्याय में हम देखेंगे कि वर्तमान समय में न्यायपालिका का स्वरूप किस स्तर तक बदल गया है। आज न्यायपालिका सिर्फ न्याय तक सीमित न रह कर लोक कल्याणकारी हो गयी है। इस अध्याय में हम उन मुकदमों का भी अध्ययन करेंगे जिन्होंने भारतीय राजनीति की गति बदल दी।

12.3 संघीय राज व्यवस्था और न्यायपालिका

हम जानते हैं कि भारत में संघीय राज व्यवस्था है। लेकिन अन्य संघ शासनों के विपरीत संघ और राज्य न्यायालयों की प्रथक व्यवस्था नहीं है। जैसा कि अमेरिकी शासन में हमें दिखता है। न्यायालयों की एक व्यवस्था संघ और राज्य दोनों में कानूनों को लागू करने का काम करती है। भारतीय न्यायापालिका के पास कार्यकारी और विधायिका की शक्तियों के विस्तार और सीमाओं की संविधान के अधीन व्याख्या और परिभाषा करने की सर्वोच्च शक्ति है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के साथ उच्च न्यायालय में शीर्ष स्तर की नियुक्तियाँ कार्यपालक शाखा द्वारा की जाती हैं। न्यायपालिका के पास निर्णय की असीमित शक्तियाँ हैं। ये विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून को संविधान के अनुसार असंगत मानते हुए अमान्य ठहरा सकती है। न्यायपालिका के पास शक्ति है कि वह राजनीतिक सत्ताधारी या लोक सेवा की किसी भी कार्यपालिका की गतिविधि को गैर कानूनी करार देकर उसे निष्प्रभावी कर सकती है। इस मामले में प्रत्येक नागरिक या गैर नागरिक को राजनीतिक शक्ति प्राप्त संगठनों सहित कार्यपालिका की गतिविधियों के खिलाफ शिकायतों का निवारण करने के लिये न्यायालय जाने या अपील करने का अधिकार है। सामाजिक न्याय और नागरिकों द्वारा राजनीतिक सत्ता के हस्तक्षेप के बिना मौलिक अधिकारों का प्रयोग सुनिश्चित करने के लिये कई सिविल और अन्य संस्थान या कानून संविधान के अधीन बनाये गये हैं। सभी नागरिकों को समान अधिकार मिलने तथा राजनीतिज्ञों या लोक सेवकों के भ्रष्ट आचरणों के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने के लिये कई राष्ट्रीय आयोग (जैसे मानवाधिकार आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, महिला आयोग, इत्यादि)

बनाये गये हैं। यहाँ ये बात समझने वाली है कि न्यायिक निर्णय की अवहेलना न तो कार्यपालिका कर सकती है और न ही संसद। ये केवल अपील कर सकते हैं या न्यायालय के निर्णय की समीक्षा का निवेदन कर सकते हैं। लेकिन अंततः उन्हें न्यायिक निर्देशों का पालन करना ही होता है। भारत की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक पर्यावरण दूषित हुआ है। जिसके चलते अक्सर देखा जा रहा है कि लोक सेवकों व लोक संस्थानों से जैसी उम्मीद आम आदमी करता है वो उससे भटक गये हैं। लोक सेवक निजी स्वार्थों की राजनीति करने में लिप्त हैं। आम आदमी के हितों से उनका सरोकार कम होता जा रहा है। ये भारत की राजनीति में आज के दौर का सबसे बड़ा परिवर्तन है। आज विधायिका और कार्यपालिका जनहितों से दूर होती जा रही है ऐसी स्थिति में आम आदमी न्यायपालिका की शरण में जा रहा है। इसीलिये हम देख रहे हैं कि बिगत कई वर्षों से न्यायापालिका ने अपनी कार्य शैली बदली है। वो आज आम आदमी के हितों के लिये आगे आयी है। जनहित याचिकाएं की शुरुआत कर जस्टिस पी.एन.भगवती ने भारत में गरीब जनता को एक नयी उर्जा देने का काम किया है। लेकिन हमारी न्याय प्रणाली में अभी सुधार होना बहुत जरूरी है। आज हमारे न्यायालयों में इतने मामलों लम्बित हैं कि फैसला आते-आते उस फैसले का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। आज सभी न्यायालय विशेष कर सर्वोच्च न्यायालय लंबित मामलों के बोझ तले दबा हुआ है। जनता के अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायिक व्यवस्था की क्षमता गंभीर रूप से क्षीण हो गयी है। न्यायापालिका से ये अपेक्षा की जाती है कि वो कार्यकारणी और विधायिका से स्वतंत्र रह कर कार्य करे तथा राजनीतिक दबाव से प्रथक रहे। फिर भी न्यायिक व्यवस्था के काम करने के लिये बजट, वेतन के साथ कई आधारभूत सुविधाएं कार्यकारणी द्वारा अनुमोदित होती हैं। कार्यकारणी से अटूट संबंध होने पर भी भारत की न्यायपालिका निष्पक्षता के लिये प्रसिद्ध है।

न्याय व्यवस्था को प्रभावित करने वाली समस्याओं, विशेषकर न्याय में होने वाली देरी के सवाल की विधि आयोग, विशेष कमेटियों, मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलनों द्वारा समय-समय पर पड़ताल की गयी लेकिन कोई प्रभावकारी कार्यवाही आज तक नहीं हो पायी है। आज भारत की राजनीति नाजुक दौर से गुजर रही है। राजनीति में जातिवाद, क्षेत्रवाद, परिवारवाद के साथ-साथ अपराध, धनबल, बाहुबल का समावेश हो चुका है। चुनावों की बारम्बरता में बढ़ोत्तरी और अस्थायी सरकारों के आने से कई अनैच्छिक परिणाम हुए हैं। कार्यकाल कम होने तथा राजनीति में सत्ता हथियाने और सत्ता सुख लूटने व अधिकतम लाभ कमाने के लोभ में सरकारें /जन प्रतिनिधि अपने काम के प्रति गैर जिम्मेदार हो गये हैं। भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारों की नयी व्यवस्था का उदय हुआ है। छोटी-छोटी राजनीतिक पार्टियाँ व उनके नेताओं की शक्ति बढ़ी है। सरकारों की स्थिरता अनिश्चित है जिससे लोकतंत्र का माथना धुधलाने लगा है। गठबंधन सरकार में सत्ता में बने रहने के लिये राजनीतिक भ्रष्टाचार ने वैधता हासिल कर ली है। नौकरशाही राजनीतिज्ञों का खिलौना मात्र बन कर रह गयी है। सरकार और मंत्रालयों के काम की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करने की संसद की भूमिका समय के साथ गठबंधन सरकारों के चलते कम होती जा रही है। ये स्थिति भारतीय राजनीति के लिये संकट की स्थिति है। ऐसी स्थिति में न्यायालयों की जिम्मेदारियाँ बढ़ी है। न्यायालय और अधिक सक्रिय हुए। उनकी सक्रियता बढ़ी है।

12.4 जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1952

हमारी स्तंत्रता से लेकर आज तक हमारे देश में लोकतंत्र निःसन्देह मजबूत हुआ है। लेकिन राजनीतिक अपराधीकरण भी बढ़ा है। आम चुनाव साफ-सुथरे होने से वंचित हो गये हैं। 1952 में बना जन प्रतिनिधित्व अधिनियम लगभग-लगभग अर्थहीन हो गया है। जन प्रतिनिधि अधिनियम 1952 की धारा 8 के तहत किसी

प्रत्याषी के चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित होने के लिये दो वर्ष से अधिक की सजा मिलना आवश्यक है। यदि विशेष कानून के तहत यदि अपराधी पर अपराध सिद्ध हो जाता है तो उसे सजा कितनी भी मिले वो चुनाव नहीं लड़ सकता है। गंभीर आरोप विचाराधीन होने के बावजूद किसी प्रत्याषी को अयोग्य होने से बचाने के लिये न्यायशास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जब तक दोष सिद्ध नहीं हो सम्बंधित व्यक्ति को निर्देश माना जाता है। हालांकि इसका उद्देश्य कैद या जुर्माने की सजा रोकने से है।

प्रख्यात विधिवेत्ता के.के.वेणुगोपाल के अनुसार फौजदारी कानून के तहत कम से कम तीन चरण ऐसे होते हैं जिन पर अभियुक्त दोषमुक्त हो सकता है। यदि अभियुक्त पर दोषी होने का आरोप लगता है तो अभियुक्त को यह अवसर मिलता है कि वह सिद्ध करे कि प्रथम दृष्टिया उसके विरुद्ध मामला नहीं बनता तथा संबंधित अपराध में सम्मिलित होने का समुचित आधार नहीं है। धारा 482 के तहत वह आरोप रद्द करने की मांग कर सकता है। वेणु गोपाल के अनुसार अधिनियम की धारा 8 में संशोधन होना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया गया है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई न्यायालय धारा 8(1) में वर्णित किसी अपराध के लिये तय कर देती है या कोई ऐसे अपराध के लिये व्यक्ति आरोपित हो जाता है जिसकी सजा दो वर्ष से अधिक हो सकती है तो उसे चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित कर देना चाहिए। जन प्रतिनिधि अधिनियम की धारा 8 में ऐसा संशोधन नहीं होने के कारण उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 2002 में ऐसोसिएशन आफ डेमोक्रेटिक रिफार्म से सम्बंधित निर्णय सुनाकर यह प्रावधान किया गया था कि सभी प्रत्याषी अपने नामांकन पत्र भरने के साथ यह घोशणा करेंगे कि उनके विरुद्ध ऐसे अपराधों के आरोप न्यायालय में विचाराधीन नहीं हैं जिनमें दो वर्ष से ज्यादा की कैद हो।

सांसद और विधायक रहते हुए यदि किसी को सजा हो जाती है तो ऐसे मामलों में प्रतिनिधि अधिनियम का अलग मानदण्ड लागू होता है। ऐसे मामलों में भले ही धारा 8 में वर्णित किसी अपराध की सजा मिली हो या दो वर्ष से अधिक सजा हुई हो, इसके आधार पर उसे अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता है। चुनाव लड़ने वाले प्रत्याषी के एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि प्रत्याषी का निर्णय के खिलाफ अपील दायर करना या पुनर्विचार याचिका दायर करना ही प्रयास नहीं है बल्कि उसे अपीलीय अदालत में यह भी साबित करना होगा कि सुनवायी अदालत द्वारा उसके विरुद्ध निकाले गये निष्कर्ष तर्क विरुद्ध थे। वर्तमान सांसद और विधायकों के मामले में धारा 89(4) के अनुसार अपील दायर करने मात्र से अयोग्यता पर स्थगन लागू हो जाता है।

12.5 संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय

न्यायिक पुनर्विलोकन से ये अभिप्राय लगाया जा सकता कि इसके द्वारा कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के कार्यों की वैधता की जांच की जाती है। इसका अर्थ ये हुआ कि न्यायालय द्वारा कानूनी तथा प्रशासनिक नीतियों की संवैधानिकता की जांच तथा ऐसे कानून व नीतियों को असंवैधानिक घोषित करना जो संविधान के किसी अनुच्छेद पर अतिक्रमण करती हैं। कारबिन के शब्दों में “ न्यायिक पुनर्विलोकन का अर्थ न्यायालयों की उस शक्ति से है, जो उन्हें अपने न्याय क्षेत्र के अंतर्गत लागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के सम्बन्ध में प्राप्त है जिन्हें वे अवैध व व्यर्थ समझे।” सन् 1803 में अंग्रेज न्यायाधीश मार्शल ने मार्बरी बनाम मेडीसन के मामले में ‘ज्यूडिशियर रिव्यू’ की व्याख्या करते हुए कहा था कि न्यायिक पुनर्विलोकन न्यायालयों द्वारा अपने समक्ष पेश विधायी कानूनों तथा कार्यपालिका अथवा प्रशासनिक कार्यों का वह निरीक्षण है जिसके द्वारा वह निर्णय करता है कि क्या यह एक लिखित संविधान द्वारा निषिद्ध किये गये हैं अथवा उन्होंने अपनी शक्तियों से बढ़ कर कार्य किया है या नहीं? सर्वोच्च न्यायालय के इसी अधिकार को न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार कहा

गया है। न्यायिक पुनर्विलोकन का इतिहास लगभग 196 वर्ष पुराना है। इस सिद्धान्त का उदभव संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन प्रणाली में सर्वप्रथम दिखलायी पड़ता है। लेकिन कालान्तर में भारत, जापान व अन्य देशों में भी इस व्यवस्था को देखा जा सकता है।

यहाँ ध्यान देने वाली बात ये है कि भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्निरीक्षण के सिद्धान्त का उल्लेख संविधान के उपबंधों में कहीं नहीं मिलता है। फिर भी न्यायिक निरीक्षण के सिद्धान्त के आधारभूत तत्वों की मौजूदा स्थिति के कारण इस सिद्धान्त का स्वतः विकास हुआ है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि न्यायिक निरीक्षण के लिये तीन अपरिहार्य शर्तें होती हैं। जिन्हें भारतीय संविधान पूरा करता है। ये शर्तें निम्न हैं-

क. लिखित व कठोर संविधान

ख. केन्द्र व राज्यों के मध्य शक्ति विभाजन

ग. मौलिक अधिकारों की व्यवस्था

आईये अब भारतीय संविधान के उन प्रावधानों पर नजर डालते हैं जिसके आधार पर ये स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान निर्माता सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन जैसी व्यवस्था सौंपना चाहते थे।

एक- अनुच्छेद 13 में यह प्रावधान किया गया कि यदि किसी कानून द्वारा राज्य मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है तो उस कानून को अवैध घोषित किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 32 द्वारा अपने मूल अधिकारों का उल्लंघन होने पर कोई भी नागरिक संवैधानिक उपचार प्राप्त करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों के संरक्षण के लिये कार्यपालिका और संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पुनर्विलोकन कर सकता है।

दो- संविधान के अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत संघ और राज्यों की विधायी सीमा का उल्लेख किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकता है जिससे संघ अथवा राज्यों ने अपने क्षेत्राधिकार को तोड़ा हो। संविधान के अनुच्छेद 254 में यह प्रावधान किया गया है कि समवर्ती सूची के विषय पर यदि किसी राज्य विधानसभा द्वारा निर्मित कानून संघ सदन द्वारा निर्मित किसी कानून से संघर्ष में है तो राज्य का कानून अवैध माना जायेगा।

तीन- अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान में संशोधन का अधिकार एकमात्र केन्द्रीय संसद को ही प्रदान नहीं किया गया है अपितु उसमें राज्य विधान सभाओं की भी निश्चित भूमिका का उल्लेख है। यदि कोई संशोधन विधान प्रक्रिया के तहत नहीं होता तो न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है।

चार- अनुच्छेद 132 के अनुसार ऐसे मामलों में जहाँ संविधान की व्याख्या का प्रश्न निहित है, सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सर्वोच्च न्यायालय को संवैधानिक मामलों में निर्णय देने का अंतिम अधिकार है। न्यायमूर्ति मुखर्जी के अनुसार-''भारत में संसदीय संप्रभुता के बजाय संवैधानिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। इस दृष्टि से भारत का संविधान अंग्रेजी संविधान के बजाय अमेरिकी संविधान से मिलता है। शासन के सभी उपकरण संविधान के अधीन हैं और न्यायालय को उनके कार्यों की वैधता

की जाँच करने का अधिकार प्राप्त है।” डी0डी0बसु के अनुसार- ”यह अधिकार सैद्धान्तिक दृष्टि से हमारे संविधान का आधारभूत सिद्धान्त है। ये सर्वोच्च न्यायालय में गोपालन प्रकरण में स्वीकृत किया गया है।”

12.6 भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन

भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने पिछले कई वर्षों में कई अभियोगों के सिलसिले में कुछ ऐसे फैसले दिये हैं जिनमें न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। यथा-

(1) शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ, 1952, इस अभियोग में संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम को इस आधार पर चुनौती दी गयी कि यह संविधान में दिये गये मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है क्योंकि ऐसा करना अनुच्छेद 13(2) द्वारा वर्जित था। चुनौती देने वालों का यह भी कहना था कि अनुच्छेद 13 में दिये गये ‘विधि’ शब्द के अंतर्गत अनुच्छेद 368 के अंतर्गत पारित संविधानिक संशोधन भी सम्मिलित है।

सर्वोच्च न्यायालय ने चुनौती देने वालों के तर्कों को स्वीकार नहीं किया उसने निर्णय दिया कि-

- संविधान संशोधन की शक्ति जिसमें मूल अधिकार भी सम्मिलित हैं अनुच्छेद 368 में निहित हैं।
- अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त ‘विधि’ का तात्पर्य केवल सामान्य विधायी प्रक्रिया से पारित कानून से है न कि संविधान संशोधन से जोकि विशेष प्रक्रिया द्वारा पारित किये जाते हैं।

(2) सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 1965-इस वाद में सत्रहवें संविधान संशोधन की वैधता को चुनौती दी गयी थी। इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने शंकर प्रसाद बनाम भारत संघ में दिये निर्णय को दोहराते हुए कहा कि मूल अधिकारों में संशोधन अनुच्छेद 368 में सम्मिलित हैं।

(3) गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य, 1967- हेनरी गोलकनाथ अपनी बहुत सी सम्पत्ति छोड़ कर मर गये। स्थानीय अतिरिक्त आयुक्त ने गोलक नाथ की 418 एकड़ जमीन सिक्योरिटी आफ लैण्ड टेन्योर्स एक्ट के अन्तर्गत अतिरिक्त भूमि घोषित की इसकी पुष्टि वित्त आयोग ने भी 1952 में कर दी। गोलकनाथ के पुत्र व पुत्री तथा पौत्रियों ने वित्त आयुक्त के निर्णय को संविधान के अनुच्छेद 19(1) एक्स तथा 14 के विरुद्ध होने के कारण चुनौती दी इसके साथ 1951, 1955, 1964, 1955 व 1964 में पारित प्रथम, चतुर्थ एवं सत्रहवें संशोधन को भी चुनौती दी है। इस वाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दो बिन्दु विचारणीय थे।

क- क्या संसद संविधान के भाग-3(मौलिक अधिकारों) में संशोधन कर सकती है?

ख- क्या अनुच्छेद 368 संसद को इस प्रकार का संशोधन करने का अधिकार देता है?

इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने छः/पाँच के बहुमत से अपना निर्णय देते हुए कहा-

- संसद नागरिकों के मूल अधिकारों में परिवर्तन का अधिकार नहीं रखती तथा वह भाग-3 में ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो उनमें कमी करे या उन्हें समाप्त करे।

- सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय शंकरि बनाम भारत संघ तथा सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य में दिये गये निर्णय को बदल दिया। तथा निर्णय देते हुए कहा कि उसके पूर्ववर्ती निर्णय वाध्यकारी नहीं है।

- सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि अनुच्छेद 368 संसद को संविधान संशोधन की प्रक्रिया बताता है।

- अनुच्छेद 368 द्वारा किया गया संशोधन अनुच्छेद 13(2) में वर्णित विधि की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

(4) केशवानंद भारती वाद- केरल में एडनर मठ के स्वामी केशवानंद भारती ने केरल भूमि सुधार संशोधन अधिनियम 1969 की वैधता को चुनौती दी तथा यह कहा कि इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 25, 14, 19(1) एवं 31 का उल्लंघन हुआ है। इस वाद में फिर वही प्रश्न उठाये गये-

1. क्या अनुच्छेद 368 द्वारा मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है?

2. संसद के संविधान संशोधन के सम्बन्ध में क्या अधिकार हैं?

ध्यान देने वाली महत्वपूर्ण बात ये है कि इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने गोलकनाथ वाद में दिये गये निर्णय को बदलते हुए 24वें, 25वें संविधानिक संशोधन की उपधारा 2(अ) और 2(ब) और उपधारा 3 के प्रथम भाग की पुष्टि की तथा महत्वपूर्ण निर्णय देते हुए कहा कि- अनुच्छेद 368 के अंतर्गत मूल अधिकारों में संशोधन किया जा सकता है। संसद को संविधान के किसी भी उपबंध जिसमें मूल अधिकार भी सम्मिलित है को संशोधन तथा उसे निरस्त करने का भी अधिकार प्राप्त है। ये बात ध्यान देने की है कि संसद को संविधान संशोधन का अधिकार तो दिया गया लेकिन ये उपबंध लगा दिया कि वो संविधान के मूल भूत ढाँचों को बदल नहीं सकता।

(5) ए.के.गोपालन बनाम मद्रास राज्य, 1950 - मद्रास के ए.के.गोपालन को निवारक निरोध अधिनियम के तहत बंदी बनाया गया जिस पर उसने अपने बंदीकरण को न्यायालयमें चुनौती दी। उसने अपने पक्ष में तर्क देते हुए कहा कि इस निरोध द्वारा अनुच्छेद 19 में प्रदत्त भारत में अबाध स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण हुआ है। ये दैहिक स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है। साथ ही अनुच्छेद 21 के दैहिक अधिकार का भी अतिक्रमण हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों आधारों को निरस्त करते हुए कहा कि- अनुच्छेद 21 तथा 19 स्वतंत्रता के दो विभिन्न प्रकार हैं। अनुच्छेद 21 में प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता का तथा अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार एक दूसरे से किसी भी तरह सम्बंधित नहीं हैं। अनुच्छेद 21 के अधीन प्रदत्त दैहिक स्वतंत्रता को चुनौती नहीं दी जा सकती है। वह अनुच्छेद 19(5) के अधीन निर्बन्धन लगाती है।

(6) मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ, 1980- मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त के सम्बंध में व्याख्या की और 4-1 के बहुमत से निर्णय में ये कहा कि मूल अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्व दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अनुच्छेद 31-ग अनुच्छेद 14 तथा 19 का उल्लंघन करता है। इसमें संशोधन किया जा सकता है।

12.7 न्यायिक सक्रियता

लोकतांत्रिक ढाँचों में कार्यपालिका व विधायिका ही नीतिगत निर्णय लेती हैं। जो नीतियाँ बनायी जाती हैं उनको लागू करने की जिम्मेदारी भी निभाती हैं। कार्यपालिका व विधायिका अपना काम सही तरीके से कर रहीं हैं या नहीं

ये देखने का काम न्यायपालिका करती है। जब कोई संस्था अपना दायित्व ठीक-ठाक से नहीं निभाती तो न्यायपालिका सक्रिय हो जाती है। न्यायपालिका की इस सक्रियता को ही न्यायिक सक्रियता का नाम दिया गया है।

वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था में न्यायिक सक्रियता नामक शब्द बहुत अधिक सुर्खियों में है। हालांकि न्यायिक सक्रियता शब्द की चर्चा संविधान में कहीं भी नहीं की गयी है। लेकिन भारत के पूर्व न्यायाधीश पी.एन. भगवती के विचारानुसार जिन व्यवस्थाओं में न्यायालय को पुनर्वालोकन का अधिकार है वही न्यायिक सक्रियता का रूप है। हाल ही के दिनों में न्यायालयों ने ऐसे फैसले दिये हैं जो भारत के विकास को गति प्रदान करेंगे। इस समय जब भारत में त्वरित विकास की आशा बलवती है, न्यायालयों के लंबित मामलों की संख्या चिंता का कारण बनी हुयी है। सुव्यवस्था के अभाव में किसी भी देश या समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है। त्वरित न्याय मिलते रहने पर लोगों की कानून व व्यवस्थाओं के प्रति आस्था बनी रहती है। न्यायिक सक्रियता का समाज के सभी वर्गों ने स्वागत किया है। भारत में न्यायिक सक्रियता को बल देने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य जनहित याचिकाओं ने किया है। आम आदमी अपने अधिकारों के लिये सजग हुआ है। न्यायालयों की जटिल प्रक्रिया को न सझने के कारण न्याय की गुहार भी न कर पाने वाला आम नागरिक जनहित याचिकाओं के माध्यम से अपने न्याय को पाने में सफल हुआ है। इसे भारत में न्यायिक सक्रियता की सफलता ही कहा जा सकता है। न्यायालय का कार्य संवैधानिक पदावलियों की व्याख्या के साथ-साथ अब देश के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में भी बढ़ गया है। न्यायिक सक्रियता के ऐतिहासिक पहलू को देखने से स्पष्ट होता है कि गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य 1967 में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल अधिकारों में संशोधन पर रोक लगाते हुए यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 में केवल संविधान में संशोधन की प्रक्रिया निहित है तथा संविधान के भाग-3 में संशोधन करने की शक्ति नहीं देता। सर्वोच्च न्यायालय ने इस वाद के निर्णय में पहली बार अपनी सक्रियता का परिचय दिया। बाद में संसद ने 24वें संविधान संशोधन द्वारा गोलक नाथ में दिये गये मामले को अप्रभावी बना दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती 1974 के मामले में 24वें संशोधन को यह देखते हुए विधि मान्य बताया कि संसद किसी भी संशोधन के तहत संविधान के मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। 42वें संविधान संशोधन द्वारा संसद ने न्यायालय के निर्णय को अप्रभावी बनाते हुए यह व्यवस्था की कि अनुच्छेद 368 के तहत किये गये संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। लेकिन न्यायालय ने मिर्नवा मिल 1980 के मामले में 42वें संविधान संशोधन के अंतर्गत अनुच्छेद 368 में जोड़े गये खण्ड-4 व 5 को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित किया कि यह संविधान के मूलभूत ढाँचे को प्रभावित करते हैं। पीपुल्स यूनिन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम यूनिन ऑफ इण्डिया, 1980 के निर्णय में यह निर्धारित किया गया कि यह आवश्यक नहीं है कि न्याय पाने के लिये पीड़ित या शोषित व्यक्ति ही याचिका दायर करें। पीड़ित व्यक्ति की ओर से किसी अन्य व्यक्ति या संस्था द्वारा भी याचिका दायर की जा सकती है। इसे ही जनहित याचिका का नाम दिया गया और यहीं से जनहित याचिका वाद की शरूआत होती है। जनहित याचिका न्यायालय की सक्रियता में वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण है। जनहित याचिकाओं ने आम आदमी को सजग बनाया है। न्यायालयों में बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं दायर हुयी हैं।

12.8 जनहित/लोकहित याचिकाएं(पी.आई.एल.)

न्यायिक सक्रियता के पीछे महत्वपूर्ण हाथ लोकहित याचिका का है। सही मायने में यदि देखा जाये तो न्यायिक सक्रियता का प्रमुख आधार लोकहित/जनहित याचिका ही है। भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 32 के अधीन यह वर्णित है कि संविधान से लाभ पाने का अधिकार उसी व्यक्ति को है जिसके मूल अधिकारों का

अतिक्रमण हुआ हो। लोकहितवाद को परिभाषित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा है कि-समाज के निर्धन व कमजोर वर्ग के लोगों के संवैधानिक और विधिक अधिकारों में इसका काफी महत्व है। लोकहितवाद में जनहितवाद विधि के शासन का एक आवश्यक तत्व है। जनहितवाद के महत्व को बताते हुए कहा गया कि कमजोर और गरीब व्यक्ति जो न्यायालय में जाने में असमर्थ है उसकी क्षति से सम्बंधित याचिका अनुच्छेद 32 के तहत किसी भी व्यक्ति द्वारा दायर की जा सकती है। जनहितवाद के लिये कुछ आवश्यक तत्व मुख्य हैं-

1. पीड़ित पक्ष न्यायालय में जाने में असमर्थ है।
2. यह याचिका पत्र द्वारा न्यायालय को सम्बन्धित करके लिखी जा सकती है।
3. पत्र में शपथ पत्र या कोई फीस आवश्यक नहीं है।
4. याचिका किसी भी संस्था या व्यक्ति द्वारा दायर की जा सकती है।
5. याचिका को लोकहित से सम्बन्धित होना चाहिए।

आइये अब भारत में जनहित याचिका के इतिहास पर नजर डालते हैं। जनहित याचिका का प्रथम मुख्य मुकद्दा 1979 में हुसैन आरा खातून बनाम बिहार राज्य (ए.आई.आर.1979 एस.सी. 1360) वाद में कारागार और विचाराधीन कैदियों की अमानवीय स्थिति के संबंध में था। यह एक अधिवक्ता द्वारा इण्डियन एक्सप्रेस अखबार में छपे एक खबर, जिसमें बिहार राज्य में बंद हजारों विचाराधीन कैदियों का हाल वर्णित था के आधार पर दायर किया गया था। मुकदमें के नतीजन 4000 से अधिक कैदियों को रिहा कर दिया गया। त्वरित न्याय को मौलिक अधिकार माना गया। जो कि उन कैदियों को नहीं दिया जा रहा था। इस सिद्धान्त को बाद के कसों में भी स्वीकार किया गया। एम.सी.मेहता और भारतीय संघ व अन्य (1989-2001) इस लम्बे चले वाद में आदेश दिया गया कि दिल्ली मास्टर प्लान के तहत और दिल्ली में प्रदूषण कम करने के लिये दिल्ली के रिहायषी इलाकों से करीब 10,000 औद्योगिक इकाईयों को दिल्ली से बाहर स्थानांतरित किया जाये। इस फैसले ने 1999 के अंत में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में औद्योगिक अषांति और सामाजिक अस्थिरता को जन्म दिया इसकी आलोचना भी हुयी। ये कहा गया कि न्यायालय द्वारा आम मजदूरों के हितों की अनदेखी पर्यावरण के लिये की जा रही है। इस जनहित याचिका ने 20 लाख के लगभग लोगों को प्रभावित किया था जो इन इकाईयों में सेवारत थे। एक और फैसले में अक्टूबर 2001 में उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि सभी सार्वजनिक बसों को चरणवद्ध तरीके से सिर्फ सी.एन.जी.(कम्प्रेस्ड नैचुरल गैस) ईंधन से चलाया जाये। क्योंकि यह माना गया कि सीएनजी डीजल की अपेक्षा कम प्रदूषण करती है। हालांकि बाद में यह पाया गया कि बहुत कम गंधक वाला डीजल भी अच्छा व बेहतर विकल्प हो सकता है।

ऐसी याचिकाएं जिसमें न्यायालय ये मानता है कि इसमें जनहित का आधार नहीं है ऐसी याचिकाओं को न्यायालय खारिज भी कर सकता। उदाहरण के लिये- अन्नाद्रमुक के सांसद पी.जी. नारायणन द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय में दायर जनहित याचिका जिसमें न्यायालय ने संघ सरकार को जनहित में सन टीवी प्राईवेट लिमिटेड के डायरेक्ट टू होम सेवा के आवेदन को अस्वीकृत करने का अनुरोध किया गया था। न्यायालय ने इस याचिका को स्वीकार नहीं किया। जनहितवाद का सिद्धान्त स्थापित होने के बाद से न्यायालयों में जनहित याचिका अधिक संख्या में आने

लगी। न्यायालय में दाखिल की जाने वाली याचिकाओं में कुछ तो वास्तव में महत्वपूर्ण व घोशणीय होती हैं जबकि कुछ व्यर्थ याचिकाओं को निरस्त करने में भी न्यायालयों को सुनवाई करनी पड़ती है। जिससे न्यायालयों का समय खराब होता है। गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू करने को चुनौती देने वाली एक जनहित याचिका को निरस्त करते हुए 17 फरवरी, 1997 को उच्चतम न्यायालय की एक खण्डपीठ ने जनहितवाद के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो मुख्य हैं-

अ- प्रत्येक नागरिक को यह मूलाधिकार प्राप्त नहीं है कि वह न्यायालय में जनहित वार दाखिल करे।

ब- न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह प्रत्येक जनहित याचिका को स्वीकार ही करे। न्यायालय को जनहित याचिका तभी स्वीकार करनी चाहिए जब वह प्रतिनिधित्व प्रकृति की हो।

स- न्यायालय अपने समक्ष दाखिल की गयी जनहित याचिका को तभी स्वीकार करेगा, जब उसे विश्वास हो जाये कि याचिका के बिन्दु महत्वपूर्ण हैं।

आज भारत में जनहित याचिकाओं के चलते अनावश्यक मुकदमों की भी बाढ़ आ गयी है। बेवजह अनेकों मुद्दों पर जनहित याचिका दायर की जा रही है। जिससे कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जनहित याचिका की महत्ता कम हो सकती है। इसके लिये न्यायालयों द्वारा प्रयास किया जा रहा है।

12.9 सारांश

इस इकाई में हमने समझा कि न्यायपालिका किस तरह से दिन प्रतिदिन शक्तिशाली हुयी है। न्यायालयों ने अपनी कार्यशैली को बदला है। आज न्यायालय आम आदमी के पक्ष में खड़ा नजर आ रहा है। जब हमारे देश की व्यवस्था चलाने वाली संस्थाएं पथभ्रष्ट हो चुकी हैं तब न्यायालयों ने आगे आकर इन संस्थाओं के कामों को अपने अधीन लेते हुए दोनों संस्थाओं कार्यपालिका व व्यवस्थापिका को सचेत कर उन्हें राह दिखायी है। न्यायालयों ने महत्वपूर्ण फैसले लिये हैं जिससे समाज में चेतना का प्रचार-प्रसार व आम जनता का संविधान व न्याय के प्रति विश्वास बढ़ा है। हमने इस अध्याय में ये भी समझा कि न्यायालय कैसे सक्रिय हुए हैं। न्यायपालिका ने प्रगतिशील निर्णय देते हुए जेल प्रशासन, गरीबों को कानूनी सहायता, कैदियों और विचारधीन कैदियों की रिहाई के मामले में अपनी चिंता व्यक्त करते हुए ऐसे महत्वपूर्ण फैसले दिये कि जो हमेषा के लिये नजीर बन गये। सामाजिक चेतना रखने वाले न्यायाधीशों ने जनहित याचिकाओं को महत्व देकर न्यायालय का क्षेत्राधिकार और उसकी शक्ति को दुनियाँ के सामने प्रस्तुत किया।

12.10 शब्दावली

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
 2. भारतीय शासन एवं राजनीति-पुखराज जैन एवं बी.एल. फार्डिया
 3. रजनी पामदत्त- आज का भारत
 4. सुभाष कष्यप-हमारी संसद
 5. सुभाष कष्यप-हमारा संविधान
- 12.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1. .भारत का भविष्य-विमल जालान
 2. .बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपालिका

3. .एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्यपालिका व व्यवस्थापिका से अधिक शक्तिशाली होकर उभरी है हमारी न्यायापालिका। इससे आप क्या समझते हैं ?
2. संविधान संरक्षक के रूप में सर्वोच्च न्यायालय कैसे कार्य करता है?
3. भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन के महत्व को समझाते हुए तीन महत्वपूर्णवादों का वर्णन कीजिए?
4. जनहित याचिका ही न्यायिक सक्रियता का मूल आधार है। इस कथन पर अपने विचार प्रकट करें?

इकाई-13

निर्वाचन आयोग संरचना, कार्य, भूमिका

इकाई की रूपरेखा

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 भारत में निर्वाचन आयोग
 - 13.3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य
 - 13.3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां
 - 13.3.3 समयानुसार सख्त होता चुनाव आयोग
- 13.4. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति
 - 13.4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार
- 13.5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल
- 13.6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास
- 13.7 सारांश
- 13.8 शब्दावली
- 13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 13.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 13.12 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

निर्वाचन आयोग अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये बदलते समाज, राजसत्ता तथा प्रौद्योगिकी के अनुसार तेजी से अपने आप को ढाल रहा है। भारतीय राजनीति जो अपनी सीमाओं से बाहर होते जा रही थी उस पर निर्वाचन आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए नियंत्रण लगाने का सफल प्रयास किया है। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए निर्वाचन आयोग ने भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक व्यवस्था की उत्तरोत्तर मजबूती का साक्ष्य दिया है।

भारतीय चुनाव आयोग एक स्वायत्त एवं अर्ध न्यायिक संस्थान है। जिसका गठन भारत में स्वतंत्र व निष्पक्ष रूप से विभिन्न राज्यों भारत के प्रतिनिधिक संस्थानों में प्रतिनिधि चुनने की प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित कराने के लिये किया गया। भारतीय चुनाव आयोग की स्थापना 25 जनवरी 1950 को की गयी। आयोग में वर्तमान में एक मुख्य चुनाव आयुक्त व दो चुनाव आयुक्त होते हैं। 1950 में जब निर्वाचन आयोग का गठन किया गया तब यह केवल एकल सदस्यीय निकाय था। 25 जनवरी 1950 से 15 अक्टूबर 1989 तक यह केवल एक सदस्यीय निकाय के रूप में कार्य करता रहा। 16 अक्टूबर 1989 से 1 जनवरी 1990 तक यह आर.वी.एस.शास्त्री मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्त के रूप में एस.एस.धनोवा और वी.एस.सहगल सहित तीन सदस्यीय निकाय बन गया। इसके संरचना में एक बार फिर परिवर्तन हुआ 2 जनवरी 1990 से 30 सितम्बर 1993 तक यह फिर एकल सदस्यीय निकाय बना। निर्वाचन आयोग की संरचना को फिर परिवर्तित करते हुए 1 अक्टूबर 1993 से इसे पुनः तीन सदस्यीय निकाय बना दिया गया। वर्तमान में निर्वाचन आयोग तीन सदस्यीय निकाय के रूप में हमारे देश में कार्य कर रहा है।

13.2 उद्देश्य

- इस इकाई में हम निर्वाचन आयोग के उन सभी पहलूओं का अध्ययन करेंगे जिनसे हमें चुनावी प्रक्रिया को समझने में सरलता होगी।
- इस इकाई के द्वारा हम ये भी समझेंगे कि निर्वाचन/चुनाव आयोग का गठन कब हुआ उसके क्या कार्य है?
- निर्वाचन आयोग कैसे कार्य करता है और इतने विषालदेश में चुनाव जैसे कार्यक्रमों को सफल बनाने में कैसी कार्यप्रणाली का प्रयोग करता है। यह भी हम इस इकाई में जानेंगे।

13.3 भारत में निर्वाचन आयोग

भारतीय लोकतंत्र में चुनाव प्रक्रिया के अलग-अलग स्तर हैं। लेकिन मुख्य तौर पर भारत के संविधान में पूरे देशके लिये एक लोकसभा और पृथक-पृथक राज्यों के लिये एक विधानसभा का प्रावधान है। भारतीय संविधान के भाग-15 में अनुच्छेद 324 से अनुच्छेद 329 तक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 324 निर्वाचनों का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना बताता है। संविधान के अनुच्छेद 324 में ही निर्वाचन आयोग को चुनाव सम्पन्न कराने की जिम्मेदारी दी है। 1989 तक निर्वाचन आयोग केवल एक सदस्यीय संगठन था लेकिन 16 अक्टूबर 1989 को एक राष्ट्रपतीय अधिसूचना के द्वारा दो और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति की गयी। और इस प्रकार निर्वाचन आयोग को पुनः तीन सदस्यीय संगठन बना दिया गया। लोकसभा की कुल 543 सीटों के लिये अलग-अलग राज्यों से प्रतिनिधि चुने जाते हैं। ठीक इसी प्रक्रिया से अलग-अलग राज्यों की विधानसभाओं के लिये अलग-अलग संख्या में विधायकों का चुनाव किया जाता है। नगरीय चुनाव निकाय का प्रबन्धन राज्य निर्वाचन आयोग करता है। जबकि लोकसभा व विधानसभा चुनाव भारत निर्वाचन आयोग के नियंत्रण में होते हैं। जिसमें वयस्क मतदाता प्रत्यक्ष मतदान के माध्यम से सांसद व विधायकों का चुनाव करते हैं। लोक सभा व विधानसभा दोनों का ही कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों के लिये सबसे पहले निर्वाचन आयोग अधिसूचना जारी करता है। अधिसूचना जारी हो जाने के बाद सम्पूर्ण निर्वाचन प्रक्रिया के तीन भाग होते हैं-

- नामांकन
- निर्वाचन
- मतगणना

निर्वाचन की अधिसूचना जारी हो जाने के बाद नामांकन पत्रों को दाखिल करने के लिये सात दिनों का समय मिलता है। इसके बाद एक दिन उसकी जाँच पड़ताल के लिये रखा जाता है। इसमें अन्यायपूर्ण कारणों से नामांकन पत्र रद्द भी किये जा सकते हैं। तदपश्चात् दो दिन नाम वापसी के लिये दिये जाते हैं। ताकि वो उम्मीदवार जिन्हें किन्हीं कारणों से चुनाव नहीं लड़ना है वे आवश्यक विचार विनिमय के बाद अपने नामांकन पत्र वापस ले सकें। 1993 तथा 1996 के लोकसभा चुनावों में विषिष्ट कारणों से नाम वापसी का समय चार दिन रखा गया था। परन्तु सामान्यतः यह कार्य दो दिनों में ही पूरा किया जाता रहा है। कभी-कभी किसी क्षेत्र में पुनः मतदान की स्थिति पैदा होने पर उसके लिये अलग से दिन तय किया जाता है। जो नितान्त रूप से निर्वाचन आयोग का एकाधिकार है। मतदान के लिये तय किये गये केन्द्रों में मतदान का समय प्रातः सात बजे से लेकर साँय पाँच बजे तक रखा गया

है यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि भारत में वोट देने की कोई कानूनी वाध्यता नहीं है। यह नागरिकों का अधिकार है कर्तव्य नहीं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं राज्य सभा सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष रूप से होता है। इन्हें जनता द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधि चुनते हैं। चुनाव के समय समस्त प्रशासनिक मशीनरी चुनाव आयोग के नियंत्रण में कार्य करती है। चुनाव की घोषणा होने के पश्चात आचार संहिता लागू हो जाती है। हर राजनीतिक दल, उसके कार्यकर्ता व उम्मीदवार को इसका पालन करना पड़ता है।

13.3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य

हम उपर इस बात को जान चुके हैं कि निर्वाचन आयोग व निर्वाचन आयुक्त सम्बन्धि व्यवस्था का वर्णन संविधान के पंद्रहवें भाग में किया गया है। भारतीय शासन व्यवस्था में हमारे संविधान ने निर्वाचन आयोग को विशेष महत्व दिया है। संविधान सभा के सदस्य हृदय नाथ कंजूरू के अनुसार- 'यदि चुनाव व्यवस्था दोषपूर्ण है या अकुशल है या ऐसे व्यक्तियों द्वारा संचालित है जिनकी निष्ठा सन्देहपूर्ण है, तो प्रजातंत्र के सूत्र में ही जहर घुल जायेगा, इसी कारण हमारे देशमें निर्वाचन के विषय को संवैधानिक मान्यता दी गयी है।' संविधान निर्माताओं ने निर्वाचन आयोग को संविधान का आधार अंग माना है।

- निर्वाचन आयोग के पास यह उत्तरदायित्व है कि वह निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन तथा अयोजन करवाये।
- निर्वाचन आयोग राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद, राज्य विधान सभा के चुनाव करवाता है।
- यह निर्वाचन नामावली तैयार करवाता है।
- राजनीतिक दलों का पंजीकरण करता है।
- राजनीतिक दलों का राष्ट्रीय, राज्य स्तर के दलों के रूप में वर्गीकरण करता है तथा मान्यता प्रदान करता है।
- यह दलों, निर्दलियों को चुनाव के समय चुनाव चिन्ह देने का काम करता है।
- सांसद व विधायकों की अयोग्यता(दल-बदल को छोड़ कर) पर राष्ट्रपति व राज्यपाल को सलाह देने का काम करता है।
- गलत निर्वाचन उपायों का उपयोग करने वाले व्यक्तियों को निर्वाचन के लिये अयोग्य घोषित करता है।

13.3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां

भारत के संविधान का अनुच्छेद 324(1) निर्वाचन आयोग को निम्न शक्तियां प्रदान करता है-

१. सभी निर्वाचनों का पर्यवेक्षण, नियंत्रण व आयोजन अपने विवेकानुसार करना।
२. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार अनुच्छेद 324(1) में निर्वाचन आयोग की शक्तियां कार्यपालिका द्वारा नियंत्रित नहीं हो सकती। उसकी शक्तियां केवल उन निर्वाचन सम्बन्धि संवैधानिक उपायों तथा संसद निर्मित विधि से नियंत्रित होती है।
३. निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन व नियंत्रण का आयोजन कराने की शक्ति में देश में मुक्त, भयविहीन व निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये निर्वाचन आयोग असीमित शक्ति रखता है। यद्यपि प्राकृतिक न्याय, विधि का शासन तथा उसके द्वारा शक्ति का सदुपयोग होना चाहिए।
४. निर्वाचन आयोग विधायक निर्मित विधि का उल्लंघन नहीं कर सकता और न ही ये स्वेच्छा पूर्ण कार्य कर सकता है। उसके निर्णय न्यायिक पुनरीक्षण के पात्र होते हैं।
५. निर्वाचन आयोग की शक्तियां निर्वाचन विधियों की पूरक हैं न कि उन पर प्रभावी तथा वैध प्रक्रिया से बनी विधि के विरुद्ध प्रयोग नहीं की जा सकती है।
६. निर्वाचन आयोग चुनाव का कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है। चुनाव चिन्ह आवंटित करने तथा निष्पक्ष चुनाव कराने के निर्देश देने की शक्ति रखता है।
७. निर्वाचन आयोग की शक्तियों की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि- वह एक मात्र अधिकरण है जो चुनाव कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है और चुनाव कराना केवल उसी का कार्य है।
८. जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के अनुच्छेद 14 व 15 भी राष्ट्रपति व राज्यपाल को निर्वाचन अधिसूचना जारी करने का अधिकार निर्वाचन आयोग के सलाह के अनुरूप ही देता है।

13.3.3 समयानुसार सख्त होता चुनाव आयोग

चुनाव के समय चुनाव आयोग ही उच्चतम प्रशासनिक संस्था के रूप में कार्य करता है। उस समय चुनाव आयोग का आदेश अंतिम व सर्वमान्य होता है। चुनाव आयोग की शक्ति क्या है? कानून की शक्ति किसे कहते हैं? और शक्ति का प्रयोग कैसे किया जा सकता है इसको सबसे पहले पूर्व मुख्य

चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने पूरेदेशव दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। टी.एन.शेषन भारतीय चुनाव आयोग के 10वें मुख्य चुनाव आयुक्त थे। उनका कार्यकाल 12 दिसम्बर 1990 से 11 दिसम्बर 1996 तक रहा। टी.एन.शेषन ने कानून की शक्ति का सबसे प्रभावशाली प्रयोग करके सारेदेशको चुनाव आयोग की शक्ति से परिचित करा दिया। इनके कार्यकाल से पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त आम आदमी की जानकारी में प्रायः अनभिग्य ही था। शेषन काल से ही आम आदमी को निर्वाचन/चुनाव आयोग व मुख्य निर्वाचन आयुक्त की भूमिका व उसकी शक्ति का पता चला। आज अपनी शक्ति व कार्यशैली के कारण ही चुनाव आयोग आम सुर्खियों में आ गया है। शेषन ने ही भारतीय राजनीति में जड़ जमाती जोड़-तोड़ की राजनीति, बेईमानी, अपराधी प्रवृत्ति के उमीदवारों, धनबल, बाहुबल पर नकेल डालने का सफल प्रयास करके सारी दुनियाँ के सामने स्वच्छ छवि वाले अधिकारी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया। उन्होंने आने वाले चुनाव आयुक्तों के लिये नजीर पेश कर इमानदारी की परम्परा स्थापित कर दी। तब से अब तक राजनीतिक दल और उनके सदस्य जो भी मुख्य चुनाव आयुक्त बनता है उससे सहम कर रहते हैं।

पिछले आम चुनावों से निर्वाचन/चुनाव आयोग ने चुनावों को और निष्पक्ष व भयमुक्त कराने के लिये कठोर दिशा निर्देश जारी कर दिये। नियमों को कठोर बनाते हुए उनका पालन कड़ाई से करने के भी आदेश जारी किये गये। इसका एक उदाहरण- पिछले आम चुनावों में मध्यप्रदेश में देखने को मिला। मध्य प्रदेश के पर्यटन मंत्री तुकोजीराव पवार और एक पूर्व सांसद उमीदवार फूलचंद वर्मा को रिटर्निंग आफिसर से बतमीजी करने के आरोप में प्रकरण दर्ज कर जेल भेज दिया। इस घटना से सभी उम्मीदवार व कर्मचारी भयभीत हो गये। चुनाव आयोग के इस शक्ति प्रदर्शन से पूरी मशीनरी में हड़कम्प मच गया। निर्वाचन आयोग ने जब अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तो जिला अधिकारी, पुलिस अधिकारी व अन्य शासकीय कर्मचारी अपने काम करने में गंभीरता के साथ जुट गये। सभी अधिकारी कर्मचारी रात के 12-12 बजे तक काम में लगे रहे। अब चुनाव आयोग ने सभी कर्मचारियों व अधिकारियों की समय सीमा तय कर दी है। और उसी समय के भीतर उन्हें अपना कार्य पूरा करना होता है। सिर पर नोटिस, कारण बताओ पत्र, निलम्बन, बर्खास्तगी की तलवार हमेशा सबके उपर लटकी रहती है चाहे व अधिकारी हो या कर्मचारी। उम्मीदवार भी सोच समझ कर कदम रख रहें हैं। सभी उम्मीदवारों ने निर्वाचन आयोग के नियमों का सही से पालन करने के लिये दो-दो वकील व चार्टर्ड एकाउन्ट रखना आम बात हो गयी है। ताकि चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार या उसका दल आयोग को सभी लेखा-जोखा समय पर दे सके। अब उम्मीदवार को दैनिक खर्च को व्यौरा भी आयोग को देना होता है। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को सम्पत्ती का व्यौरा आयोग के सामने स्पष्ट करना होता है। चुनाव आयोग के कठोर नियमों के चलते उम्मीदवार झण्डे-डण्डे, स्पीकर, बैनर, पोस्टरों पर सतर्कता बरत रहे हैं। अब उम्मीदवार इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि किससे मिलना है और किससे चुनाव के दौरान दूरी बना के रखनी है ताकि चुनाव आयोग के संदेह के घेरे में

न आ जायें। चुनाव आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर नई चुनाव शैली का शुभारंभ किया है। जिसने इसदेशके लोकतंत्र को और मजबूती देने का काम किया है।

भारत में चुनाव आयोग ने एक और महान व उल्लेखनीय काम करके सुर्खिया बटोरी हैं। चुनाव आयोग ने पर्यावरण संरक्षण को ले कर भी अनूठा व अभिनव प्रयोग किया है। यहाँ एक बात ये ध्यान देने की है कि सन् 2004 में आम चुनावों में आयोग ने 'पेपरलैस' चुनाव का प्रयोग किया। जो सफल रहा। पेपरलैस चुनाव से तात्पर्य था कि चुनावों में कागज का कम से कम प्रयोग करना। इस मुहीम को सफल बनाने के लिये आयोग ने लगभग प्रत्येक राज्य में प्रत्येक मतदान केन्द्र पर इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन(ई.वी.एम.) से मतदान करवाया। ई.वी.एम. से मतदान करवा कर चुनाव आयोग ने देशका करोड़ों टन कागज बचाया। कागज के बचाने का पर्याय है पेड़ों का संरक्षण। पेड़ों को संरक्षित करने का मतलब है पर्यावरण का संतुलन प्रदान करना। यह चुनाव आयोग की नई व अनुकरणीय पहल है। इसी क्रम में चुनाव आयोग ने एक और अनूठा प्रयोग किया वो था 'प्लास्टिक पर बैन'। अब चुनाव आयोग के निर्देशों के चलते कोई भी प्रत्याषी या पार्टी प्लास्टिक के बिल्ले, बैनर, झण्डिया, पोस्टर, स्टीकर आदि नहीं बनवा सकता है। आयोग ने सभी जिलाधिकारियों को सख्त आदेश दिये हैं और सार्वजनिक सूचना भी दी है कि जो भी प्रकाशन या स्क्रीन प्रिंटिंग वाले प्लास्टिक की सामग्री छापेंगे उन्हें तुरन्त काली सूची में डाल दिया जायेगा और उन पर कड़ी कार्यवाही की जायेगी। ये चुनाव आयोग का सीधे जड़ पर प्रहार है। यह सर्वविदित है कि प्लास्टिक पर्यावरण के लिये घातक है चुनाव आयोग का ये फैसला पर्यावरण संरक्षण व सामाजिक जीवन के पक्ष में एक क्रान्तिकारी कदम ही कहा जायेगा।

13.4. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति

भारत में मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य आयुक्तों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य चुनाव आयुक्त का कार्यकाल 6 वर्ष या 65 साल, जो पहले हो होता है। जबकि अन्य चुनाव आयुक्तों का कार्यकाल 6 वर्ष या 62 वर्ष जो पहले हो होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त का सम्मान व वेतन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त को संसद द्वारा महाभियोग चला कर पदच्युत किया जा सकता है। मुख्य चुनाव आयुक्त राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद पर रहता है। वह राष्ट्रपति को अपना त्याग पत्र देकर पद मुक्त हो सकता है। उसके सेवाकाल में उसके वेतन व उन्मुक्तियों को कम नहीं किया जा सकता है।

13.4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार

मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार निम्न हैं-

1. वह संविधानों के प्रावधानों व संघीय व प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों के अनुसार संसद, राज्य व्यवस्थापिकाओं व स्थानीय स्वशासनों की मतदाता सूची तैयार व संशोधित करने का कार्य करता है।
 2. संविधान के प्रावधानों तथा संसद व राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कानूनों के अनुसार राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति संसद व राज्य विधान मण्डलों के चुनाव सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण, निर्देशन व नियंत्रण करता है।
 3. वह राष्ट्रपति या राज्यपाल को, जिसका सम्बन्ध हो, किसी सदन के सदस्य की अयोग्यता के बारे में परामर्श देता है।
 4. चुनाव सम्बन्धी अनियमितता के बारे में उठे सन्देहों व विवादों की जाँच के लिये चुनाव अधिकारी नियुक्त करने का दायित्व उसी का है।
 5. अपने दायित्वों का भलि-भॉति निर्वाह करने के लिये वह राष्ट्रपति को क्षेत्रीय निर्वाचन आयुक्त नियुक्त करने का सुझाव दे सकता है।
 6. वह राष्ट्रपति या राज्यपाल से निर्वाचन कार्य सम्पन्न कराने के लिये उचित मात्रा में कर्मचारी माँग सकता है।
 7. वह निर्वाचन के समय चुनाव चिन्ह सम्बन्धी विवादों को निपटाता है।
 8. वह मीडिया के सभी माध्यमों के द्वारा चुनाव की सभी गतिविधियों व निर्देशों को जनता तक पहुँचाता है।
 9. वह चुनाव क्षेत्र परीसीमन आयोग की लिपिकीय त्रुटियों को उनकी पूर्व अनुमति से ठीक कर सकता है।
 10. वह चुनाव आलेखों व चुनाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में जनमत को शान्त करने के लिये संकटग्रस्त क्षेत्रों की यात्रा कर सकता है। वह जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग कर सकता है।
 11. वह किसी भी व्यक्ति को न्यायिक निर्णय द्वारा आरोपित अयोग्यता से मुक्ति दे सकता है।
 12. वह विशेष परिस्थितियों में पुनः निर्वाचन का आदेश दे सकता है।
- संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त चुनाव आयोग का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। उसके कार्य व क्षेत्राधिकार उसे और भी अधिक महत्वपूर्ण व शक्तिशाली बनाते हैं।

लेकिन हम जानते हैं कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कोई भी कानून से उपर नहीं है। हर अधिकारी अपने काम के लिये जवाबदेह है जिससे निरंकुषता का खतरा नहीं रहता है। 1978 के 44वें संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को चुनाव आयुक्त से ये पूछने का अधिकार दिया गया कि क्या किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू रहते हुए चुनाव कराना सम्भव है? इस परामर्शिय मत के प्रावधान के कारण राष्ट्रपति व मुख्य निर्वाचन अधिकारी को राजनीति के अखाड़े में खींचा जा सकता है। संविधान सभा के सदस्य हृदय नाथ कुजूरू व सिब्बनलाल सक्सेना ने भी प्रधानमंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति को राजनीतिक रूप में प्रभावित होने की आशंका व्यक्त की थी। लेकिन यहाँ ध्यान देने वाली बात ये है कि आज तक प्रधानमंत्री के परामर्श से जो भी नियुक्तियाँ राष्ट्रपति ने की वे सभी पदाधिकारी सत्य निष्ठा व उच्च न्यायिक इमानदारी के धारक रहे हैं।

13.5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल

जैसा कि हम जानते हैं भारत विषाल बहुसंस्कृति, बहुभाषी, बहुरंग-रूपीदेश है। ऐसे विषालकायदेश में शान्ति पूर्ण चुनाव कराना एक बड़ी सफलता है। जिसे चुनाव आयोग बड़े संयम के साथ निभाता आ रहा है। लेकिन फिर भी कभी-कभी उसकी निष्पक्षता को लेकर सवाल खड़े होते रहे हैं। चुनाव आयोग पर अक्सर ये आरोप लगता रहा है कि वो सत्तारूढ़ दल का पक्ष लेता है। चुनाव आयोग पर पक्षपात करने का आरोप लगता रहा है। ये भी कहा जाता रहा है कि चुनाव आयोग सत्ताधारी दल से प्रभावित रहता है जिससे निष्पक्ष चुनाव नहीं हो पाते हैं। 1971 के बाद से चुनाव आयोग पर इस प्रकार के आरोपों की वृद्धि होती रही है। टी.एन.शेषन पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त जो अपनी इमानदारी व सत्यनिष्ठा के कारण दूसरों के लिये प्रेरणाश्रोत माने जाते हैं उनके विरुद्ध भी ये आरोप लगाया गया। जनता दल व अन्य दलों ने उनके विरुद्ध महाभियोग लाने का प्रयास भी किया। भले ही इसकी निष्पक्षता पर संदेह किया जाता रहा हो लेकिन पिछले चुनावों को देखते हुए ये कहा जा सकता है कि चुनाव आयोग की भूमिका अब तक पूर्णतया निष्पक्ष रही है। भारत में अब तक के चुनावों में हांलाकि चुनाव आयोग पर प्रत्यक्ष रूप से पक्षपात का कोई आरोप नहीं लगा है लेकिन चुनाव के दौरान उसमें कुछ दोष देखने में आये हैं। जिनको हम निम्न रूप में देख सकते हैं-

१. अल्पमत की जीत-भारत में जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिलते हैं वह विजयी होता है। लेकिन कई बार ऐसा देखने में आता है कि अन्य उम्मीदवारों को मिले मतों की कुल संख्या विजयी उम्मीदवार को मिल मतों की संख्या से अधिक होती है। कहने का तात्पर्य ये है कि विजयी उम्मीदवार को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं होता है लेकिन उसका मतप्रतिषत अधिक होने के कारण उसे विजयी घोषित किया जाता है।

२. चुनावों में धनखर्च की प्रवृत्ति- चुनाव आयोग ने धन खर्च को लेकर पार्टी व प्रत्याषी दोनों के लिये कड़े नियम बना दिये हैं लेकिन फिर भी बड़े पैमाने पर धन का खर्च किया जा रहा है। चुनावों में खर्च किये जाने वाले धन की कोई सीमा नहीं है। चुनाव आयोग ने चुनाव सामग्री को लेकर तो नियम कड़े किये है लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से आज भी चुनावों में बड़े स्तर पर धन लगाया जा रहा है। राजनीतिक दलों को अपने आय-व्यय का ब्यौरा फॉर्म 24-ए में भर कर देना पड़ता है। लेकिन अब भी सियासी दल इसको भरने में कतराते रहते हैं। कई राज्यों के बड़े नेताओं व मुख्यमंत्रियों ने इस फॉर्म को भरने में कोताही भरती है। वित्तीय वर्ष 2007-08 में भाजपा व कांग्रेस के कई नेताओं ने भी 24-ए नहीं भरा। इससे ये बात साफ हो गयी कि राजनीतिक चन्दे के नाम पर सियासी दलों में कुछ तो संदेहात्मक है।

३. मतदाताओं की निष्क्रियता- चुनाव आयोग स्वच्छ व निष्पक्ष चुनाव करने के लिये भरसक प्रयास कर रहा है लेकिन यह चुनाव आयोग की कमी ही कही जायेगी वो आज भी जनता को चुनाव में मतदान करने के लिये प्रेरित नहीं कर पाया है। दिन पर दिन मतदान प्रतिषत गिरता जा रहा है। अवैध रूप से मतदान का स्तर बढ़ा है। फर्जी मतदान की घटनाएं अक्सर चर्चाओं में आती है। मतों व मतदाताओं की खरीद फरोस्त आम बात है। इन घटनाओं को लेकर चुनाव आयोग सवालियों के घेरे में रहा है।

४. सत्ता प्राप्त दल द्वारा प्रशासन का गलत प्रयोग- चुनावों की घोषणा होते ही और अधिसूचना जारी होते ही सत्ता में बैठा हुआ दल सत्ता के दम पर प्रशासन का जम के फायदा उठाने की भरसक कोशिश करता है। प्रशासन का इच्छापूर्ति तक प्रयोग करता है। ऐसा भी देखा गया है कि सत्ता प्राप्त दल सरकारी तन्त्र को नवीन योजनाएं कार्यान्वित करने तथा चुनावों में अनियमितताएं करने के लिये दबाव बनाता है।

५. चुनाव में गुण्डा तत्वों का प्रयोग- किसी भी कीमत में चुनाव जीतने के लिये राजनीतिक लोग गुण्डा तत्वों का प्रयोग करने लगे हैं। बूथों पर कब्जा, जाली मत का प्रयोग करना, आतंक पैदा करना, मतपेटी को बदलने जैसी घटनाओं को अंजाम देने के लिये ऐसे तत्वों का प्रयोग राजनीतिक दल व उम्मीदवार खूब कर रहे हैं। इधर के कुछ वर्षों में एक और नई परम्परा का उदय हुआ है। अब राजनीति में अपराधियों का सीधे तौर पर प्रवेश हो गया है। अपराधी प्रवृत्ति के आदमी में ये समझ पैदा हुई है कि जिन नेताओं के लिये वो काम कर रहे हैं अंततः सत्ता का लाभ नेता ही लेता है। इसलिये अब अपराधियों ने इस लाभ को स्वयं लेने के लिये राजनीति में प्रवेश किया है। राजनीतिक दल पहले चुनावों में अपराध को मुख्य मुद्दा बना कर चुनाव लड़ते थे अब अपराधियों के चुनाव में आ जाने के कारण व राजनीति का अपराधीकरण होने के कारण ये मुद्दा राजनीतिक दलों ने अपने ऐजेंडे से बाहर कर दिया है। चौदहवीं लोक सभा में 200 से ज्यादा ऐसे सदस्य थे जिन पर अपराधिक मामले दर्ज थे। यदि अनुमान लगाया जाये तो देशभर में चुने गये प्रतिनिधियों में लगभग

20 प्रतिषत ऐसे प्रतिनिधि हैं जिनके खिलाफ अपराधी मामले दर्ज हैं। चुनाव आयोग राजनीति में बढ़ते अपराधियों की संख्या में नियंत्रण करने में लगभग असफल रहा है। चुनाव आयोग के लाख प्रयासों के बाद भी राजनीति में अपराधियों का प्रवेश होता रहा है। जिस कारण चुनावों की सत्यता संदिग्ध हुई है। राजनीति में सभ्य व भले लोगो, गरीब लोगों ने प्रवेश करना लगभग खत्म कर दिया है।

13.6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास

चुनावों में निरन्तर सुधार की आवश्यकता रही है। चुनाव को निष्पक्ष, स्वच्छ, भयमुक्त बनाने के लिये निर्वाचन आयोग व अनेकों समितियों ने गंभीर प्रयास किये हैं। जिनके परिणामस्वरूप आज भारत में चुनावों प्रक्रिया की स्थिति में सुधार हुआ है। चुनाव सुधारों को लेकर समय-समय पर निर्वाचन आयोग व गठित विभिन्न समितियों ने अपने सुझाव व निर्णय दिये। कुछ महत्वपूर्ण समितियों के सुझाव निम्नलिखित हैं।

1. तारकुण्डे समिति(1974)- सिटीजन फॉर डेमोक्रेसी संस्था द्वारा चुनाव प्रक्रिया में सुधारों को लेकर वी.एम.तारकुण्डे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। जिसने अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये-

- मतदान की आयु को 18 वर्ष करना। जिसे 61वें संविधान संशोधन द्वारा कर दिया गया।
- समिति ने दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि राजनीतिक दलों के आय-व्यय का हिसाब रखा जाये तथा चुनाव आयोग इसकी जाँच करे। यह सुझाव अब स्वीकार कर क्रियान्वित कर दिया गया है।
- प्रत्येक उम्मीदवार को सरकार मतदान कार्ड छाप कर निःशुल्क उपलब्ध कराये तथा प्रचार सामग्री को भी डाक से निःशुल्क भेजने की व्यवस्था हो।
- जो भी राजनीतिक दलों को धन दान करे ऐसी संस्था, व्यक्ति को आयकर से छूट मिलने का प्रावधान हो।
- ऐसी स्थिति के आने पर जब लोकसभा या विधानसभा भंग हो जाये, सरकार कामचलाऊ तरीके से काम करती रहे जब तक की चुन कर सरकार नहीं बन जाती। कामचलाऊ सरकार अधिसूचना जारी होने के बाद व सरकार बनने तक कोई महत्वपूर्ण निर्णय न ले।
- ऐसे व्यक्ति जो मंत्री पद धारण किये हुए हैं चुनाव के समय वो सरकारी वाहनों का प्रयोग न करें और न ही सरकारी धन व तंत्र का प्रयोग करें।

- लोक सभा व विधान सभा के चुनावों में नामांकन शुल्क 2000 रूपया व 1000 रूपया किया जाये।

2.श्यामलाल शकधर व दिनेश गोस्वामी समिति- तत्कालीन चुनाव आयुक्त श्यामलाल शकधर ने 1981 में पहली बार मतदाताओं को परिचय पत्र देने की सिफारिश की। इसे हाथों हाथ स्वीकार कर मतदाताओं को परिचय पत्र देने पर जोर दिया जाने लगा। ये महत्वपूर्ण सुझाव था। शकधर के इस सुझाव के कारण ही आज प्रत्येक मतदाता का परिचय पत्र होता है। इस सुझाव ने जाली मतदान में बड़ी सीमा तक अंकुष लगा दिया। इसके बाद दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में एक और समिति का गठन किया गया जिसने अपनी सिफारिशें देते हुए कहा कि

ऐसे मतदान क्रेन्द्र जिनके बूथों पर कब्जा किया गया हो पुनः मतदान कराया जाये - भारत बहुभाषीय, बहुजातीयदेश है इसलिये प्रत्येक समुदाय को चुनाव लड़ने का मौका दिया जाना चाहिए। जिससे ऐसा तबका जो मुख्यधारा में नहीं आ पा रहा है उस समाज का व्यक्ति होने से उस समाज में राजनीतिक चेतना का विकास होगा और वह मुख्य धारा से जुड़ेगा। इसके लिये सीटों के आरक्षण हेतु चक्राकार पद्धति अपनायी जाये।

चुनाव से सम्बन्धित याचिकाओं को शीघ्र निस्तारित किया जाये।

ऐसा प्रयास किया जाये कि मतदान इलेक्ट्रॉनिक मशीन से हो।

जो स्थान किन्ही कारणोंवश रिक्त हो गया हो या रह गया हो उसे स्थान पर छः महीने की अन्दर चुनाव करा लिये जायें। साथ ही मतदाताओं को परिचय पत्र देने की सिफारिश दिनेश गोस्वामी समिति द्वारा भी की गयी।

3. के.सन्थानम समिति व टी.एन.शेषन की सिफारिशें- के. सन्थानम की अध्यक्षता में गठित समिति ने चुनाव को लेकर महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि चुनाव में भाग लेने वाले प्रत्याषी के लिये न्यूनतम शैक्षिक अर्हता निर्धारित की जानी चाहिए। राजनीतिक दलों का पंजीकरण व संविधान को लेकर स्पष्ट नियम बनाये जायें। निर्वाचन अधिकारियों को निर्वाचन आयोग के अधीन किया जाये तथा दोशी निर्वाचन अधिकारियों पर अनुषासनात्मक कार्यवाही की जाये तथा इसका अधिकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हो। निर्वाचन नामावलियों को हमेषा अद्यतन रखा जाये तथा समय-समय पर निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया जाये। चुनाव सुधारों को लेकर तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उन्होने कहा कि- लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों

के उम्मीदवारों के लिये नामांकन शुल्क क्रमशः रूपया 5000 तथा 2500 किया जाये। साथ ही उन्होने ये भी सुझाव दिया कि लोक सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 प्रस्तावकों व 10 समर्थकों का होना आवश्यक हो तथा राज्य विधान सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 समर्थकों का होना आवश्यक व अनिवार्य हो। इसके साथ ही एक उम्मीदवार एक ही स्थान चुनाव लड़े। एक उम्मीदवार के दो स्थानों से चुनाव लड़ने में प्रतिबन्ध हो। चुनाव प्रचार केवल 14 दिन तक ही किया जाये। मतदाताओं को पहचान पत्र जारी किये जाये। बूथों पर कब्जा व मतपेटी छीनने व अनाधिकार मतदान करने वालों को संज्ञेय अपराधों की श्रेणी में रखा जाये। आचार संहिता का पालन न करने वाले प्रत्याषियों को 5 वर्ष के लिये अयोग्य घोषित किया जाये।

4. इन्द्रजीत समिति-1998 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ सांसद इन्द्रजीत गुप्त की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपने सुझाव (अगस्त 2000) में चुनाव सुधारों को लेकर कहा कि राजनीतिक दलों को चुनाव में व्यय करने हेतु धनराशि सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जानी चाहिए। चुनाव खर्चों के लिये एक सार्वजनिक कोष स्थापित किया जाये। जिसमें सरकार प्रतिवर्ष 600 करोड़ रूपये की राशि का योगदान करे। इतनी ही राशि का योगदान राज्यों से भी होना चाहिए।

5. वर्तमान मुख्य चुनाव आयुक्त कुरैषी के सुझाव- वर्तमान मुख्य निर्वाचन आयुक्त शाहबुद्दीन याकूब कुरैषी ने सुझाव देते हुए कहा कि आदर्श आचार संहिता लागू होने के साथ ही जनमत सर्वेक्षण पर भी पाबंदी लगायी जाये। कुरैषी ने कहा कि जिस तरह से चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों के पंजीकरण का अधिकार है उसी तरह से फर्जी दलों को अमान्य करने का भी अधिकार चुनाव आयोग को होना चाहिए। उन्होने कहा कि भारत में वर्तमान में 1200 दल हैं। इसमें से 150 सक्रिय राजनीति में हैं। जबकि शेष फर्जी हैं। धनबल व पेड न्यूज पर लगाम लगायी जाये। उन्होंने सुझाव देते हुए कहा कि अपराधिक रिकार्ड वाले लोगों को चुनाव लड़ने से रोका जाये। मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने ये भी सुझाव दिये कि चुनाव में सरकारी धन का प्रयोग नहीं होना चाहिए। आयोग के अध्यक्ष का मानना है कि यदि ऐसा किया जाता है तो राजनीतिक दलों को अधिक पैसा मिलेगा। जिससे धन का दुरुपयोग बढ़ेगा। उन्होने सुझाव दिया कि उम्मीदवारों की अयोग्यता की अवधि को तीन से बढ़ा कर पाँच साल कर दिया जाये। साथ ही उन्होंने सुझावों में ये भी कहा कि चुनाव आयोग मतदाताओं को पर्ची बाँटेगा जिसमें चुनाव चिन्ह होंगे। ऐसा शीघ्र ही पं. बंगाल में होने वाले चुनावों में किया जायेगा। ऐसा करने के पीछे प्रमुख कारण ये है कि चुनाव से 48 घन्टे पहले जो राजनीतिक दल पर्चीयाँ बाँटते वक्त मतदाताओं को उपहार व धन देने का प्रयास करते हैं उन पर नियंत्रण किया जा सकेगा। शीघ्र होने वाले पं. बंगाल, तमिलनाडू, केरल, असम, पांडेचेरी में विधान सभा चुनावों में यही प्रणाली अपनायी जायेगी।

13.7 सारांश

आज भारत में चुनाव एक चुनौती के रूप में देखे जाते हैं। आजादी से आज तक चुनाव की प्रणालियों में परिवर्तन आया है। पहले चुनाव लोकतंत्र के सबसे बड़े पर्व की तरह देखे जाते थे। मेले की तरह चुनावों में उत्साह देखा जाता था। हर मतदाता चुनावों में बड़-चढ़ कर भागेदारी करता था। लेकिन आज चुनाव व मतदाता दोनों में परिवर्तन आया है। चुनावों में प्रवेश करते अपराधी तत्वों के कारण चुनाव आयोग भी सख्त हुआ है। मतदान का प्रतिषत गिरा है। इन्हीं सब चर्चाओं को लेकर ये अध्याय हमने पढ़ा। इस इकाई से हमने ये जानने व समझने का प्रयास किया कि चुनाव आयोग क्या है वो कैसे काम करता है। उसकी कार्य प्रणाली क्या है। चुनाव आयोग का सबसे बड़ा मुखिया उसका अध्यक्ष होता है जिसे मुख्य निर्वाचन आयुक्त कहा जाता है। भारत में चुनावों की चुनौतियों को देखते हुए मुख्य निर्वाचन आयुक्त का भी दायित्व बढ़ा है। इस इकाई में हमने मुख्य निर्वाचन आयुक्त को कैसे चुना जाता है उसके क्या कार्य व शक्तियाँ होती हैं इस पर विस्तृत चर्चा की। भारत एक विशालदेश है जहाँ कई भाषा व संस्कृति के लोग एक साथ निवास करते हैं। जिसके चलते चुनावों को सफलता तक ले जाना कठिन काम होता है। इसके लिये चुनाव प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किये जाते रहे हैं। जिसके लिये कई समितियों व विद्वानों ने अपने सुझाव दिये हैं जिससे चुनाव प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किया जाता रहा है। इस पर भी इस इकाई में विस्तृत चर्चा की गयी। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निर्वाचन आयोग को जानने के लिये यह इकाई लाभप्रद होगी।

13.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. .भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
2. राजनीति चिंतन की रूपरेख -ओ.पी.गाबा
3. .संपादक-राजकिषोर -भारत का राजनीतिक संकट
4. .सुभाष कष्यप-हमारी संसद
5. .सुभाष कष्यप-हमारा संविधान

१३.११ सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. .बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपालिका
2. .एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

13.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में निर्वाचन आयोग की भूमिका व कार्य प्रणाली को समझाएं?
2. .निर्वाचन आयोग शक्तिषाली है इस पर अपने विचार दीजिए?

-
3. आज निर्वाचन आयोग आम आदमी की हर समस्या के साथ खड़ा है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?
 4. मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति व उसकी शक्तियों को समझाइये? बताएं कि उसे पदच्युत कैसे किया जा सकता है?
 5. भारत में चुनाव एक चुनौती बनते जा रहे हैं जिस कारण चुनाव आयोग भी सख्त होता जा रहा है। इस पर अपने विचार लिखिये?
 6. भारत में चुनाव सुधारों को लेकर लेख लिखिये?

इकाई-14 : दल-बदल की राजनीति

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 राजनीतिक दल-बदल का अर्थ, प्रकृति, प्रकार व प्रेरणाश्रोत

14.4 भारत में दल-बदल की राजनीति

14.4.1 1973 व 1978 के दल बदल विरोधी विधेयक

14.4.2 1985 का दलबदल रोक अधिनियम

14.4.3 1985 का दलबदल रोक अधिनियम की आलोचना

14.6 सुधार सम्बन्धी सुझाव

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

वास्तव में दल-बदल विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक जटिलताओं की उपज है। जिसके अंतर्गत हम कार्य करते हैं तथा इसे एक दुष्कर सामाजिक वास्तविकता के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इसकी स्तुति एवं निन्दा से कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। हम किसी अन्य स्थान से सहायता नहीं माँग सकते, या ऐसे निष्चित सिद्धान्तों व सूत्रों के संदर्भ में सोचना भी गलत होगा जो विभिन्न स्थानों या समयों पर सार्थक हुए होंगे। इस सर्व-व्यापक दल-बदल और प्रति दलबदल के सही कारण ऐतिहासिक, संस्थागत व प्रयोजनात्मक एवं कभी-कभी इन तीनों का समिश्रण है।

-सुभाष कश्यप

लोकतांत्रिक सरकार के संचालन के लिये राजनीतिक दल अपरिहार्य होते हैं। वे राजनीतिक व्यवस्था में हित-स्वरूपीकरण और हित-एकीकरण का प्रमुख कार्य करते हैं। राजनीतिक दल जनता को राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी के लिये प्रोत्साहित करते हैं। व्यापक मताधिकार के युग में वे जनता के निकट संबंध स्थापित करते हैं। वे चुनाव लड़ते हैं और राजनीतिक दलों के सदस्य विजयी हो कर सरकार का गठन करते हैं। सत्ता प्राप्त करने के लिये प्रत्येक राजनीतिक दल व उसके सदस्य पूरी ताकत लगाते हैं। इधर के कुछ वर्षों में राजनीतिक दलों के सदस्यों में पद, सत्ता पाने के लिये अपने दलों से अलग हो कर दूसरे दलों में जा कर पद व सत्ता का लाभ लेने की प्रवृत्ति भी प्रबल हुई है। इसे दल-बदल की राजनीति का नाम दिया गया है। सत्ता प्राप्त करने, सरकार गठित करने के लिये राजनीतिक दल व दलों के सदस्य मौका मिलने पर इसका भरपूर लाभ ले रहे हैं।

दल-बदल आज भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का प्रमुख लक्षण बनता जा रहा है। इस प्रथा का आरंभ स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद के वर्षों में ही देखने को मिलता है। लेकिन चतुर्थ आम चुनाव के बाद यह प्रथा बहुत अधिक प्रचलन में आ गयी। चौथे आम चुनाव में कांग्रेस की लोकप्रियता कम हो जाने के कारण बहुत से कांग्रेसी सदस्यों ने खुल्लेआम कांग्रेस को छोड़ दिया। पदों को पाने के लिये सौदेबाजी शुरू कर दी और सत्ता में लाभ के पद में बने रहने के लिये दूसरे दल की सदस्यता ले ली और दूसरे दल में लाभ के कारण शामिल हो गये। हरियाणा जैसे प्रान्त में दल के सदस्यों ने इतनी जल्दी-जल्दी अपनी प्रतिष्ठाएं बदली प्रारंभ की कि वहाँ स्थिर सरकार को चलाना असंभव हो गया। दल-बदल के कारण राजनीति में आ रही अस्थिरता के चलते सभी राजनीतिक दल चिन्तित हुए और राजनीतिक दलों ने इस पर नियंत्रण लगाने के प्रयास किये। सभी दल इस मुद्दे पर एक मंच पर आये लेकिन कोई सहमति नहीं बन पायी। अंततः 1985 में संविधान में 52वां संशोधन कर दल-

बदल पर रोक लगायी गयी। यद्यपि आज दल-बदल निषेध अधिनियम लागू है लेकिन प्रकारान्तर से यह प्रथा अभी भी जारी है।

14.2 उद्देश्य

पिछली इकाई में हमने भारत में दलीय व्यवस्था को जाना। इस इकाई में हम भारत में दलीय व्यवस्था में के अन्तर्गत व्याप्त दल-बदल की राजनीति को समझेंगे। इस इकाई के द्वारा हम जान पायेंगे कि-

1. दल बदल कानून क्या है।
2. भारत में दल-बदल की राजनीति का प्रवेश कब से हुआ।
3. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में यह एक कुरीति क्यों है।
4. भारत में दल-बदल की राजनीति पर अंकुश लगाने के लिये क्या प्रयास किये गये।
भारतीय राजनीतिक व्यवस्था दल बदल के कारण होने वाली हानि व लाभा
5. इस इकाई में हम यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि दल परिवर्तन के कारण क्या
6. हैं।

14.3 राजनीतिक दल-बदल का अर्थ, प्रकृति, प्रकार व प्रेरणाश्रोत

1967 के चतुर्थ आम निर्वाचन के अप्रत्याशित परिणामों ने भारत के राजनीतिक विकास में एक ऐतिहासिक दौर की शुरुआत की जिसे कई नामों से पुकारा गया। जैसे- अस्थिरता की राजनीति, विभ्रम की राजनीति, बचाव की राजनीति, संक्रमण की राजनीति और सामान्य रूप से इसे दल-बदल की राजनीति के नाम से जाना गया। मुख्यतः दल-बदल की अवधारणा राजनीतिक सत्ता के लिये सिद्धान्तहीन होड़ के रूप में सामने आयी। दल-बदल का सहज अर्थ अपने दायित्वों को त्यागना या उससे मुकरना है। किन्तु राजनीति में विविध स्थितियों में इसके विविध रूप होते हैं। जैसे- दल का बदलना, दल के प्रति वफादारी में बदलाव होना, जिस दल के अधीन चुनाव लड़े उस दल का त्याग, सदन के भीतर पाला बदलना, किसी दूसरे दल में शामिल होने के लिये अपने दल को छोड़ना फिर एक निर्दलीय की तरह रहना या एक नया दल या गुट बनाना, कोई दल बनाना और फिर उसी में शामिल होना आदि। यानि अपना रूख बदलते रहना ही दल-बदल है। हालांकि अभी तक दल-बदल की सार्वभौमिक और सर्वस्वीकृत परिभाषा नहीं बन पायी है। किन्तु सुभाष कश्यप की परिभाषा बहुत मात्रा में इस अवधारणा का प्रतिनिधित्व करती है। उनके अनुसार- दलबदल का मतलब राजनीतिक प्रतीक का बदलना है, जिसमें निम्न मामलें शामिल माने जाने चाहिए जैसे- 1. एक दल के टिकट पर विधायक का चुना जाना और फिर उस विधायक दल को छोड़ कर अन्य दल में चला जाना। 2. दल से त्याग पत्र देकर अपने को निर्दलीय घोषित कर देना। 3. एक निर्दलीय के रूप में चुनाव जीत कर किसी विधायक दल में शामिल हो जाना। यदि कोई विधायक किसी मूल मामले

में दल से त्यागपत्र दिये बिना अपने दल के विपरीत मत देता है तो उसे किसी भी रूप में दल बदल से कम नहीं माना जाना चाहिए।

सुभाश कष्यप की इस परिभाषा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजनीतिक दल बदल निम्न कारणों से हो सकता है। जैसे-

- एक दल को छोड़ कर दूसरे दल में शामिल होना।
- एक दल को छोड़ना दूसरे को अपनाना और फिर अपने मूल दल में आ जाना।
- अपने दल को छोड़ कर निर्दलीय बन जाना।
- दल छोड़ देना परन्तु एक उदार नेता की तरह उसका समर्थन करते रहना।
- अन्य दल बनाने के लिये दल त्यागना।
- दल छोड़ कर दूसरे दल की स्थापना करना तथा फिर उसे मूल दल में मिला देना या किसी अन्य दल में विलय करना।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दल बदल की प्रक्रिया उसी समय प्रारम्भ हो जाती है जब कोई व्यक्ति चाहे किसी भी उद्देश्य से अपनी राजनीतिक निष्ठा बदलता है।

14.4 भारत में दल-बदल की राजनीति

राजनीतिक अर्थों में दल-बदल(डिफेक्शन) को अर्थ किसी व्यक्ति का उस राजनीतिक दल को जिसके टिकट पर वह निर्वाचित हुआ है, छोड़कर किसी अन्य दल में सम्मिलित हो जाना है। दल विच्छेद की इस प्रक्रिया को 'फ्लोर क्रासिंग' भी कहा जाता है। फ्लोर क्रासिंग शब्द इंग्लैंड से निकल कर आया है। इंग्लैंड में विरोधी दल व सत्ताधारी दल एक दूसरे के आमने-सामने बैठते हैं और यदि उनमें से किसी दल का सदस्य एक तरफ से दूसरी तरफ जाता है तो उसे बीच के रास्ते को पार करके जाना होता है। इस प्रक्रिया को वहाँ फ्लोर क्रासिंग कहा जाता है। भारत में दल परिवर्तन या दलबदल का स्वरूप इंग्लैंड की तरह न होकर थोड़ा भिन्न है। भारत में दल परिवर्तन की प्रवृत्ति केवल विरोधी दल से सत्तारूढ़ दल व सत्तारूढ़ दल से विरोधी दलों के बीच ही नहीं है, बल्कि स्वयं विरोधी दलों या सत्तापक्ष के दलों के अन्तर्गत सदस्य एक दल से दूसरे दल में मिलते व प्रथक होते रहते हैं। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे परिवर्तनों का उद्देश्य सैद्धान्तिक मतभेद न हो कर राजनीतिक स्वार्थ होता है। भारत में दल परिवर्तन के मामले 1967 से मिलते हैं लेकिन 1967 के आम चुनावों के बाद दल परिवर्तन इतनी तेजी से होना शुरू हुआ कि इसने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में गंभीर समस्या पैदा कर दी। चौथे आम चुनाव के बाद कांग्रेस दल के एकाधिकार का लगभग-लगभग अंत हो गया। इस समय जिन 16 राज्यों में चुनाव हुए आठ में कांग्रेस पार्टी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी। ये राज्य

बिहार, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश व पश्चिम बंगाल थे। इनमें से छः राज्यों में विरोधी दलों ने न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त हो कर सरकार का गठन किया। कुछ राज्यों में कांग्रेस को सीमान्त बहुमत मिला और येन केन प्रकारेण कांग्रेस ने मंत्रिमंडल का निर्माण किया। ऐसे राज्यों में विरोधी दलों ने सामुहिक प्रयत्न कर कांग्रेसी सरकारों को अपदस्थ करने का अभियान चलाया। चुनावों के तुरन्त बाद उत्तर-प्रदेश, हरियाणा व मध्यप्रदेश में कांग्रेस दल न मंत्रीमण्डल का निर्माण किया। अगले कुछ महिनों बाद कांग्रेस के भीतर तोड़-फोड़ के फलस्वरूप कांग्रेस के मंत्रीमण्डल के स्थान पर विरोधी दलों की मिश्रित सरकारों का गठन हुआ। प्रारम्भिक तौर पर सभी विरोधी दल समझौते के तहत सरकार बनाने को तैयार हुए, इसके पीछे उनका सीधा उद्देश्य यह था कि कांग्रेस को किसी भी हाल में सरकार बनाने का मौका न दिया जाय। और जिन राज्यों में कांग्रेस की सरकारों का निर्माण हो गया उन्हें गिराया जाये। इन सब उद्देश्यों की पूर्ती के लिये दलबदल को साधन के रूप में अपनाया गया। जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसी स्थिति आयी जब देश के 17 राज्यों में से 9 राज्यों में गैर-कांग्रेसी-मिश्रित सरकारों का निर्माण हुआ। यह भारतीय राजनीति का सबसे एतिहासिक परिवर्तन था। दूसरी ओर ये भी कहा जा सकता है कि भारत में दल बदल की प्रक्रिया का उद्भव भारत की विषाल राजनीतिक पार्टी कांग्रेस के पतन से ही तीव्र हुआ। उसके उत्थान व पतन से राजनीतिक दल बदल के बाजार में उतार चढ़ाव आते रहे। भारी संख्या में राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक प्रतिबद्धता के बदलते रहने के कारण देश की राजनीति में अस्थिरता आने लगी। विशेषज्ञों ने इसके कई कारण बताये-

1. भारत में राजनीतिक दलों, विशेषकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास व उसकी प्रकृति।
2. सभी दलों में वृद्ध लोगों का नेतृत्व।
3. राजनीतिक दलों में सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण का अभाव।
4. दलों की सदस्यता, उनके लक्ष्यों व गतिविधियों में जन-भागीदारी का अभाव तथा चुने हुए प्रतिनिधियों की दलबदल संबंधी गतिविधियों के प्रति जन उपेक्षा।
5. दलों के अन्तर्कलह व उनमें गुटबंदी।
6. राज्य विधान सभाओं में अस्थायी या कम बहुमत वाली सरकारें तथा निर्दलीय सदस्यों की भूमिका।
7. साधारण विधायक व दल के स्वामी के मध्य व्यक्तित्व का टकराव।
8. पद, धन, स्तर आदि का लालच या उसका अभाव।

9. मंत्री व विधायक के वेतन, भत्ते, स्तर व अन्य उपलब्धियों में भारी अन्तर।

10. राजनीतिक दलों में शक्तिशाली दबाव समूहों व धड़ों की भूमिका।

11. 1967-69 के मध्य कांग्रेस दल द्वारा सत्ता में अन्त्यों की भागीदारी न बनाने की प्रवृत्ति।

12. भारतीय राजनीति में व्याप्त ढोंग, गरीबी व अज्ञानता से भरे देश में झूठे विचारों व राजनीतिक वास्तविकताओं के बीच बड़ी खाई।

इन सभी कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक दलबदल में व्यक्तिगत लाभ की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। राजनीतिक प्रतिबद्धता बदलने का प्रमुख कारण केवल स्वार्थ है। इसके अलावा कुछ भी नहीं। अतः दलबदल करने वाला व्यक्ति राजनीतिक अपराधी है जिसे जनता का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं है। 1971 में गवर्नरों की कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा- बहुत संख्या में दल बदल होने का कारण यह है कि इससे पुरस्कारों, पदों या राजकीय पक्षपात के आश्वासन मिलते हैं। यही वह परिस्थिति है जो अनुशासनहीनता व राजनीतिक भ्रष्टाचार को प्रत्यक्षतः उकसाती है।

14.4.1 1973 व 1978 के दल बदल विरोधी विधेयक

चतुर्थ आम चुनावों के बाद की घटनाओं के संदर्भ में, भारत में राजनीतिक दल बदल की समस्या ने गंभीर रूप ग्रहण कर लिया। इस चुनाव के बाद कुछ ही महीनों में 438 विधायकों ने अपना दल बदला। 210 दलबलूओं में से 116 को मंत्रीमण्डल में स्थान मिला। 1967 से 1973 के बीच 2,700 विधायकों ने दलबदल कर 45 राज्य सरकारों को गिराया। उस समय देश के 60 प्रतिशत से अधिक विधायकों ने दलबदल में भाग लिया। जिस कारण जून 1967 में शिमला में हुए सचेतक अधिवेशन (विहप कांफ्रेंस) में एक प्रस्ताव पारित हुआ। जिसमें कहा गया कि- सम्मेलन सम्पूर्ण देश में व्याप्त दलबदल की घटनाओं व उनसे उत्पन्न स्थिति पर गंभीर चिन्ता व्यक्त करता है। सम्मेलन इसे नैतिक दृष्टि से अनुचित समझता है तथा इस अनैतिक कार्य को दुबारा चुनाव लड़कर दलबदलुओं ने भी मान्यता दी है।

सभी दलों से यह अपेक्षा की गयी कि वे इसकी गंभीरता को समझे व एक सर्वसम्मत संहिता बनायें जो सभी को स्वीकार्य हो एवं नैतिक रूप से उन्हें वाध्य करे। तदोपरान्त 8 दिसम्बर 1967 को लोक सभा में एक उच्च स्तरीय समिति बनाने का प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि व संवैधानिक विशेषज्ञ रखे गये जो दलबदल पर विचार कर संबंधित सुधारों के सुझाव देंगे। इस प्रस्ताव के अनुसार तत्कालीन गृह मंत्री यशवंत राव चव्हाण की अध्यक्षता में प्रसिद्ध न्यायविदों, राजनेताओं व सार्वजनिक नेताओं सहित एक समिति का गठन किया गया। इस समिति के पास

सबसे मुस्किल कार्य दलबदल की सर्वसम्मत परिभाषा करना था। बड़ी मशक्कत के बाद समिति के एक सदस्य जय प्रकाश नारायण द्वारा दी गयी परिभाषा पर सहमति बनी। जिसमें कहा गया था कि- यदि संसद या राज्य विधान मण्डलों का कोई निर्वाचित सदस्य जिसे किसी राजनीतिक दल का चुनाव चिन्ह मिलता है, चुने जाने के बाद अपना दल स्वेच्छा से त्याग करता है, या उससे संबंध तोड़ता है तो उसे दल बदल माना जायेगा बशर्ते उसका यह कार्य सम्बन्धित दल के किसी निर्णय का परिणाम न हो।

ये बात पहले ही कही जा चुकी है कि उपर दी गयी परिभाषा बड़ी मशक्कत के बाद सामने आयी और सभी द्वारा स्वीकारी गयी। लेकिन धीरे-धीरे इस परिभाषा को लेकर भी गतिरोध बढ़ने लगा। ये परिभाषा भी सभी को मान्य न हो सकी क्योंकि-

प्रथम-इसमें केवल निर्वाचित विधायकों से सम्बन्धित राजनीतिक दल बदल को लिया गया था। राजनीतिक दल के सदस्य जो संसद या राज्यों के विधान मण्डलों में नहीं हैं इस परिभाषा के दायरे में नहीं आ सके। द्वितीय-इस परिभाषा में ऐसा विधायक का दल बदल नहीं माना गया जिसे उसके दल ने किसी कारण निष्कासित कर दिया हो व तदोपरान्त उसने किसी अन्य दल की सदस्यता ग्रहण कर ली है। इससे दल बदल की आकांक्षा करने वाला सदस्य जान बूझ कर अपने दल का अनुशासन तोड़ सकता था जिससे वह दल से निकाला जाये व उसका वांछित लक्ष्य पूरा हो सके। तृतीय- इस परिभाषा में ऐसी स्थिति में प्रकाश नहीं डाला गया जिसमें पूरा दल या गुट किसी अन्य दल या गुट में विलय कर ले। चतुर्थ-इसमें वह विधायक भी शामिल नहीं किया गया जो जानबूझ कर संसद में अनुपस्थित रह कर मतदान में भाग नहीं लेता। पंचम-इसमें उन निर्दलीय व्यक्तियों के बारे में कुछ नहीं कहा गया जो राजनीतिक हवा के अनुसार अपना रूख बदल लेते हैं। अतः यह कहा जा सकता था कि इस सरकारी व्याख्या में इतनी खामिया थीं कि इससे वांछित विधायक का उद्देश्य की समाप्त हो गया।

कुछ संशोधनों सहित सरकार ने चवहाण समिति के सुझावों को क्रियान्वित करने के लिये 16मई 1973 को लोकसभा में राजनीतिक दलबदल विरोधी विधेयक(32वां संविधान संशोधन) प्रस्तावित किया। इसमें प्रावधान किया गया कि विधायक को संसद के किसी सदन या विधान सभा व परिशद के सदस्य बने रहने के अयोग्य घोषित किया जा सकेगा यदि वह-

- दल के उम्मीदवार के रूप में किसी सदन का सदस्य चुने जाने के बाद या उस दल के सदस्य होने के बाद उस दल की सदस्यता त्याग देता है।
- यदि कोई सदस्य पूर्व अनुमति के बिना सदन से अनुपस्थित रहता है या अपने राजनीतिक दल व उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति के आदेशों के विरुद्ध मत देता है।

विधेयक में आगे यह भी कहा गया था कि उपरोक्त शर्तें वहाँ लागू होंगी जहाँ विधेयक को दल में फूट पड़ जाने के कारण दल की सदस्यता से त्याग पत्र देना पड़े। उसमें यह भी प्रावधान किया गया था कि ऐसा कोई विवाद जो सम्बन्धित दल या व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जायेगा अंतिम रूप से राज्य के मामले में राज्यपाल तथा केन्द्र के मामले में राष्ट्रपति द्वारा निर्णित होगा।

इस दलबदल विरोधी विधेयक में कई कमियाँ थीं। प्रथम- यह विधेयक दलबदल की स्पष्ट परिभाषा करने में असफल था। द्वितीय- इस विधेयक द्वारा सम्बन्धित दल को राज्य के अध्यक्ष से प्रार्थना करने का अधिकार दिया गया। पर यदि कोई पीड़ित पक्ष राष्ट्रपति या राज्यपाल जिसका सम्बन्ध हो के पास न जाये तो क्या वह राजनीतिक दलबदल नहीं होगा? तृतीय- फूट पड़ जाने की परिस्थिति में दलबदल की सम्भावना को ही दूर कर दिया गया गया। चतुर्थ- केन्द्र पर राष्ट्रपति व राज्यों में राज्यपालों को इस सम्बन्ध में विस्तृत अधिकार दे कर उन्हें दलीय राजनीति में अनुचित रूप से घसीटा गया। पंचम- इस विधेयक से सदन के सदस्य की अपने मतदान के संदर्भ में स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया गया और इस तरह संविधान के तृतीय भाग में वर्णित मौलिक अधिकारों का ही उलंघन किया गया। कुल मिला कर इस विधेयक का भी विरोध किया गया।

अपने चुनाव घोशणापत्र में किये गये महत्वपूर्ण वायदों को क्रियान्वित करने के लिये जनता सरकार ने अप्रैल 1978 में एक विधेयक रखा जिसमें संविधान के अनुच्छेद 102 व 109 को परिवर्तित कर संसद व राज्य व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों की योग्यताओं को पुनर्निर्धारित किया गया। इसमें कहा गया कि-किसी व्यक्ति को संसद या किसी सदन या राज्य व्यवस्थापिका के सदस्य बने रहने के अयोग्य माना जायेगा यदि (1) वह स्वेच्छा से अपनी मूल राजनीतिक दल की सदस्यता को त्याग दे। (2) वह सदन में अपने दल के आदेशों या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति के आदेशों की उपेक्षा पर उसकी पूर्व अनुमति के बिना दल के विरुद्ध मतदान करे। संसद के किसी सदन या राज्य व्यवस्थापिका के सदस्यता के लिये निर्वाचित सदस्य का वही दल माना जायेगा जिसके चुनाव चिन्ह पर वह जीत कर आया है या जीतने के बाद उसने सबसे पहले किसी दल की सदस्यता ग्रहण कर ली है। इस सम्बन्ध पर उठे किसी विवाद पर पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम होगा। इस निर्णय को न्यायपालिका में नहीं ले जाया जा सकता है यद्यपि पीठासीन अधिकारी को अपने निर्णय देने के पूर्व जाँच करने का पूर्ण अधिकार होगा।

दुर्भाग्यवश जनता सरकार के सभी प्रयास व्यर्थ रहे क्योंकि 48वें संविधान संशोधन विधेयक को 28 अप्रैल 1978 को लोकसभा में प्रस्तुत करते ही जनता दल के कुछ वरिष्ठ सदस्यों ने इसका तीव्र विरोध किया। अतः इस विधेयक को वापस ले लिया गया।

14.4.2 1985 का दलबदल रोक अधिनियम

जून 1975 में आपातकाल लागू होने के बाद राजनीतिक दलबदल की बाढ़ सी आ गयी। अपने राजनीतिक संगठनों में अपना कोई भविष्य न देख कर भारतीय लोकदल, जनसंघ, संगठन कांग्रेस, समाजवादियों तथा अन्य क्षेत्रीय दलों के विधायकों में शामिल होने की होड़ लग गयी। किन्तु फरवरी 1977 में कांग्रेस से भारी निकासी की शुरुआत हुयी जब जगजीवन राम के नेतृत्व में प्रजातांत्रिक कांग्रेस की स्थापना हुयी। श्रीमती इन्दिरा गॉंधी के अधिनायकवादी व स्वेच्छाचारी वर्ताव से क्षुब्ध होकर कई प्रमुख कांग्रेसी नेताओं(हेमवतीनंदन बहुगुणा, के.आर.गणेश व नंदिनी सत्यपथी आदि) ने कांग्रेस छोड़कर कांग्रेस फार डेमोक्रेसी में शामिल होने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप जगजीवन राम का यह व्यक्तिगत संगठन एक शक्ति के रूप में उभरा। इस दल की आलोचकों द्वारा तीखी टिप्पणी की गयी। इसे 'दलबदलुओं की कांग्रेस' कहने लगे। जनता पार्टी के पतन के साथ ही इस स्वार्थपरक व अवसरवादी दल का पतन हो गया। हरियाणा में 1982 में हरभजनलाल द्वारा सामुहिक दल बदल, 1984 में गुलषाह द्वारा कश्मीर में दलबदल के बाद सरकार का गठन, और 1984 में ही आन्ध्र प्रदेश में भास्कर राव द्वारा दलबदल के बाद सरकार का गठन भारतीय राजनीति के लिये अभिषाप सिद्ध हुआ।

यद्यपि पूर्व के सभी प्रयास असफल रहे, राजीव गॉंधी की सरकार ने आठवीं लोकसभा के पहले ही सत्र में विपक्षी दलों का सहयोग लेकर दलबदल पर अंकुश लगाने का सराहनीय प्रयास किया। संसद के उद्घाटन भाषण में महामहीम राष्ट्रपति ने इसका कुछ संकेत दे दिया था। जनवरी 1985 में दोनों सदनों से पारित हो कर यह चर्चित विधेयक 52वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में सामने आया। इसने भारतीय संविधान में 10वीं अधिसूची बढ़ायी। इसमें निम्न प्रावधान हैं -

1. निम्न परिस्थितियों में संसद या राज्य विधान मण्डल के सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जायेगी।

क-यदि वह स्वेच्छा से अपने दल से त्याग पत्र दे दे।

ख-यदि वह अपने दल या उसके अधिकृत व्यक्ति की अनुमति के बिना सदन में उसके किसी निर्देश के प्रतिकूल मतदान करें या मतदान के समय अनुपस्थित रहे। परन्तु यदि 15 दिन के अन्दर उसका दल उसे इस उलंघन के लिये क्षमा कर दे तो उसकी सदस्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

ग-यदि कोई निर्दलीय निर्वाचित सदस्य 6 महिने के भीतर किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाये तो उसे दल बदल का अपराध नहीं माना जायेगा।

2. किसी राजनीतिक दल के विघटन पर विधायक की सदस्यता समाप्त नहीं होगी यदि मूल दल के एक तिहाई सांसद विधायक वह दल छोड़ दें।

3. किसी प्रकार विलय की स्थिति में भी दलबदल माना नहीं जायेगा यदि किसी दल के कम से कम दो तिहाई सदस्य किसी अन्य दल में मिल जाएं।

4. दल बदल के किसी प्रश्न पर अंतिम निर्णय सदन के अध्यक्ष का होगा। किसी न्यायालय को उसकी वैधता जाँचने का अधिकार नहीं होगा। इसे पंजाब व हरियाणा न्यायालय ने 1986 में रद्द कर दिया।

5. इस विधेयक को कार्यान्वित करने के लिये सदन के अध्यक्ष को नियम व निर्देश बनाने का अधिकार होगा।

इस दलबदल विरोधी कानून की हर जगह सराहना हुई। दोनों सदनों के सदस्यों ने इस 'ऐतिहासिक घटना' बताया। इससे देश के राजनीतिक जीवन में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। तत्कालीन केन्द्रीय कानून मंत्री अशोक सेन के अनुसार- संसद के दोनों सदनों के द्वारा सर्वसम्मती से इस विधेयक को स्वीकार करना भारतीय प्रजातंत्र की परिपक्वता व स्थिरता का प्रमाण है। इस अधिनियम के अनुसरण में संसद के पीठासीन अधिकारियों ने निम्न नियम बनाये हैं-

1. कोई सदस्य इस कानून के अन्तर्गत अयोग्य है या नहीं, इसका विचार संसद के किसी सदस्य द्वारा प्रस्तुत याचिका के बाद ही किया जायेगा।

2. सदस्य या सदस्यों द्वारा प्रस्तुत ऐसी याचिका सदन के मुख्य सचिव को सम्बोधित होनी चाहिए तथा उससे सम्बन्धित साक्ष्य भी सन्निहित होने चाहिए।

3. पीठासीन अधिकारी याचिका स्वीकार करने के बाद उसे सम्बन्धित दल के नेता के पास अपनी टिप्पणी देने के लिये भेजेगा।

4. यदि पीठासीन अधिकारी याचिका को किसी समिति के सुपुर्द करता है तो प्रार्थी को उसकी विधिवत सूचना देगा व उसकी सार्वजनिक सूचना प्रकाशित करवायेगा।

5. पीठासीन अधिकारी दल के नेता व सम्बन्धित सदस्य के विचार जानने के बाद स्वयं निर्णय देगा या उसे सदन के विषेषाधिकार समिति को जाँच कराने के लिये सुपुर्द कर सकता है।

6. सम्बन्धित सांसद को अपनी सफाई देने के लिये उचित अवसर दिये बिना पीठासीन अधिकारी अन्तिम निर्णय नहीं लेगा।

7. याचिका पर विचार करने के तदोपरान्त, पीठासीन अधिकारी अपने लिखित आदेश से या तो याचिका खारिज कर देगा या सम्बन्धित सदस्य को अयोग्य घोषित कर देगा।

8. अयोग्यता सम्बन्धी निर्णय तुरन्त सदन को प्रेषित किया जायेगा। इसे सरकारी गजट में प्रकाशित किया जायेगा तथा इसकी प्रति सदन के महासचिव, चुनाव आयोग व भारत सरकार के गृह सचिव को प्रेषित की जायेगी।

9. प्रत्येक सदस्य को सदन में अपना आसन ग्रहण करने से पूर्व तीस दिन के भीतर सदन के महासचिव को अपनी निर्वाचन घोषणा व दलीय प्रतिबद्धता की सूचना देनी होगी।

10. संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारी भी इन नियमों से बाधित होंगे।

14.4.3 1985 का दलबदल रोक अधिनियम की आलोचना

- यह सही है कि दलबदल विरोधी अधिनियम हमारे राजनीतिक जीवन को स्वच्छ रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। परन्तु आलोचकों ने इसकी निम्न आधार पर आलोचना की है।
- इस अधिनियम से विधायक की अन्तर्आत्मा की स्वतंत्रता समाप्त होती है। असहमति रखने के अधिकार का हनन होता है। इससे दलीय घोषणा पत्र या संविधान की भावना के विपरीत रखे उपायों पर भी विधायक को मत देने के लिये विवश किया जा सकता है।
- हमारे संवैधानिक कानून में पहली बार राजनीतिक दलों का उल्लेख किया गया है। तथा दलों को अपने विधायकों को निष्कासित करने या सदन की सदस्यता समाप्त करने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। जो घनघोर अन्याय हो सकता है।
- यदि दलबदल अनुचित है तो वह हर हालत में अनुचित है, किसी दल के विभाजन से उत्पन्न भारी संख्या में दलबदल कैसे उचित माना जा सकता है।
- यह राज्यों की स्वायत्ता नष्ट करने के बारे में केन्द्रीय प्रयास है। इसमें सन्देह हो सकता है कि क्या संसद किसी राज्य विधान सभा के सदस्य के अधिकारों व विशेषाधिकारों को नियमित करने में सक्षम है।
- किसी व्यक्ति को दलबदल के वर्ग में लाना और फिर उसके निष्कासन का मामला न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र में न रखना, घोर आपत्तिजनक व संविधान की व्याख्या करने के अधिकारी की अवमानना की भांति है।

14.6 सुधार सम्बन्धी सुझाव

1967 से 1985 के बीच तक के राजनीतिक दलबदल के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि इस राजनीतिक अपराध ने भीषण रूप ले लिया है। आज कठोर अधिनियमों के बाद भी दलबदल की प्रवृत्ति में किसी प्रकार की कोई कमी देखने में नहीं आयी है। आज भी दलबदल किसी न किसी रूप

में हमें देखने को मिल रहा है। दलबदल की इस स्थिति के कारण हमारी संवैधानिक व्यवस्था के जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया है। देश के विषिष्ठ राजनेताओं, वकीलों, शिक्षाविदों, राजनीतिक शास्त्रियों आदि ने भारतीय राजनीति में फैली इस बीमारी के उपचार हेतु निम्न सुझाव दिये। विद्वानों द्वारा दिये गये सुझावों में -प्रत्यावर्तन की व्यवस्था, अध्यक्षतात्मक प्रणाली को ग्रहण करना, दलहीन प्रजातंत्र की व्यवस्था, आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली या सूची प्रणाली के माध्यम से चुनाव का होना, देश में प्रजातांत्रिक परम्पराओं के स्वस्थ विकास की योजना आदि को प्रमुख उपचार के रूप में महत्व दिया गया।

यदि इन सुझावों को मान लें तो कई राजनीतिक विद्वान ये मानते हैं कि कई अन्य परेषानियों का सामना करना पड़ सकता है। जैसे- विधेयक को वापस बुलाने या प्रत्यावर्तन की व्यवस्था से चुनाव की राजनीति में धूर्त चालों की बाढ़ आने की सम्भावना बढ़ जायेगी। दूसरी तरफ जनता भी इस नयी प्रजातांत्रिक पद्धति से ऊब जायेगी। दलहीन प्रजातंत्र केवल बौद्धिक विचार की वस्तु है। संसदात्मक शासन के स्थान पर अध्यक्षतात्मक शासन व्यवस्था को अपनाने से अनुत्तरदायी व स्वेच्छाचारी कार्यपालिका की स्थापना होगी जो उपचार से अधिक बड़ा रोग सिद्ध होगा। अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अपने दोष हैं जिनका अनुभव फ्रांस व इटली वालों ने किये हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए एक ही व्यवहारिक सुझाव हो सकता है और वह है राजनीतिक लाभ रोकने हेतु किसी संवैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था के साथ-साथ स्वच्छ प्रजातांत्रिक परम्पराओं का विकास। मंत्रीपरिषद के आकार पर प्रतिबंध, मंत्री की अवधि का निर्धारण तथा राजनीतिक दलबदलुओं की सदन की सदस्यता से समाप्ति ऐसे उपाय हैं जिनसे इस दषा में कुछ प्रतिरोध लगाया जा सकता है। परन्तु स्वस्थ प्रजातांत्रिक परम्पराओं के उदय व विकास के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। अतः जनता को स्वयं अपने सांसदों व विधायकों पर कड़ी निगाह रखनी होगी। विधायी व नैतिक विकल्पों का सुखद संयोजन ही इसका एक मात्र प्रभावी उपचार हो सकता है।

14.7 सारांश

दलबदल अधिनियम 1985 के पारित होने के समय यह आशा की गयी थी कि यह भारतीय राजनीति की एक गंभीर बीमारी की अचूक दवा साबित होगी, लेकिन बिगत 15 वर्षों के अनुभव दूसरी ही तस्वीर प्रस्तुत कर रहे हैं। अब इसकी अनेक खामिया नजर आने लगी हैं। इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व संसद या विधायक छुटपुट ढंग से दलबदल किया करते थे लेकिन इसके पारित होने के बाद सामुहिक रूप से बड़े पैमाने पर दल बदल होने लगा है। और छोटे-छोटे नये राजनीतिक दलों का तेजी से निर्माण होने लगा है। उदाहरण के लिये 90 के दशक में अनेक छोटे राजनीतिक दलों या गुटों का निर्माण हुआ है। जैसे- लोकतांत्रिक कांग्रेस, जनता दल(अ), जनतादल(ज), जनतांत्रिक बसपा, लोकशक्ति, लोक जनशक्ति इत्यादि।

बिगत 15 वर्षों में यह भी देखने को आया है कि अनेक सांसदों एवं विधायकों ने इस अधिनियम के प्रावधानों का उलंघन करते हुए दलबदल किया है लेकिन आज तक किसी की भी सदस्ता समाप्त नहीं हुयी। उदाहरण के लिये 1991 में अजीत सिंह के नेतृत्व में जनता दल के 10 सांसदों ने जनता

दल से अलग होकर लोक सभा अध्यक्ष से नये राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान करने का प्रतिवेदन दिया और अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने उन्हें एक नये गुट के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। जबकि उनकी संख्या पैतृक राजनीतिक दल की सदस्य संख्या से एक तिहाई कम थी। उत्तर-प्रदेश में कल्याण सिंह के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने अपनी सरकार को बचाये रखने के लिये अनेक राजनीतिक दलों से बड़े पैमाने पर दल बदल कराये और दलबदलुओं को मंत्री पद से नवाजा गया।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि दलबदल अधिनियम 1985 दलबदल को रोकने में असफल सिद्ध हो रहा है। अतः यह समीचीन होगा कि दलबदल अधिनियम में रहते आवश्यक संशोधन कर इसे कारगर बनाया जाये, अन्यथा आने वाले दिनों में यह खतरनाक रूप धारण कर लेगा, और लोकतांत्रिक व्यवस्था अलोकतांत्रिकता की ओर मुड़ जायेगी। अंत में यह उल्लेखनीय है कि संविधान का 91वाँ संशोधन अधिनियम 2003 दलबदल पर कठोर नियमों को प्रतिस्थापित करता है।

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाश कश्यप - पालिटिक्स आफ डिफेक्शन
2. जे.सी. जौहरी - रिफ्लैक्शन आफ इंडियन पालिटिक्स
3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
4. जे.सी.जौहरी - भारतीय शासन और राजनीति

14.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

१ . समाचार पत्र व समाचार पत्रिकाएँ - इंडिया टुडे, आउटलुक, टाईम्स आफ इण्डिया, हिन्दुस्तान, द हिन्दु।

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में दल बदल के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये?
2. राजनीतिक दलबदल से आप क्या समझते हैं ?
3. दलबदल भारतीय राजनीति में एक अभिषाप है इस कथन पर अपने विचार लिखिये?
4. 1973 व 1978 के दलबदल अधिनियमों की असफलता पर अपने विचार दें?
5. 1985 के दलबदल अधिनियम के बाद से क्या आज की भारतीय राजनीति में कुछ सुधार आया है? अपना कथन दीजिये?

इकाई-15 : भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास

15.3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य

15.3.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव

15.3.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

15.4 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण

15.4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं

15.4.1.1 नौकरशाही

15.4.1.2 पंचायती राज

15.4.1.3 दलीय व्यवस्था

15.4.1.4 दबाव गुट

15.5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण , अवधारणा के संदर्भ में

15.6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास

15.7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

15.8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

15.9 सामाजिक गतिशीलता और भारत

15.10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत

15.11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बांधाएं

15.11.1 क्षेत्रवाद की राजनीति

15.11.2 धार्मिक राजनीति

15.11.3 भ्रष्टाचार और आधुनिकीकरण

15.12	सारांश
1513.	शब्दावली
1514.	अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1515.	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15 16.	सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
151.7	निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण को समझने से पूर्व हमें राजनीति आधुनिकीकरण को उसके सामान्य अर्थ में समझना जरूरी है। रॉबर्ट एवर्ट के मतानुसार “आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है जो संसाधनों के तार्किक उपयोग पर आधारित है और जिसका लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है।” इस अवधारणा को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर लागू किया जाता है। जब इसे राजनीतिक संदर्भ में लिया जायेगा तो यह ‘राजनीतिक आधुनिकीकरण’ कहलायेगा परन्तु इसे आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक पहलुओं से अलग नहीं किया जा सकता।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप-

- राजनीतिक आधुनिकीकरण की उसके सामान्य अर्थों और राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का उदय के कारणों को जान पायेंगे।
- आधुनिकीकरण के प्रभावों और परिवर्तनाशीलताओं को समझने का प्रयास किया गया है।
- आधुनिकीकरण और विकास के सम्बन्धों को भी समझाया गया है। यह बताने का प्रयास किया गया है कि पारस्परिक विघटन के बाद यद्यपि आधुनिकीकरण होता है परन्तु वह बिखर भी सकता है।
- आधुनिकीकरण की दुविधाओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है और अंत में यह बताने का प्रयास किया गया है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का लक्ष्य पवित्र है, यह प्रक्रिया अपरिहार्य है।

15.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास

अब सवाल पैदा होता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण की विचारधारा क्यों और कैसे अस्तित्व में आयी? एक लम्बे समय तक साम्राज्यवादी देशों ने संसार के अनेक देशों को अपना उपनिवेश बनाये रखा। वह उपनिवेशों का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शोषण करते रहे। राजनीतिक तौर पर उपनिवेश गुलाम बन गये। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशों में राष्ट्रवाद की लहर दौड़ गयी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया है और अंततः अनेक एशियाई और अफ्रिकी देश आजाद हो गये। इस तरह नये समप्रभुता सम्पन्न राज्य अस्तित्व में आ गये।

अब यहां राजनीति शास्त्रियों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि वह इन राज्यों के व्यवहार और उनकी समस्याओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करें इसके लिए उन्होंने व्यवस्था पद्यति (सिस्टम एपॉच) को अपनाया जिसका प्रयोग पश्चिम जगत में निरंतर जारी था। उनका मानना था कि गैर पश्चिमि राजनीतिक प्रक्रियों का अध्ययन पश्चिमि राजनीतिक प्रक्रियाओं की सहायता से किया जाना सम्भव था। उन पर पहले से पश्चिमि जगत की संस्थाओं का प्रभाव था। इस तरह जैम्स कोलमैन ने नाइजीरिया का, लूसियन पाई ने बर्मा का तथा अनेक ब्रिटिश और अमरीकी राजनीति शास्त्रियों ने भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका का अध्ययन किया। इन देशों के आंकड़े एकत्रित किये गये और उनकी सहायता से नवोदित राज्यों के व्यवहार का पता लगाया गया। इन आंकड़ों के आधार पर एक सामान्य वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाना आवश्यक था इसके लिए डेनियल लर्नर, टेलकोट पारसंस, लूसियन पाई, डेविड एफटर, सेमुअल हटिंगटन, रिगस इत्यादि राजनीति शास्त्री सामने आये और अपनी अवधारणाएं सामने रखी। लूसियन पाई ने राजनीतिक विकास का सांस्कृतिक आयाम में डेविट एफटर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण के संदर्भ में, रिगस ने द्वान्दात्मक योजना के संदर्भ में और हटिंगटन ने सामाजिक द्वन्द के संदर्भ में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

15.3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि विकासशील देशों के लिए आधुनिकीकरण का महत्व क्या है? क्यों पुराना समाज इन तमाम दुविधाओं से गुजरता है? यहाँ हमें यह स्वीकार करना है कि आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे रोका नहीं जा सकता। यह संसार छोटा हो गया है। यातायात और संचार व्यवस्था आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज करती है। कोई समाज इसके प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता। गति धीमी या तीव्र हो सकती है। लेकिन पूरी प्रक्रिया की एक उपयोगिता और एक लक्ष्य होता है। आधुनिकीकरण से अनेक राजनीतिक समस्याओं का विश्लेषण किया जा सकता है। आधुनिकीकरण समाज का लक्ष्य निर्धारित करता है और यह भी बताता है कि इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? यह समाज को एक स्पष्ट दिशा देता है और आर्थिक

सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों को नियंत्रित और संतुलित करता है। परिवर्तन आवश्यकता है। यह परिवर्तनों की सीमा निश्चित करता है।

आधुनिकीकरण भौगोलिक सीमाओं से परे है। यह कहीं आ सकता है। आधुनिक समाज के कुछ निश्चित लक्ष्य होते हैं। आधुनिकीकरण उन लक्ष्यों को पाने में मदद करता है।

कुल मिलाकर राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत् प्रक्रिया है। यह प्रभावकारी है और प्रत्येक राज्य और समाज को प्रभावित करती है। इसकी गति को धीमा किया जा सकता है, रोका नहीं जा सकता। नवीनतम उदाहरण यह है कि अभी तक कोई सोच नहीं सकता था कि अरब देशों में लोकतंत्र की हवा चलेगी। लेकिन जनवरी 2011 को क्रान्तिकारियों ने तुनेशिया में बेन अली के 23 वर्ष पुराने एकाधिकारी तंत्र को उखाड़ फेंक कर यह आशा जगाई है कि अरब देशों में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज हो चली है। मिस्र में राष्ट्रपति हुसनी मुबारक के विरुद्ध जब क्रान्ति सफल हुई और हुसनी मुबारक को जाना पड़ा।

15.3. राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव

राजनीतिक आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है: (1) यह समाज में परम्परागत संरचनाओं की भूमिकाओं को कमजोर करता है। (2) सत्ता में परिवर्तन लाता है। (3) परम्परागत परिवारीय और जातीय सत्ताएं एक प्रथम धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता में परिवर्तित होती हैं। (4) पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्य स्वीकार किये जाते हैं। (5) सरकार के अंग स्पष्ट विभिन्नताओं के साथ सामने आते हैं। (6) जातियों और उपजातियों का राजनीतिक प्रक्रियाओं में मिलकर महत्व कम हो जाता है।

1.5 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण की अवधारणा को परिभाषित करना बहुत कठिन है लेकिन यह तय है कि दोनों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अगर आधुनिकीकरण का लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है तो हमको पहले आधुनिक समाज को समझना होगा। पाश्चात् अर्थ में आधुनिक समाज का अर्थ है: नगरीयकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता तथा आधुनिक जीवन के लिये यांत्रिकी का प्रयोग। इस तरह परम्परागत समाज का बिखरना और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का पनपना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रराज्य को राजनीतिक सत्ता की अन्तिम इकाई मानना, आधुनिक समाज की पहिचान है। औद्योगिक क्रान्ति ने वास्तव में आधुनिकीकरण की नींव डाली है और यह तैय है कि आधुनिकीकरण की हवा को रोकना अब कठिन है। हंटिंगटन के अनुसार आधुनिकीकरण एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो मानवीय विचार और क्रियाओं के हर क्षेत्र को प्रभावित करती है। उसकी दृष्टि में नगरीकरण, औद्योगिकीकरण,

धर्मनिरपेक्षीकरण आधुनिकीकरण आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषताएं हैं। आधुनिकीकरण मूल्यों, व्यवहारों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन लाता है।

विकासशील देशों में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ-साथ चलता है। गतिशीलता की ऐसी प्रक्रिया एशिया, अफ्रिका और लैटिन अमरीका में स्पष्ट नजर आती है। यहाँ औद्योगिककरण और साक्षरता के कारण नगरीयकरण की प्रक्रिया जारी है। धीरे-धीरे राष्ट्रीय पैदावार बढ़ रही है और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। लेकिन इन क्षेत्रों के देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया धीमी है क्योंकि यहाँ राजनीतिक और आर्थिक स्थायित्व की कमी है और वृहत संचार व्यवस्था के अभाव में जागरूकता कमजोर है। लोकतांत्रिक विचारों की ओर आकृषण कम है। जातीय संघर्षों और गृह युद्धों ने राष्ट्रीय एकीकरण को कमजोर किया है। यह तथ्य राजनीतिक विकास में बाधा है। दूसरे यहाँ राजनीतिक दलों का विकास नहीं हो पाया है और नौकरशाही इतनी अक्षम है कि मांगों की पूर्ति नहीं कर सकती। (भारत एक अपवाद है) यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। लेकिन अक्सर ऐसा भी होता है कि आर्थिक विकास की गति धीमी हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व अधिक हो (भारत) या फिर आर्थिक विकास की गति तेज हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व कम (अर्जेन्टीना) इसलिए आर्थिक विकास की गति बनी रहने के लिये राजनीतिक स्थायित्व एक अनिवार्य शर्त है (चीन यद्यपि यहाँ लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं है) कुल मिलाकर आधुनिकीकरण के लिए आर्थिक विकास, राजनीतिक स्थायित्व, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, उदारवादी जनतंत्रीय सोच, एकीकरण की भावना अनिवार्य है। आधुनिकीकरण अवश्यगामी है, पुराने समाजों को इसके तैयार रहना चाहिए।

1.6 भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

इस इकाई का उद्देश्य आधुनिकीकरण के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताओं, उसके मूल्यांकन, विकास से उसके सम्बन्ध, प्रतिमानों के सम्बन्ध में विश्लेषण, परिवर्तनशीलता से उसका सम्बन्ध, गतिशीलता और बाधाओं का उस पर प्रभाव का अध्ययन करना है।

15.4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं

संवैधानिक व्यवस्था के अतिरिक्त ऐसी अन्य विशेषताएं हैं जिन्होंने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र निर्मित किया जाता है। इनमें प्रमुख है नौकरशाही की व्यवस्था, स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत पंचायती राज्य की व्यवस्था, दलीय व्यवस्था और दबाव गुटों का अस्तित्व।

15.4.1.1 नौकरशाही

नौकरशाही देश के प्रशासन में एक केन्द्रीय भूमिका अदा करती है। विशेषता यह है कि जहां प्रशासन की नीति का निर्धारण मंत्रियों द्वारा होता है वहां इन नीतियों का क्रयान्वन नौकरशाही या असैनिक सेवा वर्ग द्वारा होता है। नौकरशाही संगठन की संरचना संविधान के अनुसार है। तीन प्रकार की असैनिक सेवाएँ हैं। केन्द्रीय, अखिल भारतीय और प्रादेशिक सेवाएँ। असैनिक सेवा वर्ग को संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त है।

असैनिक सेवा वर्ग अपनी क्रयान्वन, वित्तीय और न्यायिक शक्तियों के कारण बहुत शक्तिशाली संस्था मानी जाती है। लेकिन जहां भारतीय नौकरशाही ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को सुगम बनाया है वहां इसके मार्ग में रोड़े भी अटकाये हैं। अप्रचलित प्रशासकीय व्यवस्था का निर्माण, अप्रचलित कार्य पद्धति, भ्रष्टाचार और पक्षपात, पारस्परिक संघर्ष, राजनीतिक हस्तक्षेप। परिणाम स्वरूप राजनीतिक प्रशासकीय द्रन्द जातिवाद, साम्प्रदायिकतावाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, इत्यादि ऐसी बीमारियां हैं जिन्होंने नौकरशाही को राजनीतिक व्यवस्था के लिए अभिषाप बना दिया है।

15.4.1.2 पंचायती राज

राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों ने संवैधानिक आधार पर देश में पंचायती राज्य संस्थाओं के स्पष्ट निर्देश दिये हैं। यह व्यवस्था स्थानीय शासन का सर्वोत्तम उदाहरण है। संविधान का अनुच्छेद 40 व्यवस्था देता है कि “राज्य ग्रामीण पंचायतो को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियां प्रदान करेगा जो स्वशासन के कार्य को सुलभ बना सके”।

बलवन्त कमेटी की सिफारिशों के अनुसार व्यवस्था ऐसी होनी थी जो निचले स्तर तक शक्तियों और कार्यों का विकेन्द्रीकरण कर सके। एक ऐसे संगठन की स्थापना करनी थी जो विकास के सारे कार्यों को पूरा करने की क्षमता रखता हो, और सरकार का काम निदेशन देना, निरीक्षण करना, योजना तैयार करना हो और वित्त व्यवस्था करना हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए त्रि-संरचनात्मक ग्रामीण स्थानीय पद्धति को लागू किया गया - अर्थात् ग्राम सभा, पंचायत समिति और जिला परिषद। इन तीनों संरचनाओं में ताल-मेल पैदा किया गया, इनका निर्माण निर्वाचन पद्धति से कराया गया, इनका एक विशेष क्षेत्राधिकार निश्चित किय गया और ग्रामीण स्तर पर प्रत्येक व्यस्क व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित की गयी।

पंचायती राज्य की एक और विशेषता यह है कि इसमें महिलाओं की भागीदारी आरक्षण के माध्यम से सुनिश्चित की गयी।

किस तरह पंचायती राज्य ने भारत की राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति दी। यह इस बात से स्पष्ट है कि आज देश के लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज्य जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक

व्यवस्था को मजबूत कर रहा है। विकेन्द्रीकरण ने सहभागिता को बढ़ावा दिया है, ग्रामीण जीवन सुधारा है और लोगों में अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूकता आयी है। पंचायती राज्य ने आधुनिकीकरण में कुछ बाधाएँ भी उत्पन्न की हैं। जातिवाद को बढ़ावा मिला है, सामाजिक द्वन्द तेज हुआ है, हिंसा बढ़ी है और निचले स्तर पर भी भ्रष्टाचार का बोल-बाला है। काफी हद तक यह व्यवस्था धन और बाहुबल पर आधारित है। महिलाओं के नाम पर पुरुषों का वर्चस्व है।

15.4.1.3 दलीय व्यवस्था

किसी भी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था का होना अनिवार्य है। विशेष रूप से संसदीय प्रणाली की तो यह रक्त धमिनियाँ हैं। यह स्वीकार किया जाता है कि दल राजनीतिक आधुनिकीकरण में एक अहम भूमिका अदा करते लेकिन शर्त यह है कि इनकी भूमिका सकारात्मक हो। ब्रिटेन और अमेरिका की दलीय व्यवस्था आदर्श मानी जा सकती है और यद्यपि भारतीय दलीय परम्परा ब्रिटेन की देन है परन्तु यह उसके आदर्शों का अनुसरण करने में असफल रही है। कारण अनेक हैं:-

पहला कारण दलों की अंतहीन बढ़ोत्तरी है। ऐसी बढ़ोत्तरी की मिसाल संसार में कहीं भी देखने को नहीं मिलती। इस स्थिति ने लोगों को दुविधा में डाल दिया है। लगभग 100 दल अस्तित्व में हैं जिनमें केवल एक दर्जन का महत्व है। 1979 में जनता पार्टी के टूटने के बाद यह स्थिति और गंभीर हुई है। इस स्थिति ने राजनीतिक व्यवस्था पर अनुचित दबाव डाला है। इसमें कांग्रेस (आई0) कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) और भारतीय जनता पार्टी ही मुख्य हैं। चुनाव आयोग के चीफ ऐलाक्शन कमिशनर कुरैशी ने ठीक कहा है कि अधिकांश दल पैसा कमाने और छोटे नेताओं की महत्वकांक्षा के कारण अस्तित्व में आते हैं।

दूसरे क्षेत्रीय दलों की भरमार ने भी राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डाला है। इन दलों का कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण नहीं होता और न ही कोई राजनीतिक विचारधारा या आदर्श। यह दिशाहीन, विचारविहीन दल हैं। शक्ति के भूखों का इन पर नियंत्रण है जो क्षेत्रवाद, जातिवाद और सामप्रदायिक भावनाओं को भड़काकर अपना लक्ष्य साधते हैं। वे विशिष्ट भाषायी, धार्मिक, क्षेत्रीय, जातीय और सांस्कृतिक समूहों के हितों की रक्षा करते हैं। उनका प्रभाव एक क्षेत्र तक सीमित रहता है। केन्द्रीय सत्ता हत्याना इनका लक्ष्य नहीं होता परन्तु यह केन्द्रीय सत्ता का साम्य बिगाड़ने की क्षमता रखते हैं। यह सामप्रदायिक भी है और अलगाववादी भी। यह दल भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण की सबसे बड़ी बाधा है क्योंकि इन्होंने सामाजिक संघर्ष और राजनीतिक द्वन्द को पैदा किया है। इन्होंने लोगों की सोच को संकीर्ण किया है।

तीसरे भारत की पूरी दलीय व्यवस्था जातिवादी और सामप्रदायिक शक्तियों से नियंत्रित है। वोट बैंक की राजनीति, लोकतंत्र को आघात पहुँचाया है।

चौथा इन राजनीतिक दलों पर व्यक्तियों का नियंत्रण है। यह एक आदर्श या विचारधारा से नहीं चलती। इन पर व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं, इच्छाओं इरादों और विचारों का प्रभाव है।

कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़कर किसी दल की कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं है। प्रत्येक दल गांधीवाद, लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के प्रति वचनबद्ध है जबकि यह झूठ है। नतीजा यह है कि लोगों में विचारात्मक असमन्वय की स्थिति बनी रहती है।

दल बदल एक और एक बड़ी बीमारी है। इस ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का विनाश कर दिया है। यह स्वस्थ राजनीतिक व्यवस्था की पहचान नहीं है। दलीय वफादारी कमी, दलीय व्यवस्था को नष्ट करती है। 52वें संशोधन, 1985 से पूर्व यह स्थिति बड़ी भयावह थी।

पांचवे, 1947 से 1977 तक भारत में एक दल का वर्चस्व रहा। इसने एकदलीय शासन व्यवस्था का रूप तैयार किया। इससे एकाधिकारवाद की प्रवृत्ति पनपी और राजनीतिज्ञों को मनमानी करने का मौका मिला। लालफीताशाही और भ्रष्टाचार का बोल-बाला हुआ। यह स्थिति न केवल केन्द्र में बल्कि बिहार, बंगाल और गुजरात में देखने को मिली।

और अंत में यह कहा जा सकता है कि सत्ता के विरोधी दलों ने शासन का सकारात्मक विरोध नहीं किया। विरोधी दल विघटित और भटके हुए रहे। इससे न जन चेतना में कोई वृद्धि हुई और न ही शासन में कोई डर बैठा।

कुल मिलाकर राजनीतिक दलों की भूमिका, उनका आचरण, उनका स्वरूप, उनका चरित्र और उनकी कार्यविधि राजनीतिक आधुनिकीकरण के विरुद्ध रही है।

15.4.1.4 दबाव गुट

दबाव गुट ऐसे संघ है जिनकी उत्पत्ति अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति करने के लिए हुई है और इन हितों की पूर्ति सरकार पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दबाव डालकर करते हैं। यह राजनीतिज्ञ दलों से अलहदा है। यह चुनाव में भाग नहीं लेते हैं। सत्ता प्राप्त करना इनका लक्ष्य नहीं होता। परन्तु यह राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डालने में अहम भूमिका अदा करते हैं।

भारत में दबाव गुटों का विकास धीमा रहा है। स्वतंत्रता के बाद इनका विकास अधिक हुआ है। यह ऐसे समूह हैं जिनकी राजनीतिक दलों के प्रति वफादारियां बदलती रहती हैं। यह अपने सदस्यों के प्रति वफादार होते हैं और इस तरह परम्परावादी और आधुनिक दोनों तत्वों का समावेश होता है। वे आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करते हैं और राजनीतिक दलों की नीतियों को वित्तीय सहायता प्रदान करके प्रभावित करते हैं। यह दल देश में अराजकता, हिंसा और अव्यवस्था की स्थिति भी पैदा करते हैं। इस तरह वे हितों की पूर्ति के लिए परिस्थितियां पैदा करते हैं।

इन दबाव गुटों में वाणिज्य समूह, मजदूर संघ कृशक समूह, धार्मिक, जातीय, जनजातीय और छात्र संगठक विशेष है।

सच तो यह है कि भारत में दबावों समूहों की भूमिका बहुत सकारात्मक नहीं है। गुर्जर आंदोलन इसका उदाहरण है। आधुनिकीकरण की दृष्टि से इनकी भूमिका विवादास्पद है।

15.5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण , अवधारणा के संदर्भ में

हमें यहां यह स्वीकार करना चाहिए कि क्योंकि अभी भारत एक विकासशील देश है। इसलिए यह राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है, इसका अभी आधुनिकीकरण नहीं हुआ है और न ही इसकी कोई राजनीतिक पद्यति पूर्ण रूप से विकसित हुई है। यहां हम राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास करेंगे।

15.6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास

पहले विस्तार से लिखा जा चुका है कि उपनिवेशवाद के अंत के बाद भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। यद्यपि 1858 से भारत इस अवधारणा की ओर अग्रसर होने लगा था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता मिलने के अवसर पैदा होने लगे थे जेसा 1935 के एक्ट में भी स्पष्ट था। भारतीयों में शासन में भागीदार की इच्छा जाग्रत होने लगी थी जो लूसियन पाई के अनुसार विकास और संस्कृति की अनिवार्य शर्त थी। स्वशासन, स्वराज्य और स्वतंत्रता की मांग इसके उदाहरण थे। इसके साथ ही जैसा कि ऑर्गेन्सकी का मानना है भारत में राजनीतिक एकीकरण, औद्योगिकीकरण , जनकल्याण और संसधनों की बहुलता के भी चिन्ह अंकित होने लगे थे। यह आर्थिक विकास के लिए जरूरी था। भारत में एक संवैधानिक व्यवस्था के तहत पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक गतिशीलता सुनिश्चित हो चली थी।

राजनीतिक दृष्टि से आजादी के बाद भारत ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का रास्ता चुना। पारम्परिक व्यवस्था से निकलकर लोकतंत्र के माध्यम से भारत विकसित होना चाहता था। संविधान की प्रस्तावना इसका प्रतीक है।

कुल मिलाकर जैसी आधुनिकीकरण की परिभाषा है, स्वतंत्रता के बाद विशेष रूप से भारत आधुनिक समाज की स्थापना के लिए संसाधनोंका तार्किक सदुपयोग करने को तैयार था। जवाहरलाल नेहरू का संसाधनों का सुदुपयोगों पर गहरा जोर था। भारी औद्योगिकीकरण की संरचना का खाका उन्होंने भावी भारतीय समाज के विकास के लिए तैयार किया था।

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व राजनीतिक लोकतंत्र करता है या सर्वाधिकारी। भारत ने पहली व्यवस्था को अपनाया है जबकि चीन और सोवियत संघ ने दूसरा रास्ता अपनाया है।

जैसा कि लिखा जा चुका है आधुनिकीकरण के तीन प्रतिमान (मॉडल्स) हैं: उदारवादी लोकतंत्र, साम्यवादी तंत्र, सर्वाधिकारवाद। प्रत्येक व्यवस्था में अपनी आर्थिक व्यवस्था, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और सामाजिक संरचना होती है। लेकिन कुल मिलाकर उनके विचारकों के अनुसार आधुनिकीकरण का सम्बन्ध आर्थिक पैदावार (ग्रोथ) से होता है। आर्थिक पैदावार औद्योगीकरण पर निर्भर है। औद्योगीकरण सामाजिक संरचनाओं को भी प्रभावित करता है। जब सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आते हैं तब राजनीतिक आधुनिकीकरण होने लगता है।

भारत के संदर्भ में हम देखते हैं कि यहां पारम्परिक सत्ता का हास 1858 से ही आरम्भ हो गया। उसके स्थान पर विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद एक एकल, धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता का उदय हुआ। राजनीतिक व्यवस्था की मांगों को पूरा करने के एक अत्यंत दक्ष केन्द्रीकृत प्रशासकीय सेवावर्ग अस्तित्व में आया। व्यक्तियों में राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी की भावना बढ़ी। पंचायती राज इसकी एक मिसाल है। नई राजनीतिक संस्थाओं जैसे राजनीतिक दल, हित समूह, सामाजिक आंदोलन अस्तित्व में आये और राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अन्तर्सम्बन्धों की भावना बढ़ी। भारत की ओर से गुट निरपेक्षता के आंदोलन का बढावा देना इसका उदाहरण है। नये मूल्य जैसे समाजवाद और मौलिक अधिकारों के विचार पनपे।

भारत में आधुनिकीकरण लगभग दोनो चरणों से होकर गुजरा है - ऐतिहासिक और विकासवादी। यह विकास का परिणाम है यद्यपि यह पूर्ण नहीं है, सत्त विकास की ओर अग्रसर है। इसके संरचनात्मक और सांस्कृतिक प्रतिरूप सामने आने लगे हैं जिनमें अन्तर्ता, संस्थाकरण और राष्ट्रीय एकीकरण महत्वपूर्ण हैं।

15.7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

पहले बताया जा चुका है कि परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट यह चार परिवर्तनशीलताएं हैं जो राजनीतिक आधुनिकीकरण को प्रभावित करती हैं। भारत में 1857 से ही परम्परा और आधुनिकीकरण का टकराव देखने को मिलता है। धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों के समय यह टकराव तेज हुआ और आज भी खूब पंचायतो के निर्णय आधुनिक न्यायपालिका को चुनौती देते नजर आते हैं। 1857 के बाद परिस्थितियों के अनुसार आधुनिकीकरण में गतिशीलता आयी। जहां तक नेतृत्व का प्रश्न है भारत के आधुनिकीकरण में एक अत्यंत कुशल नेतृत्व की भूमिका रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी का और स्वतंत्रता के बाद आधुनिक भारत के निर्माण के लिए जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व बहुत महत्वपूर्ण रहा है। आज भी देश में नेतृत्व की कमी नहीं। भारत को तीसरी शक्ति बनाने में भारतीय नेतृत्व की प्रशंसा करनी होगी। आज भारत में जो संरचनाएं

और संस्कृति उभरी है और एक सक्षम राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आई है, इसमें भारतीय नेतृत्व का कुशल निदेशन तथा मूल्य कारक बने हैं। अन्त में वे संकट हैं जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का सामना करते हैं। इनमें राष्ट्रीय पहिचान, राजनीतिक वैद्यता और प्रवेश मुख्य हैं। लोग राजनीतिक व्यवस्था के प्रति वफादार हुए हैं राष्ट्र को उन्होंने अपनी पहिचान बनाया है। दूसरी ओर चुनावों के माध्यम से आधुनिक अभिजात वर्ग तथा सत्ता को वैद्यता मिली है। प्रवेश की दृष्टि से एक केन्द्रीकृत शक्ति-संसद अस्तित्व में आई है, अन्तिम सत्ता की एक अन्तिम मानवीय संस्था-कार्यपालिका का उदय हुआ है। वैधानिकता प्रदान करने के लिये एक मानवीय स्रोत न्यायपालिका ने जन्म लिया है। राजनीतिक संचार की व्यवस्था, लोगों की भागीदारी, राजनीतिक दलों का उदय सुनिश्चित हुआ है। संसाधनों का दोहन करके उनका सदुपयोग आरंभ हुआ है जिससे आर्थिक विकास में गतिशीलता आई है। परन्तु यह अन्त नहीं है। भारतीय संस्थाएँ एवं संरचनाएँ किसी न किसी में दबाव में रहती हैं। पर यह कहा जा सकता है कि पिछले साठ सालों से इन संरचनाओं ने दबावों का सफल सामना किया है। त्रिशंकु लोक सभा ने किसी न किसी प्रकार से शासन को स्थायित्व दिया है।

15.8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण का गहरा सम्बन्ध है। लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है पर आधुनिक समाज क्या है, यह समझना होगा। आधुनिक समाज का अर्थ है नगरीयकरण, साक्षरता सामाजिक गतिशीलता और तकनीकीकरण। आधुनिक जीवन की यह अनिवार्य शर्तें हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिकीकरण का अर्थ है पारम्परिक समाज का विखरना और सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रीय राज्य को एकमात्र राजनीतिक इकाई मानना। इस तरह आधुनिकीकरण एक क्रान्ति है। इसे रोक पाना कठिन है।

भारत के संदर्भ में हम देखेंगे कि 1947 के बाद से औद्योगिकीकरण के माध्यम तथा तकनीकी के प्रयोग से शहरो और गांवों का विकास हुआ है। पंच वर्षीय योजनाओं ने इस गति को तेज किया है। तेजी से नगरीयकरण हुआ है और जैसा कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना दर्शाती है। सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण अपनाया गया। समाजवाद सामाजिक समानता लाने का एक महत्वपूर्ण उपकरण बना है। राज्य की नीति के निदेशक तत्वों ने सामाजिक न्याय को और मौलिक अधिकारों की संवैधानिक व्यवस्था ने स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है। मूल्यों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन आया है। लगभग सभी राजनीतिक दल समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के प्रति वचनबद्ध हैं।

15.9 सामाजिक गतिशीलता और भारत

भारत में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ साथ चल रहे हैं। उदाहरण के लिये औद्योगिकरण ने साक्षरता, नगरीयकरण की दर यदि एक ओर बढ़ाई है तो राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ा है। और प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ी है। गत दस वर्षों से इस वृद्धि में गति आई है। साक्षरता लगभग 80 प्रतिशत है, नगरीयकरण में 100 प्रतिशत वृद्धि हुई, राष्ट्रीय उत्पादन 9.2 प्रतिशत बढ़ा है। प्रति व्यक्ति आय 1960-90 की तुलना में चौगुनी हो गई है। लेकिन चुनाव राजनीति ने लोकतंत्र के उच्च आदर्श को नहीं पाया है। दलगत राजनीति, राजनीतिक अपराधीकरण और धन शक्ति ने लोकतंत्र को दबाव में डाल दिया है। नौकरशाही पूरी तरह लालफीताशाही में परिवर्तित हो चुकी है। जनता और सेविवर्ग में दूरियाँ बढ़ी हैं। इसके बावजूद क्योंकि आर्थिक विकास हो रहा है, राजनीतिक व्यवस्था विखरी नहीं है। साथ ही राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व ने आर्थिक विकास को गतिशील रखा है। ऐसी कोई उम्मीद नहीं है कि भारत का आधुनिकीकरण पाकिस्तान की तरह बिखर जाये। फिर भी भारत में पूरी तरह से आधुनिकीकरण आ चुका है, यह कहना अतिशयोक्ति होगा।

भारत में आधुनिकीकरण प्रक्रिया को गतिशील हुए लगभग 60 वर्ष हुए हैं। अतः हम अभी ब्रिटेन और अमरीका से लगभग 200 वर्ष पीछे हैं। भारत में पारम्परिक संस्थाएँ अस्तित्व में हैं। एक केन्द्रीय परिवार का विकास नहीं हुआ है। लेकिन एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की मजबूत नींव पड़ी है। भारत अमरीका और चीन के बाद एक निश्चित आर्थिक पैदावार के स्तर की ओर बढ़ रहा है, यद्यपि इसको झटके लगते रहते हैं। भ्रष्टाचार और हिंसा ने भारतीयों में निराशा को बढ़ावा दिया है। भारत में जन संख्या विस्फोट ने आर्थिक खुशहाली को सीमित किया है यद्यपि 1980 के दशक से स्थिति बदली है। शिक्षा के क्षेत्र में देश बहुत आगे बढ़ा है। विशेष रूप से तकनीकी शिक्षा में एक क्रान्ति आई है। फिर भी साक्षरता की दर शत प्रतिशत नहीं हुई है। 99 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं परन्तु सीखते कुछ नहीं। परिणामस्वरूप मानवीय शक्ति की बरबादी हो रही है। बेरोजगारी का कारण जन संख्या विस्फोट है। नवयुवक पश्चिमी देशों की ओर भाग रहे हैं। नगरीयकरण के कारण लगभग सभी औद्योगिक नगरों पर दबाव बढ़ा है। नगर गन्दे हुए हैं, यातायात के जमाव से संकट पैदा हुआ है। अपराधीकरण बढ़ा है और मूल्यों में गिरावट आई है। दिल्ली संसार के सब से गन्दे और असुरक्षित शहरों में से एक है। यह सारी बातें आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को दबाव में रखती हैं।

15.10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत

जहां तक परम्पराओं का प्रश्न है भारतीयों में भी यह दुविधा है कि वे किस परम्परा को छोड़ें और किस नई संरचना को अपनाएं। ग्रामीण जीवन अभी पुराना है। लोगों को उस से लगाव है। वे नहीं चाहते कि महिलाएं पढ़ें और आगे बढ़ें। दूसरा भारत में जो परिवर्त आ रहा है वह विकास का परिणाम है। क्रान्तिकारी परिवर्तनों को लाने में दुविधा है। तीसरे भारतीय जातीय और साम्प्रदायिक वफादारियों से निकलकर धर्मनिरपेक्षता की ओर जाने में असमंजस की स्थिति में रहते हैं। इसलिए भारतीयों में गहरी जातीयता और साम्प्रदायिकता की जड़ें मजबूत हैं। राजनीति का धर्मिकरण इसका

एक उदाहरण है। राजनीतिक समीकरण जातीय और धार्मिक होते हैं। चौथे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या है। भारत में यह स्थिति गंभीर है। जातीय, साम्प्रदायिक और भ्रष्ट शक्तियों ने एकीकरण को कमजोर किया है। भाषा और क्षेत्र इस दिशा में एक बाधा है फिर भी यदि राष्ट्रीय एकीकरण की इच्छा है तो यह आशाजनक तत्व है। पांचवे भारत में सबसे अच्छी बात यह है कि यहां लोकतंत्र को एकाधिकारवाद या साम्यवाद की कोई चुनौती नहीं है। इसलिए भारतीयों में राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को लेकर कोई दुविधा नहीं है। छोटे भारत में विचारात्मक जड़ता नहीं है। नवीन विचार अस्तित्व में आते हैं जैसे धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतांत्रिक उदारवाद, विश्व शांति, सामाजिक न्याय इत्यादि। आधुनिक भारत में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता का विचार विकसित हुआ है। कुल मिलाकर भारत अब आधुनिकीकरण की दुविधाओं की स्थिति से निकल चुका है और विकास तथा आधुनिकता की ओर अग्रसर है।

15.11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बांधाएं

भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण सतत विकास का परिणाम है। भारत में एक निश्चित राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आने को है। गत् 65 वर्षों में यदि पूरी तरह आधुनिकीकरण नहीं हुआ है तो उसके कारण हैं जो व्यवस्था पर दबाव का काम करते हैं। संक्षेप में वह दो प्रकार हैं:-

15.11.1 क्षेत्रवाद की राजनीति

यद्यपि संसदीय व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था अनिवार्य है परन्तु दलों की बहुलता और विशेष रूप से क्षेत्रीय दलों का अस्तित्व आधुनिकीकरण के लिए एक चुनौती है। डी0एम0के0, ए0आई0ए0डी0एम0के0, तेलगूदेशम, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, जनता दल, नेशनल काँग्रेस और बहुजन सजाज पार्टी ऐसी राजनीतिक दल हैं जो क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और अलगाववाद की संकीर्ण राजनीति चलाकर अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। इनका कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण या विचारधारा नहीं होती। यह राजनीतिक व्यवस्था के लिए संकट पैदा करते हैं। केन्द्रीय सत्ता में सम्मिलित होकर यह विघटन की स्थिति पैदा करते हैं।

क्षेत्रवाद का सम्बंध देश के एक क्षेत्र से होता है। जहां भाषा, संस्कृति और एक विशिष्ट आर्थिक समुदाय की समानरूपता है वहां क्षेत्रवाद पनपता है। यह मनोवैज्ञानिक स्थिति है। क्षेत्रवाद के समर्थक स्वयं को राष्ट्र से कम क्षेत्र से अधिक जोड़ते हैं। इनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी नहीं होता यह क्षेत्रीय स्वतंत्रता के पक्षधर होते हैं। भारत में यह स्थिति बड़ी गंभीर है।

क्षेत्रीय अनेकता क्षेत्रवाद का कारण है यहां लगभग दो दर्जन परिभाषित एक रूप भाषाई क्षेत्र हैं। इनकी अपनी संस्कृति अपनी ऐतिहासिक परम्पराएं हैं। अनेक अन्य तत्वों ने इनका निर्माण किया है। जिनमें जन्म जातीय, धार्मिक, राजनीतिक और पारम्परिक तत्व हैं।

भारत में क्षेत्रवाद की अनेक मांगे हैं जिनमें भारतीय संघ से अलग होना, प्रथक राज्य का दर्जा, अन्तर्राज्य में विवाद आदि हैं। तमिलनाडू, नागालैंड, मिजोरम, खालिस्तान और जम्मू-कश्मीर राज्य में ऐसी अलगाववादी मांगे उठी हैं। मेघालय, तिलंगाना, विदरभा, हरित प्रदेश, पूर्वांचल इत्यादि प्रथक राज्यों की मांगे महत्वपूर्ण हैं। उत्तराखण्ड, झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के निर्माण ने प्रथक राज्य की मांग को बढ़ावा दिया है। महाराष्ट्र, मैसूर सीमा विवाद जिसमें आन्ध्रा और कर्नाटक का जल विवाद प्रसिद्ध है। कृष्णा आयोग 2011 ने इस विवाद को हल करने का प्रयास किया है।

एक नया क्षेत्रवाद सामने आया है। जिसका सम्बन्ध आंतरिक प्रवास (माईग्रेशन) से महाराष्ट्र में यह समस्या विकट है जहां उत्तर भारतीय प्रवासीयों के विरुद्ध शिवसेना ने एक संगठित आंदोलन छेड़ रखा है। आसाम में भी यह समस्या विकट है।

यह कहा जा सकता है कि पहचान का संकट आर्थिक विकास की विशमता और संकीर्ण निहित स्वार्थ क्षेत्रवाद को जन्म देते हैं राजनीतिक व्यवस्था के साम्य को बिगाड़ते हैं।

15.11.2 धार्मिक राजनीति

धर्मनिरपेक्षता आधुनिकीकरण की एक अनिवार्य शर्त है। इसका अर्थ है एक भौतिक जीवन जो धर्म के बंधनों से मुक्त हो। जहां आस्था सर्वोपरि न हो लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति का कोई निजी धर्म न हो। धर्म निरपेक्ष राजनीति को धर्म से अलहदा करती है। धर्म का विरोध नहीं लेकिन धर्म का सहयोग भी नहीं। यह राज्य का लक्ष्य है राज्य धर्म की आजादी देता है लेकिन धार्मिक नहीं बनाता। राज्य के सामने सब समान है। कल्याणकारी राज्यधर्म का पौशक नहीं होता। वह अर्थ व्यवस्था का पौशक होता है। संविधान ने धर्म निरपेक्षता राज्य की गारंटी दी है।

लेकिन सच है कि जहां संविधान की आत्म धर्मनिरपेक्ष है वहां व्यवस्था में इस आत्मा को कुचला गया है। स्वयं डा० राधाकृपा और महात्मा गांधी धर्मपरक राजनीति के पक्षधर थे और आज भारत की पूरी राजनीति किसी न किसी तरह धर्म केन्द्रित है। लगभग सभी धर्म अंधविश्वासों, अताकिंक हठधर्मों और कुरीतियों से पीडित है। सब धर्मों के सम्मान का अर्थ है कि सारी गंदगी का सम्मान। राज्य कुरीतियों का निवारण करने में सक्षम नहीं है। धार्मिक पाखंड समानता स्वतंत्रता और भाईचारे को निषेध करता है। सर्वधर्म समाभाव का विचार एक कोरी कल्पना है।

लगभग सभी धर्मों में धार्मिक कट्टरपन और रूढीवाद पनपा है। समान व्यक्तिक कानून लागू नहीं है। न्यायपालिका आस्था और धर्म के आधार पर निर्णय देती है। यह स्थिति गंभीर है।

राजनीतिज्ञ सत्ता प्राप्ति के लिए धर्म का सहारा लेते हैं। सम्प्रदायिक आधार पर वोट बैंकी की राजनीति राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करती है। राज्य धर्म का पौशक है। धार्मिक समूहों से गठजोड़ करता है और धार्मिक आदेशों (फतवों) का समर्थन करता है।

कुल मिलाकर भारतीय राजनीति व्यवस्था धर्म के दबाव में है, जो आधुनिकीकरण के लिए एक खतरा है।

15.11.3 भ्रष्टाचार और आधुनिकीकरण

सन्थानम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि भारत पुनः सोने की चिड़िया बन सकता है। यदि यहां भ्रष्टाचार न हो सन्थानम को अब से लगभग 30 साल पहले दुख था कि भारतीय न्याय पालिका जो भ्रष्टाचार का शिकार हो गयी है।

तब 2010 से 2011 में यह स्थिति क्या है। सम्भवतः जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार की पकड़ मजबूत हुई है। जब पैमाने पर घोटोले इस बात का संकेत है कि भ्रष्टाचार ने पूरी तरह आर्थिक व्यवस्था को दबा लिया है। सुखना भूमि घोटाला इसका उदाहरण है जिसमें जनरल राथ को कोर्ट मार्शल से दण्डित किया गया। अर्थात् अब सैना में भी कीटाणु प्रवेश कर गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भ्रष्टाचार पर उच्च न्यायालय को फटकार यह सिद्ध करती है कि न्यायपालिका दूषित हो चुकी है। 2-जी स्पैक्ट्रम घोटाला एक और उदाहरण है। कामान्स वेल्थ खेलों में जो घोटाले हुए वह सर्वविधित है। मुम्बई आदर्श भवन का काण्ड सैनिक पदाधिकारियों, बाबुओं और नेताओं के असली चहरे को दर्शाता है क्या यह स्थिति भारत को महानतम आर्थिक शक्ति बनाने में सहायता प्रदान कर सकती है। इसमें संदेह है।

जब आर्थिक व्यवस्था चर्मरोग थी तो राजनीतिक व्यवस्था का साम्य बिगड़ गया और इस तरह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को ठेस पहुंचेगी।

कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता, धार्मिक कहरता, भाषावाद, क्षेत्रवाद भारतीय आधुनिकीकरण की बड़ी बाधाएं हैं।

15.12 सारांश

संक्षेप में के उक्त भाग में जो तथ्य हमने पढ़े हैं उनमें राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ, यह अवधारणा क्यों और कैसे पनपी, किन राज्यों का राजनीति शास्त्रियों ने अध्ययन किया, कौन से महत्वपूर्ण राजनीति शास्त्री थे जिन्होंने आधुनिकीकरण की अवधारणाएं निर्मित की, जैसे विशयों की विवेचना की गई है।

साथ ही आधुनिकीकरण के प्रतिमानों, उसके प्रभावों, परिवर्तन शीलताओं जिनमें परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट सम्मिलित है, का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है। राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास का गहरा सम्बन्ध है। दोनों का लक्ष्य आधुनिक समाज की रचना करना है। उन प्रतिमानों या कारकों को स्पष्ट किया गया है जो आधुनिक समाज के लिए अनिवार्य है। परम्परागत समाज का विखरना और उसके स्थान पर एक धर्म निरपेक्ष, उदारवादी, लोकतांत्रिक समाज का उदित होना, आधुनिकीकरण की अनिवार्यता है। यह कैसे होता है, इस प्रक्रिया को यहाँ समझाया गया है।

आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु आधुनिकीकरण विखर भी सकता है यदि उसकी संरचनाएँ अक्षम हों।

राजनीतिक व्यवस्था के आधुनिकीकरण में नौकरशाही ने सकरात्मक भूमिका भी निभाई है और नकारात्मक भी। नौकरशाही एक ऐसा जाल है जिसमें जनता और उसके प्रतिनिधि बेबस नजर आते हैं। परन्तु यदि असैनिक सेवा वर्ग अपना उत्तरदायित्व निभाये तो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सुगम हो सकती है।

जहाँ तक पंचायती राज्य का सम्बन्ध है इसका लक्ष्य बहुत सुन्दर है। यह भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था प्राण स्रोत है। विकेन्द्रीकरण ने जन भागीदारी सुनिश्चित की है। लेकिन पंचायती राज्य ने संघर्ष और द्वन्द को भी बढ़ावा दिया है। यह स्थिति आधुनिकीकरण में एक बाधा है।

दलीय व्यवस्था ने यद्यपि एक ओर भारत की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सहयोग दिया है वहाँ उसमें बाधाएँ भी उत्पन्न की है। अक्सर राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक दलों के आचरण के कारण दबाव में आ जाती है। संसद को न चलने देना एक उदाहरण है।

अंत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दौरान लोगों में उत्पन्न दुविधाओं की भी समझाया गया है। कुल मिलाकर यह स्वीकार किया गया है कि राजनीतिक

15.13 शब्दावली

1. नौकरशाही (ब्यूरोक्रैसी): एक ऐसी प्रशासकीय व्यवस्था जिसमें नीतियों के निर्धारण में असैनिक सेवीवर्ग।
2. दबाव गुट: ऐसे समूह जो राज्य भीतर वर्गों के हितों की पूर्ति के लिए शासन पर दबाव डालते हैं।
3. अभिजात (एलाइट्स): सत्ताधारी कुलनी वर्ग

1514. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1515.. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- S.N.Dubey:Indian Political System.
- 2- L.Prashad :Indian National Movement &Constitutional Movement.
- 3- S.N.Dubey:Political Science Theory.

1516. सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Apter, David : Politics of Modernisation (1965)
2. Pye, Lucian : Political culture and Political Development (1955)
3. Parsons, Talcott : Social System (1951)

151.7 निबंधात्मक प्रश्न

- 1.राजनीतिक आधुनिकीकरण पर निबंध लिखिए।

इकाई 16 : भारत की राजनीतिक संस्कृति

इकाई की रूपरेखा

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 उद्देश्य
- 16.3 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा
- 16.4 राजनीतिक संस्कृति के आधार
- 16.5 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व
- 16.6 राजनीतिक संस्कृति, आधुनिकीकरण और विकास
- 16.7 भारतीय राजनीतिक संस्कृति अपनिवेश काल में
- 16.8 संस्कृतिकरण में सुधार आंदोलनों का योगदान
- 16.9 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आंदोलन
- 16.10 महात्मा गांधी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका
- 16.11 राजनीतिक संस्कृति के विकास में संवैधानिक विकास का महत्व
- 16.12 भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरूप
- 16.13 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता
- 16.14 भारतीय राजनीतिक संस्कृति और भारतीय संविधान
- 16.15 जन साधारण की भूमिका
- 16.16 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति
- 16.17 सारांश
- 16.18 शब्दावली
- 16.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 16.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 16.21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 16.22 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

राजनीतिक संस्कृति समाज के संदर्भ में राजनीतिक विकास का अध्ययन है। धारणा केवल यह है कि एक राजनीतिक पद्यति का दूसरी राजनीतिक पद्यति से अंतर केवल संरचना के आधार पर नहीं होता, बल्कि राजनीतिक संस्कृति की दृष्टि से भी होता है। इसे यूँ समझिये कि यदि इंग्लैण्ड में संसदीय पद्यति सफल हो गयी तो जरूरी नहीं कि भारत या पाकिस्तान में भी सफल हो। कारण राजनीतिक संस्कृतियों की भिन्नता है। प्रत्येक समाज की अपनी एक राजनीतिक संस्कृति होती है जो उस समाज की राजनीतिक व्यवस्था को सार्थकता प्रदान करती है। इतिहास इस संस्कृति का निर्माण करता है।

संस्कृति एक वृहद विचार है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अंग है। इसलिए राजनीतिक संस्कृति के समय से अलग करके समझा नहीं जा सकता। राजनीतिक संस्कृतियों में अंतर होता है। भारत और चीन की राजनीतिक संस्कृति में अंतर है। इतिहास संस्कृति का निर्माण करता है।

लोगों की अभिवृत्तियाँ (एटीट्यूडस) विश्वास, भावनाएँ इत्यादि जो राजनीतिक पद्यति से सम्बन्धित हो राजनीतिक संस्कृति कहलाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि राजनीतिक संस्कृति के लिए एक शासन या राजनीतिक व्यवस्था होनी चाहिए चाहे वह लोकतांत्रिक हो या सैनिक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन के लिए क्षेत्र, कृत्य औरी मूल्य अनिवार्य है। यह तीन बातें भावनात्मक पर्यावरण तैयार करती है। राजनीतिक संस्कृति इन्हीं को अभिव्यक्त करती है। इसलिए मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य है।

सामाजिक संस्कृति के तीन आधार हैं- ऐतिहासिक भौगोलिक तथा सामाजिक आर्थिक। इसका अर्थ है कि इतिहास, भौगोलिक बनावट, सामाजिक मूल्य तथा आर्थिक व्यवस्था राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अहम भूमिका अदा करते हैं। यह आधार लोगो को सोच और प्रभाव डालते हैं तथा राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करते हैं। राजनीतिक संस्कृति स्थिर नहीं है, इसका निरंतर विकास होता रहता है। जब यह परिपक्वता की ओर पहुँचती है तो विकास और आधुनिकीकरण पूर्ण हो जाता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका इसके उदाहरण हैं।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के अपरान्त आप-

- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा को पश्चिमी राजनीतिक शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के संदर्भ में समझ पायेंगे।
- राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा को

- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति की विवेचना करना है।
- भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों के वर्गीकरण के साथ साथ उनके टकराव पर नजर डाली जायेगी।
- संविधान की दृष्टि से भी संस्कृति की विवेचना करना एक लक्ष्य है तथा यह भी देखना है कि जन साधारण का रूख भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रति कैसा है?

16..2 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन अमेरिकी राजनीति शास्त्री उलाम, बियर तथा आमण्ड ने किया है। बाल और पावेल भी इसके समर्थक हैं। बाल के अनुसार “समाज की अभिवृत्तियां (एटीट्यूड्स), विश्वास, भावनाएं और मूल्य जो राजनीतिक पद्यति तथा राजनीतिक मुद्दों से सम्बन्धित होते हैं, राजनीतिक संस्कृति के अंतर्गत आते हैं। इस सम्बन्ध में चार बातों को समझना होगा:

1. समाज के लोगो में एक सामान्य प्रवृत्ति होती है, जैसे भावनात्मक, बैद्विक, नैतिक दृष्टिकोण।
2. सामान्य मानव प्रवृत्ति सामान्य मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों को जन्म देती है।
3. यह मूल्य एक पीढी से दूसरी पीढी तक पहुचते हैं और कुछ संशोधनो के साथ समाज की सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं।
4. समाज की इस सामान्य संस्कृति के कुछ पहलुओं का सम्बन्ध शासन के संचालन से होता है। यही पहलू राजनीतिक संस्कृति है। अर्थात अभिवृत्तियां, विश्वास तथा भावनाएं राजनीतिक आचरण का निर्माण करके एक संस्कृति को विकसित करती हैं।

लूसियन पाई ने राजनीतिक संस्कृति में तीन तथ्यों का अध्ययन करने पर बल दिया है-

1. राजनीति का क्षेत्र क्या है?
2. राजनीतिक क्रिया के मापदण्ड क्या है?
3. वे मूल्य क्या हैं जो राजनीतिक क्रिया के लिए अनिवार्य हैं?

यह कहा जा सकता है कि राजनीति संस्कृति भावनात्मक पर्यावरण को अभिव्यक्त करने का साधन है इस पर्यावरण के अन्तर्गत कोई राजनीति व्यवस्था कार्य करती है।

राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में इतिहास और परिस्थितियां अहम भूमिक अदा करती है। इसलिए किसी समाज की राजनीतिक संस्कृति को उसके इतिहास के संदर्भ में देखना होगा।

सार यह है कि राजनीतिक संस्कृति जिन विशेष घटकों पर टिकी होती है वे हैं-मूल्य, विश्वास तथा अभिवृत्तियां, जो लोगो की एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में होती है। उदाहरण के लिए यदि व्यवस्था लोकतांत्रिक है तो लोगो की अपेक्षाएं होती है कि चुनाव समय पर और निष्पक्ष हो, विश्वास खो देने पर मंत्री त्यागपत्र दें, संसद ठीक प्रकार से चले, कार्यपालिका उत्तरदायी हो, प्रशासन और शासन चुस्त हो, विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार मिले, प्रत्याशियों को चुनने की स्वतंत्रता हो। एक संवेदनात्मक अभिवृत्ति यह है कि विधायकों को संसद में पूरी भद्रता का आचरण करना चाहिए, वे आदर्शों के विपरीत व्यवहार न करें। इसी सोच का नाम राजनीतिक संस्कृति है।

दूसरे शब्दों में इसे यूं समझिये कि जब संसद या कार्यपालिका संवेदनात्मक अभिवृत्तियों के विपरीत कार्य करती है: दलबल होता है, विधिवत निर्वाचित सरकार गिरा दी जाती है, भ्रष्ट मंत्री अपने पद पर बने रहते है तब उनके विरुद्ध जो भावनाये पैदा होती है, जो जन आक्रोश उमड़ता है, जो आंदोलन खड़े होते हैं जो क्रान्तियां आती है, वह सब राजनीतिक व्यवस्था और अभिवृत्तियों की रक्षा के लिए होता है।

16.3 राजनीतिक संस्कृति के आधार

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लोगो के रख रखाव और विश्वास पर कोई राजनीतिक व्यवस्था टिकी होती है। इस संस्कृति के वे तत्व कौन से है जिन की यह उपज होती है या जो इसके आधार भी बन सकते है, हमें यह देखना होगा। बियर तथा इलाम ने ऐसे तीन आधारों को स्वीकार किया है: ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सामाजिक-आर्थिक।

किसी समाज में एक राजनीतिक व्यवस्था क्यों बनी रहती है और क्यों टूटती है, ये इतिहास बताता है कारण इस समाज की संस्कृति के गर्भ में खोजे जा सकते है। इतिहास इसमें सहायता करेगा। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड में राजनीतिक परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढंग से धीरे-धीरे आया। यह राजनीतिक संस्कृति का परिणाम है जिनका निर्माण सैकड़ों वर्षों में हुआ। एडमण्ड बर्क ने इस संस्कृति की प्रशंसा की। दूसरी ओर फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था 1789 में क्रांति के माध्यम से टूट गयी और आगे भी उसके टूटने की संभावना बनी रही। तब तक फ्रांस में जो राजनीतिक संस्कृति पनपी उसका आधार हिंसा था। उसमें संवैधानिक, अहिंसात्मक लोकतंत्रीय मूल्यों के प्रति अविश्वास था। राजनीतिक अवधारणा की दृष्टि से फ्रान्स की क्रांति की आलोचना की गयी। क्योंकि वह अधिक टिकाउ नही

थी। इसके विपरीत अमेरिका और भारत ने इंग्लैण्ड का अनुसरण किया, क्योंकि इन देशों को एक ऐतिहासिक आधार मिल गया जो लोकतांत्रिक था।

राजनीतिक संस्कृति का दूसरा आधार है, भौगोलिक परिस्थितियां और बनावट। इंग्लैण्ड को सजातीय बनाने का श्रेय उसकी सीमाओं को है। परिणाम स्वरूप लम्बे समय तक यहां अन्य जातियों के लिए प्रवेश द्वार बंद रहे और वहां वह समस्याएं नहीं आयीं जो भारत के सामने आयीं। भारत की लम्बी, चौड़ी सीमाओं के कारण यहां पर जाति और धर्म के लोगो का प्रवेश हुआ और परिणाम स्वरूप भारत एक विजातीय (हैट्रोजीनियस) समाज बन गया। सजातीयता एकता लाती है और सरल सामान्य राजनीतिक संस्कृति बनती है।

भौगोलिक परिस्थितियों ने अंतराष्ट्रीय संस्कृति को भी जन्म दिया है। परन्तु इसका आधार भी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्कृति माना जायेगा। प्रभाव क्षेत्रों की राजनीति को निश्चित करने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उसकी भौगोलिक स्थिति को है।

राजनीतिक संस्कृति का तीसरा निर्धारक तत्व सामाजिक आर्थिक स्थिति हैं सामाजिक आर्थिक विकास के दो पहलू हैं- शहरी आद्योगीकरण समाज तथा ग्रामीण कृषक समाज। प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति और विकास पहले रूप की विशेषता है, अनुरूपता और जड़ता दूसरे रूप की। परन्तु कुछ समय के पश्चात् विज्ञान और तकनीकीकरण का प्रभाव औद्योगिक समाज और कृषक समाज दोनों पर तेजी से पड़ता है। उत्पादन बढ़ता है, यातायात और संचार व्यवस्था विकसित होती है, आयात और निर्यात बढ़ता है, प्रवासन (माइग्रेशन) और उत्प्रवास (इनमीग्रेशन) की प्रक्रिया आरंभ होती है। इसका प्रभाव क्रांतियों और युद्धों पर पड़ता है।

परिणाम स्वरूप लोगों के राजनीतिक मूल्यों तथा विश्वासों में परिवर्तन आने लगते हैं। कृषक मजदूर बन जाते हैं, मजदूर बोरजुआई बन जाते हैं और साम्राज्यवादी व्यवस्था लागू हो जाती है। इस प्रक्रिया का प्रभाव राजनीति पर पड़ता है और नयी राजनीतिक संस्कृति पनपती है।

16.4 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक स्थायित्व और परिवर्तन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यह लोगो को सत्ता से जोड़ती है। सत्ता राजनीतिक व्यवस्था में स्थायित्व, प्रभावशीलता तथा प्रतिनिधित्वता स्थापित कर सकती है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में लोकतंत्रिय मूल्य लोकतंत्रिय सत्ता का निर्माण करते हैं। जो राजनीतिक व्यवस्था में गहरा स्थायित्व लाते हैं, जबकि फ्रांस में केन्द्रीयकरण की व्यवस्था है और वहां इसकी प्रशंसा होती है। दोनों देशों में अपनी-अपनी राजनीतिक संस्कृति है। यहां यह विश्वास टूट जाता है कि केवल लोकतांत्रिक या संसदीय व्यवस्था ही

अच्छी होती है। सर्वाधिकारवाद भी अच्छा हो सकता है। अगर सत्ता में स्थायित्व पैदा करो। चीन इसका उदाहरण है।

16.5 राजनीतिक संस्कृति आधुनिकीकरण और विकास

राजनीतिक संस्कृति से जुड़ी हुई अगली समस्या है राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास की। यही राजनीतिक परिवर्तन है। परम्परावाद तथा आधुनिकीकरण एक दूसरे के विरोधी है। नेतृत्व और समय समाज को आधुनिकीकरण के ओर ले जाना चाहते हैं, परम्परावाद मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करता है।

राजनीतिक विकास के दो पहलू हैं- अनुदार और प्रगतिशील। अनुदार पहलू क्रांतिकारी परिवर्तन का विरोधी है, जबकि प्रगतिशील पहलू धीरे-धीरे आधुनिकीकरण का हामी है। इसके अन्तर्गत परम्परागत संस्कृति की सजीव बातों को स्वीकार करके उनका मेल नवीन व्यवस्थाओं से कराया जाता है। नेहरू का यही दृष्टिकोण था। यह बदलाव तीसरी दुनिया की विशेषता है।

16.6 भारतीय राजनीतिक संस्कृति उपनिवेशकाल में

17वीं सदी में अंग्रेज भारत में आये तब यहां मुगल का राजतंत्रीय शासन था। लोग अधीनस्थ थे और खामोशी से सत्ता को स्वीकार करते थे। अंग्रेजों ने पहले व्यापारियों के रूप में भारत में अपन प्रभाव जमाया। फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्लासी युद्ध 1757 के बाद भारत पर राजनीतिक अधिकार जमा लिया। एक लम्बे समय तक यहां भी लोग कम्पनी के शासन को सहन करते रहे। उनकी भागीदारी शून्य थी। 1857 में यह धैर्य टूट गया। लोगों की सोच बदली, कुछ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई और इस तरह विद्रोह हो गया। यहां से भारत में राजनीतिक संस्कृति का निर्माण आरम्भ होता है। इस सोच का एक परिणाम यह निकला कि कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और भारत की सत्ता की बागडोर ब्रिटिश ताज और संसद के हाथों में आ गयी। यहां से सवैधानिक विकास शुरू हो गया। इसका अर्थ यह नहीं था कि भारत में लोकतंत्र की स्थापना आरम्भ हो गयी। राजनीतिक व्यवस्था सर्वाधिकारवादी बनी रही।

यह साम्राज्यवाद का काल था। भारत इंग्लैण्ड का पूरी तरह से उपनिवेश बन गया। वाणिज्य पूंजी जो कम्पनी की विशेषता थी, औद्योगिक पूंजी में बदल गयी और अन्ततः उसने वित्त पूंजी का रूप ले लिया। सारांश यह है कि उपनिवेशवादी दौर में भारत में एक आर्थिक व्यवस्था पनपी जो औद्योगिकीकरण का परिणाम थी। 19वीं सदी तक यहां इसका पूरा विकास हो गया। भारतीय घरेलू उद्योग धन्धे चौपट हो गये लेकिन भारतीय सब कुछ सहन करते रहे। फिर भी निराशा और असंतोश गहराया।

आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ राजनीतिक व्यवस्था भी अंकुरित होने लगी। 1773 के रेग्युलेटिंग एक्ट ने भारत में एक गर्वनर-जनरल, उसकी परिशद और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की। 1784 के एक्ट में दोहरा शासन पूरी तरह अस्तित्व में आ गया। वाणिज्य पूंजी ने भारत को इंग्लैण्ड का एक बाजार बना दिया जो कच्चा माल भी निर्यात करता था। आधुनिक इंग्लैण्ड वास्तव में औद्योगिक पूंजीवाद के कारण भारतीय लूट पर बना। प्रथम युद्ध से पूर्व भारत में वित्त पूंजी का दौर रहा। भारत का शोषण पूरी तरह बढ़ गया। असंतोश और गहराया।

16.7 संस्कृतिकरण में सुधार आन्दोलनों का योगदान

जहाँ एक ओर शासन की नीतियों ने राष्ट्रीय भावनाओं को जन्म दिया, वहाँ धार्मिक और सुधार आन्दोलनों ने इस प्रवृत्ति का विकास किया। यहाँ यह मानना होगा कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में विशिष्ट जातियों की भूमिका का बहुत महत्व होता है। यह व्यक्ति व्यवस्था अथवा इतिहास से प्रभावित होकर जन साधारण की सोच बदलते है। ऐसे व्यक्तियों में स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, राज राम मोहन राय, सर सय्यद अहमद खॉ इत्यादि आते हैं। आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थ्योसाफीकल सोसायटी भारतीयों को उनके गौरवशाली अतीत की ओर ले जाना चाहती थी। यह वेदों को ज्ञान का स्रोत मानते थे।

इन आन्दोलनों ने भारतीयों में पश्चिमी जगत के बारे में सोच बदली। वे स्वयं को अब श्वेत पुरुष का भार नहीं मानना चाहते थे। वे अपने भाग्य का फैसला अब स्वयं करना चाहते थे।

इस तरह धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने प्रत्यक्ष रूप से जिस तरह उनकी इच्छाओं, भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं और अभिव्यक्तियों को प्रभावित किया उसने तत्कालीन शासन या सत्ता के प्रति धीरे धीरे एक नकारात्मक रुझान पैदा किया जो उस समय की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में साधक हुआ।

16.8 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आन्दोलन

निराशा, हताशा और उदासी का परिणाम 1857 का विद्रोह था। वह पहला स्वाधीनता संग्राम था जो वेरहमी से कुचल दिया गया। सर सय्यद ने “असबाबे बगावत-ए-हिन्द, में लिखा कि जातीय दंभ और सामाजिक असमानता विद्रोह का कारण थे। विद्रोह के बाद ब्रिटिश संसद का शासन आरंभ हुआ। नीतियाँ बदली। 1858 के एक्ट ने कुछ मरहम लगाया। अतः शिक्षित भारतीयों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति पुनः सोच बदली। ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन 1851 तथा इण्डियन एसोसिएशन 1876, बंगाल नेशनल लीग 1884 इत्यादि अस्तित्व में आये। इसका लक्ष्य भारतीयों और अंग्रेजों के दृष्टिकोण में ताल मेल बिठाना था।

जैसा कि लिखा जा चुका है राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में भूमिकाओं और अभिकर्ताओं का बड़ा योगदान होता है। ओ हयूम ऐसे ही अभिकर्ता थे। दादा भाई नैरोजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने हयूम का साथ दिया। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अस्तित्व में आ गई।

कांग्रेस की पहली विचार धारा को उदारवादी माना जाता है। अर्थात् शासन के प्रति नरम दृष्टिकोण, ब्रिटिश शासन को एक वरदान मानना, मांगों के लिये संवैधानिक तरीके अपनाना, स्वशासन की मांग करना इत्यादि। इस उदारवाद का कारण था नेतृत्व पर अंग्रेजी या पश्चिमी संस्थाओं, विचारों, मूल्यों, संस्कृतियों का प्रभाव। अतः 1885 से 1900 तक भारतीयों का यही दृष्टिकोण रहा। बाद में कांग्रेस में उग्र विचारधारा पनपी। कारण था शासन की निरंकुशता और उदासीनता, कुप्रशासन, बंगाल का विभाजन और दमन। इस उग्रता ने 1905 में स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया। स्वतंत्रता की मांग उठी, द्वन्द बढ़ा और कांग्रेस का विभाजन हो गया।

उधर मुसलमान आशंकित होने लगे। बहुसंख्यक अल्पसंख्यक मनोवृत्ति पैदा हुई। स्वराज्य आन्दोलन ने इस द्वन्द को तेज किया। परिणाम स्वरूप मुस्लिम लीग अस्तित्व में आ गई। यहाँ से आरम्भ हुई साम्प्रदायिकता की राजनीति और राष्ट्रवादी विचारों का विघटन होने लगा। लार्ड कर्जन और लार्ड मिंटो इसके लिए जिम्मेदार थे। 1916 तक इस राजनीति का वरचस्व रहा। 1909 के एक्ट या मारले-मिंटो सुधारों ने भी इसकी तीव्रता को कम नहीं किया। लेकिन जैसे ही यह महसूस किया गया कि धर्म विभाजन या वर्ग विभाजन का लाभ सत्ता पक्ष उठा रहा है, तब 1916 में लखनऊ पैक्ट अस्तित्व में आ गया। उदार अनुदार का मेल और हिन्दु मुस्लिम एकता इसका परिणाम था।

16.1.9 महात्मा गान्धी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका

हम पहले लिख चुके हैं कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अभिकर्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। महात्मा गान्धी इस अर्थ में अद्वितीय अभिकर्ता थे। दक्षिण अफ्रिका से लौटकर उन्होंने अपनी सत्याग्रह के उपकरण का सफल प्रयोग किया। यह प्रयोग एक भावनात्मक अभिवृत्ति पर टिका हुआ था जिसे गान्धी ने अहिंसा कहा। खिलाफत के संकट और रौलेट एक्ट ने उनके सत्याग्रह के प्रयोग का अवसर दिया। जलियान वाला बाग काण्ड ने समस्या और उग्र कर दी। भारतीयों में सत्ता के प्रति आक्रोश था। विद्रोह या हिंसक क्रान्ति का वातावरण बना ऐसे में महात्मा गान्धी के सत्याग्रह के उपकरण ने लोगों को शान्तिपूर्ण तरंगों की ओर मोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन 1920 इस का परिणाम था। भारतीय अहिंसा के मार्ग पर चल पड़े। यह एक बड़ी क्रान्ति थी। लेकिन चौरी चौरा काण्ड के बाद महात्मा गान्धी ने महसूस किया कि लोग अभी पूरी तरह से अहिंसक नहीं हुये थे, उन्होंने आन्दोलन वापस ले लिया। वास्तव में महात्मा गान्धी अहिंसात्मक राजनीतिक संस्कृति के पक्षधर थे। 1930 और 1932 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी इसी संस्कृति की अभिव्यक्ति थे।

गान्धी जी के आन्दोलनो का दूसरा पक्ष यह था कि वह समाज में किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष नहीं चाहते थे। वह आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में एकीकरण और एकता समरसता के पक्षधर थे। 1923 से लेकर 1947 तक उनकी पूरी राजनीति इसी बात पर टिकी रही।

लेकिन हमें एक तथ्य यही भी स्वीकार करना होगा कि भारतीय सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक अनेकता और द्वन्द से पीड़ित रहे हैं। इसका लाभ सत्ता पक्ष ने उठाया है। भारत का 1923 से 1947 तक का इतिहास द्वन्द और संघर्ष का इतिहास है जिसने अन्ततः भारत का विभाजन करा दिया। यद्यपि गान्धीवादी आन्दोलन ने भारतीयों में स्वराज और स्वतंत्रता की चेतना पैदा की और उनमें राष्ट्रीयता की भावना जन्मी लेकिन अखण्ड भारत के रूप में वे एक राष्ट्र की कल्पना को साकार नहीं कर सके। आन्दोलनो का नतीजा केवल यह निकला कि वे अब किसी भी तरह ब्रिटिश शासन को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे।

16..10 राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में संवैधानिक विकास का महत्व

भारत में संवैधानिक विकास वास्तव में 1858 से आरम्भ होता है। 1857 के विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया था कि भारतीय एकाधिकारवादी सत्ता को अधिक सहन नहीं कर सकते थे। अंग्रेज भारतीयों की मनोवृत्ति को समझ रहे थे। भारतीय सत्ता में किसी न किसी रूप में भागीदारी चाहते थे। 1858 के अधिनियम ने ताज को सत्ता सौंप दी। एक भारतीय परिशद की स्थापना की गई। दोहरे शासन की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। परन्तु स्थिति ज्यों की त्यों रही।

इधर भारत के नवयुवक अंग्रेजी उच्च शिक्षा की ओर आकृषित हो रहे थे। अंग्रेजी साहित्य, दर्शन, मूल्यों और इतिहास का उन पर प्रभाव पडने लगा था। यद्यपि वे पूरी तरह ब्रिटिश शासन को एक वरदान समझते थे लेकिन भारतीय सत्ता में वे भागीदारी चाहते थे। उनकी यह सोच इंग्लैण्ड से प्रभावित एक नई राजनीतिक संस्कृति को जन्म दे रही थी। इसी नई सोच का नतीजा था 1861 का भारतीय परिशद अधिनियम।

16..11 भारतीय राजनीतिक संस्कृति का वर्तमान स्वरूप

भारत की राजनीतिक संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ पश्चिमी लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जो बहस का विषय है। ऐसे विचारकों में माइरन बीवर और मारिस जॉस के नाम उल्लेखनीय हैं। यहाँ उनके विचारों पर संक्षेप में विचार किया जायेगा।

भारत में स्वतंत्रता के बाद से लोगों का आधुनिकीकृत होना आरम्भ हो गया है। इनका अपना राजनीतिक ज्ञान अपने राजनीतिक विश्वास, अपनी राजनीतिक अभिवृत्तियों, राजनीतिक धारणाएँ, शासन के प्रति दृष्टिकोण इत्यादि हैं। यह राजनीतिक प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भागीदार हैं।

इनकी राजनीतिक संस्कृति स्थानीय स्तर से विकसित होकर जिला स्तर की राजनीति और जिले से राज्य स्तर की राजनीति में प्रवेश कर रही है। यह सारी प्रक्रिया कैसे चल रही है, किन चरणों से होकर गुजर रही है यह अध्ययन का विशय है।

16.12 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता

भारतीय राजनीतिक संस्कृतियां जटिल और अस्पष्ट है। इनके यर्थात को समझना कठिन है। भारत में सिद्धान्त में और व्यवहार में गहरा अंतर है। इसलिए राजनीति के केवल बाहरी रूप को देखकर वास्तविकता का पता लगाना कठिन है।

दूसरे भारत एक बहुलवादी देश है। यहां संस्कृतियों में गहरी असमानता है इसलिए राजनीतिक संस्कृतियों में भी असमानता और अस्पष्टता है। धार्मिक और भाषाई अंतर राजनीतिक संस्कृतियों को और उलझा देता है। जिसे समझना कठिन है। प्रादेशिक विभिन्नता अपना कार्य करती है। बिहार की और बंगाल की राजनीतिक संस्कृति गुजरात और महाराष्ट्र से भिन्न है। पहली वर्ग संघर्ष पर आधारित है तो दूसरी वर्ग सहयोग पर। इसलिए भारतीय राजनीतिक की एक पद्यति खोजना कठिन है।

तीसरे, लोगो में आचरणों, व्यवहारो, मूल्यों और अभिवृत्तियों में गहरा अंतर है। महाराष्ट्र के लोगो की सोच और तमिलनाडु के लोगो की सोच में अंतर है। मॉरिस जॉस ने भारतीय राजनीतिक जीवन के तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, जिसको उसने भारतीय राजनीति के तीन मुहावरे कहा है। यह है आधुनिक (मार्डन), परम्परावादी (ट्रेडीशनल) और संतवादी (सेन्टली)। अर्थात भारत में तीन विचारो वाले लोग हैं- वे जो पश्चिमी की आधुनिकता से प्रभावित हैं। जो उदार है, धर्मनिरपेक्ष है, समानता और स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं। देश में तकनीकी विकास का वे कारण है। दूसरे वे लोग है जो परम्परावादी विचारो के पोशक है। यह जाति भेदभाव पर विश्वास रखते है। स्थानीय हितों को महत्व देते है। तीसरा वर्ग वह है जो निस्वार्थ सेवा और आत्म-बलिदान में विश्वास रखता है। यह नैतिक साधनों को अपनाते है। इनके मूल्य ही आदर्श होते है। यह छिपकर काम करते है। राजनीतिक तौर पर महत्वकांक्षी नही होते।

16.13 भारतीय राजनीति संस्कृति और भारतीय संविधान

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भाषा और आचरण का वास्तव में निश्चयकरण भारतीय संविधान ने किया है। अर्थात भारतीय संविधान में निहित आदर्शों और सिद्धान्त भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र का निर्माण करते है। संसदीय भाषा और विचार, उच्च प्रशासकीय पदाधिकारियों का दृष्टिकोण और प्रशासन का स्वरूप, राजनीतिक दलो का संगठन और उनके आचरण की सीमाएं और मीडिया

या समाचार पत्रों की भाषा आदि तक राजनीतिक संस्कृति का नमूना पेश करते हैं। संविधान ने भारतीयों को विकसित देशों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है।

उधर संवैधानिक विशेषता के कारण न्यायपालिका की जो व्यवस्था है उसने राजनीति को आधुनिक और सुसंस्कृत करने का प्रयास किया है। न्यायपालिका की सक्रीयता सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलती है। वास्तव में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करके राजनीतिक व्यवस्था को नियंत्रित करता है।

राज्य की नीति के निदेशक तत्व भारतीय संविधान की मूल भावना-लोकतंत्र, सामाजवाद और धर्मनिरपेक्षता का प्रतिपदान करवाते हैं। यह समानता की अवधारणा को साकार करते हैं।

संघात्मकता ने भारतीय राजनीति को विकेन्द्रीकृत किया है। वास्तव में संघात्मकता ने देश की विभिन्न राजनीतिक संस्कृतियों के मध्य एक ताल-मेल पैदा किया है। जिस से उत्तरदायित्व और समरसता की भावना बढी है।

16.14 जनसाधारण की भूमिका

यहां जनसाधारण से अर्थ आम भारतीयों की आशाओं, उपेक्षाओं, संवेदनाओं, दृष्टिकोणों और अभिवृत्तियों से है। अर्थात् सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के बारे में वे क्या सोचते हैं और कैसा आचरण करते हैं। उदाहरण के लिये लोगो का यह विचार है कि उनके नेता भ्रष्ट हैं, लापरवाह हैं और अक्षम हैं, सरकारों में शासनीयता (गर्वनेंस) का आभाव है (जैसा कि 15 जनवरी 2011 को भारत के लगभग 20 प्रतिष्ठित उद्योग पतियों ने शासन की उदासीनता के सम्बन्ध में मंत्रियों को पत्र लिखा) सत्ताधारी जनता का पैसा लूटते हैं, करोड़ों रूपये के हार पहनते हैं और केवल अपने वर्ग को समर्पित हैं। अथवा लोगो की यह सोच कि नेता असुसंस्कृत, अशिक्षित और अपराधी हैं। संसद में उनका आचरण अशोभनीय और उनकी भाषा गैर संसदीय है। यह कि राजनीतिक दलों का आचरण, उनके हथकण्डे, उनकी तकनीकी लोकतंत्र के लिए एक खतरा है या उनका यह दृष्टिकोण कि उनका नेतृत्व माफियाओं, जमाखोरो, तस्करो इत्यादि के चंगुल में हैं। आम भारतीय की राजनीतिक संस्कृति को दर्शाता है। यह वह संस्कृति है जिसमें निराशा है और हताशा है।

परन्तु आम भारतीय संविधान और न्यायपालिका की सक्षमता ओर सूचना के अधिकार की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं। इसलिए उनका मानना है कि भारत कमियों के बाद भी एक मजबूत शासन व्यवस्था वाला देश है। इसमें आघातों और दबावों का सामना करने की क्षमता है। इस तथ्य ने भारतीय राजनीतिक संस्कृति को सहभागीदारी का रूप दिया है।

16.15 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति

अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति भारतीय राजनीति की विवेचना से राजनीतिक संस्कृति के अवधारणात्मक संदर्भ में कुछ सामान्य तथ्य सामने आते हैं। जो इस प्रकार हैं -

1. राजनीतिक पद्यति और मुद्दों से सम्बन्धित भारतीयों की अपनी अभिवृत्तियां हैं। उनमें कहीं न कहीं सामान्यता है। जैसे राष्ट्रियता की भावना।
 2. भारत में एक भावनात्मक पर्यायवरण है, जो राजनीतिक संस्कृति को निश्चित करता है। जैसे लोकतंत्र के प्रति आस्था।
 3. भारतीय राजनीतिक संस्कृति के तीनों आधार हैं - ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक। इस कारण यहां द्वन्द भी है और समरसता भी।
 4. भारत में समय बदलने के साथ मूल्य और विश्वास भी बदले हैं। लोग राजनीति का अर्थ समझने लगे हैं। अर्थात् राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण हुआ है।
 5. भारतीय राजनीतिक संस्कृति ने बाधाओं के बाद भी राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व दिया है। संसार भारतीय लोकतंत्र की प्रशंसा करता है।
 6. राजनीतिक संस्कृति ने यद्यपि कहीं न कहीं आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर है।
 7. भारतीय राजनीतिक संस्कृति लोकतंत्र, साम्राज्यवाद उदारवाद और धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा पर टिकी है। इसमें गांधीवादी विचारों का समावेश है।
 8. भारतीय राजनीतिक संस्कृति में भागीदारों और अधीनस्थों की भूमिका है। इनमें भूमिकाएं भी हैं और अभिकर्ता भी।
- संक्षेप में अवधारणात्मक दृष्टि से भारत में एक राजनीतिक संस्कृति पनपी है यद्यपि वह जटिल है।

16.16 सारांश

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा ने आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में बहुत योगदान दिया है। इसने एक ऐसा उपकरण प्रदान किया है जो राजनीतिक विज्ञान की सूक्ष्म-वृहद (माइक्रो-मैक्रो) खाई को पाटने में सफल है। इस अवधारणा से सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाना सम्भव हुआ है। राजनीतिक शास्त्री अब सामाजिक और सांस्कृतिक शक्तियों का अध्ययन करके राजनीतिक संस्कृति को पहिचानेगा। यहां व्यक्ति की तार्किक और अतार्किक सभी बातों का अध्ययन किया जायेगा। परन्तु इसका अनुदार और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण राजनीतिक संस्कृति को उलझा देता है। यह अवधारणा अस्पष्ट और भटकी हुई है।

भारतीयों की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में उपनिवेशवादी व्यवस्था, राजनीतिक एकाधिकारवाद, जातीय दंभ और असमानता, अन्याय और दमन का बड़ा हाथ है। 1857 के विद्रोह से लेकर 1886 तक की कहानी यही है। 1885 में कांग्रेस के रूप में उदारवादी और 1900 में इसी दल में उग्रवादी चेतना ने राजनीतिक संस्कृति को पनपने में बड़ा योगदान दिया। बंगाल विभाजन के परिणाम स्वरूप 1905 की राजनीति ने देश में उग्र राष्ट्रवाद के जन्म दिया। लेकिन गान्धीवादी आन्दोलनो ने भारतीयों को शान्तिमय तरंगों की ओर मोड़ दिया। यह एक अद्वितीय अनुभव था। 1923 के बाद से भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता ने खुलकर खेल खेला। जिसका परिणाम भारत के विभाजन के रूप में निकला।

राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी और इसके प्रति जागरूकता राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण (सैक्यूलराइजेशन) है। राजनीतिक संस्कृति के लौकिकीकरण से राजनीतिक स्थायित्व आता है। राजनीतिक विकास और आधुनिकीकरण राजनीतिक संस्कृति का परिणाम है। राजनीतिक विकास के दो पहलू हैं - अनुदार और प्रगतिशील। पहला क्रान्ति का विरोधी है दूसरा विकास का समर्थक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन में विचारधारा का बहुत महत्व है। विचारधारा राजनीतिक मूल्यों के प्रति लोगों के आचरण का निर्माण करती है। विचारधारा कठोर और लचीले दो रूप की है। विचारधारा विकासवादी परिवर्तन और क्रान्ति दोनों का कारण बन सकती है।

राजनीतिक संस्कृति के अन्तर्गत राजनीतिक पद्यति के अध्ययन में परिवारों, भीड़ों, मतदाताओं, गुटों शक्तियों तथा प्रभावों का भी अध्ययन किया जाता है। राजनीतिक संस्कृति के दो भाग हैं- सक्रीय और निष्क्रिय। राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संरचना एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त राजनीतिक व्यवस्था भूमिकाओं की एक संरचना है। इसमें भागीदार अभिकर्ता है। राजनीतिक संस्कृति को चार भागों में बांटा जा सकता है। संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति, अधीनस्थ राजनीतिक संस्कृति तथा भागीदार राजनीतिक संस्कृति। आमण्ड के अनुसार एंगलो-अमेरिकी व्यवस्था, महाद्विपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था तथा पूर्व आद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था।

कुल मिलाकर यह कह जा सकता है कि राजनीतिक संस्कृति की एक अवधारणा एक उपकरण है जिसके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था को समझा जा सकता है।

16.18 शब्दावली

1. इलीट्स (अभिजात वर्ग): यह वर्ग जो शिक्षित है, धनी है और सजग है।
2. पैट्रन (पद्यति) : किसी घटना का एक ऐसा सिलसिला जो उसके एक निश्चित चरित्र का निर्माण करता है।

एटीट्यूड (अभिवृत्तियों) किसी या घटना के प्रति रूझान या सोच।

3. हेटरोजीनस (विजातीयता) किसी समाज या राज्य में विभिन्न भाषाई, सांस्कृतिक और सामाजिक समूह।
4. होमोजीनस (सजातीयता) किसी समाज का आधार एक ही भाषाई, सांस्कृतिक औरसामाजिक समूह होना।
5. माइग्रेशन (प्रवासन) किसी नगर या देश से लोगो दूसरे नगरों या देशों में जाना।
6. इमीग्रेशन (उत्प्राव) बाहर के लोगो का रोजगार की तलाश में आना।

16.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

16.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 दूबे: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
2. एस0एम0सईद0 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
3. जाकिर हुसैन : राजनीतिक सिद्धान्त

16.21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

16.22 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत मे राजनीतिक संस्कृति के विविध पक्षों की विवेचना कीजिये।

इकाई 17: नक्सलवाद

इकाई की संरचना

- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 उद्देश्य
- 17.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 17.4 हिंसा और संघर्ष आधार
- 17.5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ
 - 17.5.1 पहला चरण
 - 17.5.2 दूसरा चरण
 - 17.5.3 तीसरा चरण
- 17.6 नक्सली संगठन: प्यूपिल्स वार ग्रुप
- 17.7 माओस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर
- 17.8 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)
- 17.9 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज
- 17.10 नक्सली आंदोलन के कारण
- 17.11 नक्सलवाद और आतंकवाद
- 17.12 सारांश
- 17.13 शब्दावली
- 17.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 17.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 17.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 17.17 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत में नक्सलवाद एक ऐतिहासिक समस्या है जिसने देश को हिलाकर रख दिया है। 2010 में इस समस्या ने अधिक उग्र रूप धारण कर लिया जब सैकड़ों पुलिसकर्मी नक्सलवादियों के द्वारा मारे गये। भारतीय शासन नक्सलवादी हिंसा को भारत की अखण्डता के लिए एक चुनौती मानता है। वे हिंसा करते हैं, पुलो और रेलट्रैकों को उडाते है, विध्वंस करते है, धन उगाही करते है, भू-स्वामियों पर हमला करते है जो गैर-कानूनी है या अनैतिक है। कभी वे स्वयं को साम्यवादी कहते है, कभी नक्सलवादी और कभी माओवादी। भारतीय व्यवस्था को बदलना उनका लक्ष्य है, क्रान्ति उनका नारा है, हिंसा उनका उपकरण है। भारत इनको उग्रवादी कहता है, लडाकू (मिलिटेन्ट) कहता है लेकिन आतंकवादी कहने से हिचकता है। तर्क यह है कि यह आम निर्दोश लोगो को नही मारते। नक्सलवाद पर बीसियों किताबें लिखी गयी हैं उपन्यास छपे है। कही न कही इनपुस्तकोंमें नक्सलवादियों के प्रति सहानुभूति दिखाई गयी है। जिससे उनका मनोबल उंचा होता है। उदाहरण के लिए पुलिस द्वारा मारे गये माओवादी नेता आजाद और उमाकांत महतों के प्रति बुद्धिजीवियों और पत्रकारों की सहानुभूति एक उदाहरण है। उदाहरण के लिए महास्वेता देवी का उपन्यास “हजार चुराशीरमा” सप्रेश मजूमदार के उपन्यास “कलबेला” और “कालपुरुश” या सखो घोश का “कोबीतार मुहुरतों” ऐसे उपन्यास है जो पुलिस के निर्दोश लोगो पर अत्याचार से भरे पढे है। पश्चिम बंगाल में सहानुभूति पूरी तरह माओवादियों को आतंकवादी मानने को तैयार नही है। उनके अनुसार “आतंकवादी लोगो के विरुद्ध हत्यार बंद है, जबकि माओवादी राज्य के विरुद्ध है। मानवाधिकार कार्यकर्ता स्वामी अग्निवेश ने नक्सलियों और सरकार के बीच नक्सली नेता चेरकुरी राजकुमार अका, आजाद के माध्यम से बात करना शुरू की लेकिन जब पुलिस ने एक मुठभेड़ में आजाद को मार डाला तो स्वामी अग्निवेश हताश हो गये। उन्होंने आजाद की मौत को शान्ति पहल के लिए बड़ा आघात बताया। वह मुठभेड़ की न्यायिक जांच चाहते है। वह मानते है कि संरचनात्मक हिंसा माओवादी हिंसा से ज्यादा खतरनाक है। वह भ्रष्टाचार को हिंसा मानते है। वह जातिवादी टकराव को भारत की वास्तविक हिंसा मानते है। उन्होंने कहा “माओवादी हथियारे नही है, माओवादी हिंसा राज्य हिंसा के विरुद्ध एक प्रतिशोध है। यदि उनके विरुद्ध बल का प्रयोग होगा तो भारत ग्रह युद्ध छिड़ जायेगा”।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

- नक्सलवाद का विश्लेषण उसके ऐतिहासिक संदर्भ में को जान पायेंगे।
- नक्सली आंदोलन के चरण, उनका आधार और रणनीति।

- इसके बौद्धिक और राजनीतिक स्वरूप का और नेतृत्व का अध्ययन।
- नक्सली संगठनों का विश्लेषण।
- नक्सली विचारधारा का विस्तार से अध्ययन।
- नक्सली आंदालनों के कारण और उसके स्वरूप का विश्लेषण।

17.3 एतिहासिक पृष्ठभूमि

नक्सलवाद शब्द की उत्पत्ति पश्चिमी बंगाल के एक गांव नक्सलबाड़ी से हुई है। यही से एक आंदोलन आरम्भ हुआ जो नक्सलवाद कहलाया। हुआ यह कि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) से विद्रोह करके चारू मजूमदार, कानू सान्याल तथा जांगल सान्याल ने 1967 में एक हिंसात्मक विद्रोह छेडा। 18 मई 1967 को सिलिगुडी किसान सभा ने जिसका अध्यक्ष जांगल था भूमिहीनों में भूमि वितरण के लिए हथियार बंद संघर्ष का ऐलान किया। उसी सप्ताह एक बटाईदार पर नक्सलबाड़ी के समीप भूमि स्वामियों के आदमियों ने भूमि विवाद को लेकर हमला कर दिया। 24 मई को जब एक पुलिस टुकड़ी कृशक नेताओं को गिरफ्तार करने आयी तो जांगल सान्याल के नेत्रत्व में आदिवासियों के एक समूह ने घात लगाकर हमला कर दिया। जिसमें तीरों की बौछार से एक पुलिस इंस्पेक्टर और ग्याराह नक्सली मारे गये। इस घटना से संथाल आदिवासियों और निर्धन लोगो को स्थानीय भूस्वामियों के विरुद्ध आंदोलित होने का प्रोत्साहन मिल गया। यहां से नक्सलवाद आरम्भ हो गया।

इस तरह नक्सल, नक्सलाईट या नक्सलवादी कम्युनिस्ट या साम्यवादी लडाकू गुटो के लिए एक वंशनीय (जैनेरिक) शब्द है। यह लडाकू भारत के विभिन्न क्षेत्रों विशेष रूप से बिहार, झारखण्ड, पश्चिमि बंगाल इत्यादि में माओवादी कहलातेहैं। इनके गड़ केरला, उडीसा और आन्ध्र प्रदेश के जिले भी हैं। नक्सली अति-वाम आतिवादि (रेडीकल) साम्यवादी हैं। जिनके विचारों का आधार माओवादी राजनीतिक भावना और विचारधारा है। यह 1967 में भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) से मतभेद होने के कारण अगल हो गये और इन्होंने भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) बना लिया। पहले इनका आंदोलन पश्चिमी बंगाल तक सीमित रहा, बाद में छत्तीसगढ, उडीसा और मध्यप्रदेश में भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) की सहायता से यह फैल गये।

सन् 2009 में नक्सली भारत के 20 राज्यों के 220 जिलों मे सक्रीय थे अर्थात देश का 40 प्रतिशत भाग पर उनका कब्जा था। जिन क्षेत्रों में वे क्रियाशील हैं वह रेड कारीडोर या लाल गलियारा कहलाता है। 92,000 कि०मी० पर उनका नियंत्रण है। 20,000 हथियार बंद और इतने ही कार्यकर्ता

है। उनकी बढ़ती गतिविधियों को देखते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उनको भारतीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर आंतरिक खतरा बताया है।

1967 में नक्सलियों ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रेवोल्यूशनरीज (ऐ0आई0सी0सी0सी0आर0) का गठन किया, लेकिन बाद में सी0पी0एम0 से अलहदा हो गये। देश के अनेक क्षेत्रों में इनके आंदोलन का अधार हिंसा हो गया। व्यवहारिक रूप से सभी नक्सली गुटों का उद्भव सी0पी0आई0 (एम0एल0) से हुआ है। तब दूसरा गुट प्यूपिल्स वार ग्रुप था जो पूरी तरह क्रान्तिकारी था। बाद में इसका विलय भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) में हो गया। इस समय इनका नेता नागी रेड्डी था।

17.4 हिंसा और संघर्ष आधार

1970 की दहाई में यह आंदोलन अनेक टुकड़ों में बट गया। 1980 तक यह अनुमान लगाया गया कि लगभग 30 नक्सली गुट सक्रिय थे। इनकी सदस्यता लगभग 30,000 थी। 2004 गृह विभाग के अनुमान के अनुसार 9,300 ठोस भूमिगत लडाकू थे। जिनके पास 6,500 आधुनिक हथियार थे। विदाल हॉल 2006 के अनुसार इस आंदोलन का आधार 15,000 सक्रिय उग्र हथियार बंद थे। ये भारत के जंगलों के एक बड़े भाग (1/5) पर काबिज़ थे। इनकी भूमिका गौरिल्लों जैसी है। 160 जिलों में यह सक्रिय है। राँ के अनुसार 2006 में नक्सलियों की संख्या 20,000 थी और यह सब हथियार बंद थे।

आज कछ नक्सलवादी गुट वैज्ञानिक हो गये क्योंकि वे संसदीय चुनावों में भाग लेते हैं जैसे भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लेकिन भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) और भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी जनशक्ति) हथियार गोरिल्ला युद्ध में लिप्त हैं।

6 अप्रैल 2010 नक्सलियों ने नक्सलवादी आंदोलन के इतिहास का सबसे बड़ा हमला किया। जिसमें 76 सुरक्षाकर्मी मारे गये। यह हमला लगभग 1000 नक्सलियों ने छत्तीसगढ़ के दातेवाड़ा जिले के जंगलों में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के जवानों पर किया। 76 मौतों के अतिरिक्त 50 जवान घायल हुए। 17 मई 2010 को दातेवाड़ा-सुखमा सड़क पर एक बस को उड़ा दिया। जिसमें 15 पुलिसवाले और 20 नागरिक मारे गये अपने तीसरे हमले में जो 29 जून को हुआ, छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के 26 जवानों को मार डाला। इससे यह सिद्ध होता है कि हाल के दिनों में नक्सलवाद ने एक तरह से राज्य के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया है।

नक्सलवाद का नेतृत्व

जैसा कि लिखा जा चुका है नक्सलीय आंदोलन के सबसे प्रभावशाली नेता या गुरु चारू मजूमदार, कानू सानियाल और जांगल संधाल, (कही-कही जगत संधाल लिखा है) थे। इन नेताओं के नेतृत्व में

सीपीआई (एमएल) आंदोलन 1971 में अपने शिखर पर पहुच गया। लगभग 3,650 हिंसात्मक घटनाएं घटीं जिनसे बिहार, आन्ध्र प्रदेश, कैरला, तमिलनाडु, पंजाब और उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्र हिल उठे। लेकिन जब पुलिस तथा सेना ने शिकंजा जकड़ा जिसमें हजारों नक्सली गिरफ्तार हुए या मर गये तथा 1972 में मजूमदार की मृत्यु से नक्सलवाद को झटका लगा। केपी सिंह ने अपने एक निबन्ध “दि ट्रेजोक्टरी ऑफ दि मूवमेंट” में लिखा है: यह काल एक अवधारणात्मक निष्कपट नेतृत्व से सम्पन्न था। इसमें मध्य स्तरीय कार्यकर्ता थे। इसकी अपील न केवल वामपंथ और समाज के वंचित वर्गों के लिए थी, बल्कि एक बड़ी संख्या में बुद्धिजीवी और छात्र भी इसकी ओर आकृषित हुए और सहानुभूति रखने लगे। इसको चीन जैसे कुछ देशों से मदद भी मिल रही थी।

17.5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ

17.5.1 पहला चरण

यह कहना सही होगा कि नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति और इस पर पढ़ने वाले बौद्धिक प्रभावों का परिणाम है। सर्वप्रथम तेलंगना संघर्ष के संदर्भ में इसको देखा जाता है। तेलंगना में जुलाई 1948 तक, 2500 गांवों को कम्यूनिस में संगठित किया गया। यह किसान आंदोलन का एक हिस्सा था जिसे तेलंगना संघर्ष कहा गया। इसी समय प्रसिद्ध आन्ध्राथीसेज अस्तित्व में जिसकी मांग थी कि भारतीय क्रान्ति चीन जन युद्ध के रास्ते पर चलना चाहिए। जून 1948 तक वामपंथी अवधारणात्मक दस्तावेज ‘आन्ध्र लेटर’ सामने आया। जिसने नवीन लोकतंत्र के आधार पर एक क्रान्तिकारी रणनीति बनाने का आह्वान किया।

1964 में सीपीएम सीपीआई से अलहदा हो गयी और चुनावों में भाग लेने को फैसला किया और क्रान्तिकारी नीतियों को अपनाने में हथियार बंध संघर्ष स्थगित करने का तब तक के लिए ऐलान किया जब तक कि देश में क्रान्तिकारी परिस्थितियां परिपक्व न हो जायें।

1965-66 में साम्यवादी नेता चारू मजूमदार ने मार्क्स-लेनिन-माओ के विचारों पर आधारित बहुत से लेख लिखे, जिनको बाद में ऐतिहासिक आठ दस्तावेज कहा गया। जो अनंत: नक्सली आंदोलन का आधार बना।

इसी दौरान पहला स्वतंत्रता संगठन तेलगु कवि श्री श्री की अध्यक्षता में अस्तित्व में आया। लेकिन भारत-चीन युद्ध के दौरान हजारों साम्यवादियों को जेलों में ठूस दिया गया।

1967 में सीपीएम ने चुनावों में भाग लिया और बंगाल कांग्रेस के साथ मिलकर पश्चिमी बंगाल में एक संयुक्त मोर्चा बनाया। इससे पार्टी में विरोध की लहर दौड़ गयी। चारू मजूमदार ने सीपीएम पर विश्वासघात का आरोप लगाकर पार्टी छोड़ दी।

25 मई, 1967 को चारू मजूमदार के नेतृत्व में विद्रोही गुट ने पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाडी में किसानों का उग्र आंदोलन आरम्भ हुआ। कारण था कि एक आदिवासी युवक पर जिसके पास खेत जोतने का न्यायिक आदेश था जमींदार के गुंडों ने हमला कर दिया। आदिवासियों ने बदले में अपनी भूमि को जबरदस्ती छीनना शुरू कर दिया। सीपीआई (एम) द्वारा समर्थित संयुक्त मोर्चे ने आदिवासियों के आंदोलन को कुचलना शुरू किया। 72 दिनों तक यह विद्रोह चला जिसमें एक पुलिस सब इंस्पेक्टर और 11 आदिवासी मारे गये। केन्द्र में कांग्रेस ने इस दमन का समर्थन किया। घटना की गूंज पूरे देश में हुई और नक्सली आंदोलन ने जन्म ले लिया।

नक्सलवाद की विचारधारा देखते ही देखते पूरे भारत में फैल गयी। पूरे पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और बिहार में लोगो ने संघर्ष में भाग लेना आरम्भ किया।

आंदोलन का बौद्धिक स्तर भी सामने आया जब “लिबरेशन” और देशभक्ति, बंगाली तथा लोकयुद्ध (हिन्दी) जैसी पत्रिकाएं सामने आयीं।

17.5.2 दूसरा चरण

1967 में तमिलनाडु, केरला, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटका, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में कामरेडो ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ रेवोल्यूशनरीज की स्थापना सीपीआई (एम) के अन्तर्गत की। 14 मई 1968 इसका नाम ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रेवोल्यूशनरीज पडा। इसके संयोजक एस0राय0 चौधरी थे। इस नयी संस्था ने चुनाव के बहिष्कार का आहवान किया। बाद में इस कमेटी में विभाजन हो गया।

22 अप्रैल 1969 को नई कमेटी के एक निर्णय के अनुसार एक नयी पार्टी बनायी गयी। जिसका नाम सीपीआई (एम0एल0) पडा। लेनिन के विचार इसके प्रेरणा स्रोत थे। चारू मजूमदार इस पार्टी के केन्द्रीय दल के सचिव चुने गये। 1 मई 1969 को पार्टी के दूसरे बड़े नेता कामरेड कानू सान्याल ने कलकत्ते की शहीद मीनार मैदान में पार्टी की घोषणा के लिए एक बड़ी मीटिंग की। सीपीआई (एम) ने इस मीटिंग में गड़ बड़ फैलाने की कोशिश की परिणाम स्वरूप सीपीआई (एम) और सीपीआई (एम0एल0) में पहली हिंसात्मक झड़प हुई।

इस बीच देवरा-गोपीवल्लभपुरा (पश्चिमी बंगाल), मूसल (बिहार, लखीमपुरखीरी, (उत्तर प्रदेश) तथा श्रीकाकुलम (आन्ध्र प्रदेश) में गौरिल्ला जोन बन गये।

26-27 मई, 1969 को आंध्र पुलिस ने कामरेड पंचादरी कृष्णामूर्ति और छः अन्य क्रान्तिकारियों को मार डाला। यहां से श्री काकुलम संघर्ष की लहर पूरे आंध्र में फैल गयी। 20 अक्टूबर को माओवादी साम्यवादी केन्द्र की स्थापना कनही चटर्जी के नेतृत्व में हुई जिसने नक्सलवादी आंदोलन को समर्थन दिया।

27 अप्रैल, 1970 को देशभारती प्रकाशन के दफ्तर पर छापा मारा गया। सी0पी0आई0 (एम0एल0) भूमिगत हो गया। 11 मई को पहला सी0पी0आई0 (एम0एल0) की कांग्रेस कलकत्ते में हुई। यह भूमिगत थी। कामरेड, चारू मजूमदार इसके सह सचिव चुने गये। 10 जुलाई को कामरेड बेमपतापु, सत्यनारायण और अदिबतिया कैलासम, जो श्री काकुलम विद्रोह के नेता थे, पुलिस द्वारा मार डाले गये। लेकिन श्री काकुलम का आंदोलन 1975 तक चलता रहा। इस पूरे आंदोलन को साहित्यकारों और कलाकारों का समर्थन मिलता रहा।

दूसरी ओर बांग्लादेश युद्ध के दौरान सेना ने पश्चिमी बंगाल में नक्सली आंदोलन को कुचलने का पूरा प्रयास किया। वीर भूमि का विद्रोह आंदोलन की चरम सीमा थी।

जुलाई 1972 में चारू मजूमदार को कलकत्ते में गिरफ्तार कर लिया गया और उनकी लाल बाजार थाने की हवालात में 28 जुलाई को मृत्यु हो गयी। क्रान्तिकारी आंदोलन को मजूमदार की मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। सी0पी0आई0 (एम0एल) की केन्द्रीय सत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी।

संघर्ष का अंत नहीं हुआ। बौद्धिक स्तर पर आंदोलन नहीं रूका। अगस्त 1972 में पुकार राजनीतिक पत्रिका आन्ध्र प्रदेश से निकाली गयी।

1973 में गुरिल्ला संघर्ष फिर आरम्भ हो गया। इस समय यह केन्द्रीय बिहार और तेलंगाना में चला। मार्च में आन्ध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज को श्री श्री के नेतृत्व में स्थापना हुई।

12 अक्टूबर 1974 में आन्ध्र प्रदेश में एक अतिवादी छात्र संघ की स्थापना हुई। आपात काल में यह पुलिस के जुल्म का शिकार हुआ परन्तु इसका अंत नहीं हुआ।

1975 में आपात काल की घोषणा हुई। पुलिस ने मौके का फायदा उठाकर वामपंथी आंदोलन को कुचलने का पूरी तरह प्रयास किया। सितम्बर में सैन्ट्रल ऑर्गनाइजिंग कमेटी ने अपना आंदोलन वापस ले लिया और एक राजनीति के तहत रोड टू रेव्यूल्यूशन का दस्तावेज प्रस्तुत किया लेकिन भोजपुर और नक्सलबाडी में खूनी संघर्ष जारी रहा।

फरवरी 1977 में आंध्र प्रदेश में क्रान्तिकारियों ने तेलंगाना रीजनल काँग्रेस की स्थापना करके करीम नगर और आदिलाबाद किसान आंदोलन के बीज बोए। तय यह भी किया गया कि नयी भर्ती के लिए राजनीतिक कक्षाएं चलायी जाएं और टुकड़ियों को हथियार बंद संघर्ष के लिए जंगलो में भेजा जाये।

बाद में यह तय किया गया कि गोरिल्ला कार्यवाही को कुछ सीमित किया जाये और जनआंदोलन आरम्भ किया जाये। परिणाम स्वरूप 7 सितम्बर को प्रसिद्ध जगीतियाल मार्च का आंध्र प्रदेश में आयोजन किया गया। जिसमें हजारों लोगो ने भाग लिया।

1979 से लेकर 1988 एम0सी0सी0 ने अपना ध्यान बिहार में केन्द्रित किया। बिहार-बंगाल स्पेशल ऐरिया कमेटी स्थापित की गयी।

1980 में कोण्डापली, सीतारमैया ने आंध्र प्रदेश में प्यूपिल्स वार ग्रुप की स्थापना की। आरम्भ में उसका लक्ष्य जन आंदोलन खड़ा करना था। यह आंदोलन केन्द्रीय बिहार में फैल गया।

17.5.3 तीसरा चरण

1981 में पहली राज्यव्यापी रैली बिहार प्रदेश किसान सभा के झण्डे के तले पटना में हुई। इसने राज्य में एक नये राजनीतिक जन आंदोलन का दौर आरम्भ किया। 1985 तक आंदोलन में आसमिया, पिछड़े और दलितों को मिलाने का प्रयास किया गया। आर्पेशन ब्लू स्टार के बाद पंजाब के सिक्खों की भावनाओं को देखते हुए उन्हें आंदोलन से जोड़ने का प्रयास किया गया।

आदिवासियों की स्वायत्ता के लिए प्यूपिल्स डेमोक्रेटिक फ्रन्ट आसाम के करबी आगलंग में अस्तित्व में आया। इसने विधान सभा की पहली सीट जीते।

इस समय दिल्ली में जन संस्कृतिमंच की स्थापना की गयी। उद्देश्य बौद्धिक विकास था।

1986 में बिहार सरकार ने पी0डब्लू0जी0 और एम0सी0सी0 पर पाबंदी लगा दी।

इसी वर्ष आंदोलन से महिलाओं को जोड़ने का भी प्रयास किया गया और कलकत्ते में राष्ट्रीय महिला अधिवेशन बुलाया गया ताकि क्रान्तिकारी महिलाओं से महिला आंदोलन को जोड़ा जा सके।

1988 में सी0पी0आई0 (एम0एल) की स्थापना यतेन्द्र कुमार ने की।

नवम्बर 1989 में भू-स्वामियों ने भोजपुर जिले में 12 वामपंथी समर्थकों को मार डाला। नवम्बर में ही सी0पी0आई0 के पहली चुनावी सफलता मिली जब आरा से पहला नक्सली सदस्य संसद पहुंचा। आंदोलन का यह एक नया मोड़ था। आई0पी0एफ0 के अन्तर्गत यह चुनाव लड़ा गया था।

1999 में आई0पी0एल0 की पहली अखिल भारतीय रैली दिल्ली में निकली जिसमें लाखों किसानों ने भाग लिया।

1992 में आंध्र प्रदेश पी0डब्लू0जी0 पर पाबंदी लगा दी गयी।

1990 में छात्र स्तर पर भी काम किया गया। इलाहाबाद में आल इण्डिया स्टूडेन्ट्स एसोसिएशन की स्थापना की गयी। 1993 में एसोसिएशन ने इलाहाबाद, वाराणसी और नैनीताल विश्वविद्यालयों के

चुनावों में जीत हासिल की। कुछ समय बाद उसका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की छात्र संघ पर भी कब्जा हो गया।

1993 से 1996 तक साम्यवादी संगठनों के बनने और टूटने की कहानी है। इसी दौरान नक्सली आंदोलन दबा रहा।

1999 में नक्सलियों ने हमले तेज कर दिये। लगभग 40 उच्च जाति के लोगो को मार डाला गया। पी0डी0जी0 के तीन बड़े नेता भी मारे गये। 16 नवम्बर को मध्य प्रदेश के ट्रांसपोर्ट मंत्री लिखीराम कारवे को बदले में मार डाला गया।

2000 में बदले की कार्यवाहियां तेज हो गयीं। पी0ड0जी0 ने तेलगुदेशम पार्टी के सांसद सुखेन्द्र रेड्डी का घर उड़ा दिया। फरवरी में मध्यप्रदेश में पुलिस की एक गाडी को उडाकर 23 पुलिसकर्मियों को मार डाला। इसी माह आन्ध्र प्रदेश में दस लोगो को मार डाला। प्यूपिल्स गोरिल्ला सेना का निर्माण पुलिस को मारने के लिए किया गया।

2001 में सी0पी0आई (एम0एल0) ने “नक्सलवादी साहस” को पुर्नजाग्रित करने का आहवान किया। इसी वर्ष दक्षिणी एशिया में नक्सली आंदोलन फैलाने के लिए कोआर्डिनेशनल कमेटी ऑफ माओस्ति पार्टीज एण्ड ऑर्गनाइजेशन ऑफ साउथ एशिया का पहला अन्तराष्ट्रीय संगठन बनाया गया।

2002 से लेकर जनवरी 2010 का नक्सली इतिहास पूरी तरह रक्त रंजित है। इसका वर्णन पिछले पन्नों में किया जा चुका है।

17.6 नक्सली संगठन: प्यूपिल्स वार ग्रुप

1974 तक बंगाल और बिहार में नक्सली आंदोलन पूरी तरह कुचल दिया गया। आपात काल में हजारों नक्सलियों को जेल में डाल दिया गया, उनको भी जिन पर थोड़ा सा संदेह था, पर वे कसूरवार नहीं थे। नतीजा यह हुआ कि ज्यों ही आपातकाल समाप्त हुआ नक्सली आंदोलन ने फिर करवट ली। कोन्डापल्ली सीथारम्मया के नेतृत्व में आंध्र प्रदेश में एक अराजक प्यूपिल्स वार ग्रुप (पी0वी0जी0) और बिहार में माओस्ति कम्यूनिस्ट सेन्टर तथा यूनिटी आर्गनाइजेशन अस्तित्व में आ गये। पहले तो सी0पी0आई0 (एम0एल0) लिब्रेशन ने संसदीय व्यवस्था में काम करने का इरादा किया। लेकिन बाद में हथियार बंद संघर्ष में कूदने में हिचकिचाहट नहीं की। इन संगठनों को एक विचारात्मक आधार कोन्डापल्ली ने दिया। उसने लिखा “.....एक देश जहां लोकतांत्रिक संस्थाएं कमजोर और संकुचित बुनियादों पर आधारित हो, जहां छोटी विजयों और आंशिक सुधारों को एक बड़े सैनिक बल से प्राप्त किया जाये और बनाये रखा जाये”, वहां हथियारबंद संघर्ष अनिवार्य है। इस तरह पी0डब्लू0जी0 की विचारधारा आज के नक्सलियों की विचारधारा है।

प्यूपिल्स वार ग्रुप का उदय का कारण था सीपीआई (एमएल) लिब्रेशन का लोकतांत्रिक चुनावों में भाग लेना। ऐसा लोकतांत्रिक कदम चारू मजूमदार के विचारों के विरुद्ध था। वह चाहता था कि समान्ती सेना के विरुद्ध एक सत्त जन युद्ध हो। राज्य के हमलो का जवाब वैधानिक सुधारवादी नीतियों से नहीं दिया जा सकता “ऐसा करना शासकीय वर्ग के चमचों” में बदलना होगा।

पहले कुछ वर्षों तक पीडब्लूजी आंध्र प्रदेश तक सीमित रहा जबकि सीपीआई (एमएल) का बिहार पर प्रभाव रहा। 1982 में सीपीआई (एमएल) पार्टी युनिटी अस्तित्व में आ गयी और इस तरह एक आंतरिक संघर्ष का खूनी खेल आरंभ हो गया। अगस्त 1998 में पार्टी युनिटी और पीडब्लूजी ने मिलकर यूनाइटेड पार्टी बना ली और एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसका शीर्षक था राज्य के विरुद्ध हथियार बंद जन-संघर्ष। लेकिन पार्टी की असफलता ने पीडब्लूजी को बढ़ने का और मौका दिया। वह आंध्र प्रदेश से निकलकर बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ तक फैल गयी। आज जो खूनी खेल चल रहा है उसमें पीडब्लूजी का बड़ा हाथ है।

17.7 माओस्ट कम्युनिस्ट सेन्टर

माओस्ट कम्युनिस्ट सेन्टर या माओवादी साम्यवादी केन्द्र (एमसीसी) नक्सली आंदोलन का एक दूसरा खोफनाक चहरा है। इसका निर्माण दक्षिण देश के रूप में 1969 में हुआ जिसका लक्ष्य राज्य के अभिकर्ताओं के विरुद्ध हथियार बंद संघर्ष करना था। 2003 में इसका नाम एमसीसी इण्डिया पडा। एमसीसी माओसे तुंग की शपथ लेकर काम करती है, जिसका संदेश था गुरिल्ला जन-युद्ध ताकि “एक शक्तिशाली जन सेना और अर्धजन सेना का निर्माण हो ताकि ग्रामीणीय स्तर पर एक आत्म निर्भर शक्तिशाली और भरोसेमंद आधार क्षेत्र बन सके, जिसके माध्यम से धीरे-धीरे शहरी क्षेत्रों की घेराबंदी की जाये, ग्रामीणीय क्षेत्रों को मुक्त कराकर और अंत में शहरों में कब्जा जमाया जाये और इस तरह निर्णायक रूप से प्रतिक्रियावादियों की राज्य शक्ति को नष्ट कर दिया जाये।” एमसीसी और पीडब्लूजी की विचारधारा में कोई विशेष अंतर नहीं है। यदि कोई अंतर है तो वह है कार्यशैली की तीव्रता का। दोनों एक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश में लगे हैं।

17.8 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)

2004 की रणनीति से माओवादियों या नक्सलियों के लक्ष्य का पता लगता है। 2004 में देशव्यापी क्रान्तिकारी संगठन की स्थापना के लिए नक्सली आंदोलन ने एक बड़ी छलांग लगाई। इस वर्ष पीडब्लूजी और एमसीसीआई ने गनपंथी और किशन जी के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (माओवादी) का मिलकर गठन किया। यह संगठनात्मक राजनीति के संघर्ष का

नतीजा था। यहां स्वीकार करना होगा कि नक्सली आंदोलन का इतिहास सहमति और विभाजन का इतिहास है जिसका आधार विचारों में टकराव है। सीपीआई (एम) का मेनीफेस्टो एक समझौते का परिणाम है। इस संगठन का निशाना दो बातें हैं - अनौचित्यपूर्ण कृषि नीतियां और राज्य द्वारा भूमि का पुनर्वितरण और दूसरे वह व्यवस्था जिसे माओवादी अर्ध-उपनिवेशवादी, अर्ध-सामन्ती और महत्वांक्षी नौकर शाही पूंजीवादी व्यवस्था कहते हैं। सीपीआई (एम) का रख रखाव बहुत कुछ सीमा तक सुधारवादी था लेकिन लोगो ने इसे अस्वीकार कर दिया। आम नक्सली को क्रान्तिकारी और हिंसात्मक तरीको से लक्ष्य की प्राप्ति सरल नज़र आती थी।

पीडब्लूजी और एमसीसी के गठजोड़ के बाद सीपीआई (एम) ने एक ऐसे ठोस क्रान्तिकारी क्षेत्र (काम्पैक्ट रैवोल्यूशनरी जोन सीआरजेड) का नक्शा खींचा जो नेपाल से बिहार होता हुआ छत्तीसगढ़ से आंध्र प्रदेश तक जाता है। इसको लाल गलियारा (रेड जोन) का नाम दिया गया है। इसका लक्ष्य था भारत को दो आधे-आधे भागों में बांटना और उन क्षेत्रों पर कब्जा कर लेना जो संसाधनों से सम्पन्न हैं, डा0 रजत कजूर के अनुसार “यद्यपि नक्सली गुटों के निशाने, लडाई के तरीके, क्षमताएं और इनका चरित्र समय-समय पर बदल है। लेकिन नेतृत्व की विचारधारा अडिग है।”

नक्सली विचारधारा

जैसा कि लिखा जा चुका है कि प्यूपिल्स वार ग्रुप (पीडब्लूजी) की विचारधारा नक्सली विचारधारा का आधार है। जिसका स्रोत चारूमजूमदार के लेख है। इन लेखों का संग्रह करके मजूमदार ने हिस्टॉरिक एट डाक्यूमेंट्स का नाम दिया जो नक्सली विचारधारा का आधार बनी। पीडब्लूजी इसी विचारधारा के अनुसार काम करती है। यहां हम पीडब्लूजी के एक पार्टी अभिलेख (दस्तावेज) ‘पार्ट आफ प्यूपिल्स वार इन इण्डिया-आवर टास्क’ के एक उद्धरण को प्रस्तुत करेंगे जो माओवादियों या नक्सलियों का लक्ष्य, उद्देश्य और रणनीति को उजागर करता है। यह दस्तावेज 1992 में जारी किया गया, जिसका उदाहरण इस प्रकार है। “हमारे दल के प्रोग्राम ने यह घोषित किया कि भारत एक लम्बा-चौड़ा, अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-सामन्ती देश है। जिसमें लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांव में रहती है। यह बड़े बुजुआई, बड़े भू-स्वामियों से जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है, शासित होता है। साम्राज्यवाद, सामान्तवाद और नौकरशाह-पूंजीवाद के मध्य गठजोड़ एक तरफ और दूसरी ओर जनता का जनसमूह हमारे देश में मौलिक अन्तर्विरोध है। नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति और कामगारों, किसानों, मध्य वर्गों और राष्ट्रीय बुजुआईयों की जन लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना, हमारे लोगो को सभी प्रकार के शोषण और प्रतिक्रियावादी शासकीय वर्गों की तानाशाही से मुक्ति दिलाना और हमारे देश में समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना करना, हमारे दल का अंतिम लक्ष्य है हथियार बंद कृषक क्रान्ति के

आधार पर जन युद्ध एक मात्र रास्ता है। जन लोकतंत्र को प्राप्त करने का अर्थात् हमारे देश में नया लोकतंत्र।”

उक्त उद्धृत से जो निष्कर्ष निकलता है वह इस प्रकार है:-

1. नक्सलियों के अनुसार भारत एक अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-समान्ती देश है।
2. यह बड़े बुर्जुआई और भू-स्वामियों से शासित होता है। जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है।
3. साम्राज्यवाद, सामंतवाद, नौकरशाहों तथा पूंजीपतियों के मध्य गठजोड़ है।
4. दूसरी ओर लोगो का जन समूह है।
5. नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति के माध्यम से परिवर्तन लाया जा सकता है।
6. लक्ष्य कामगारों, किसानों, मध्य वर्गों और राष्ट्रीय बुर्जुआईयों की लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना करना है।
7. समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।
8. हथियार बंद कृशक क्रान्ति पर आधारित जनयुद्ध (प्यूपिल्स वार) लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है।
9. यही नये लोकतंत्र की अवधारणा है।

17.9 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज

जैसा कि लिखा जा चुका है चारूमजूमदार नक्सलियों का सिद्धांतकार था। उसकी विचारधारा उसके द्वारा प्रतिपादित “ऐतिहासिक आठ दस्तावेजों” में मिलती है। नक्सली आंदोलन को समझने के लिए इन दस्तावेजों का अध्ययन जरूरी है। देखें वेबसाइट इंटरनेट पर ;

इन दस्तावेजों का सार इस प्रकार है:-

1. चारू मजूमदार का मानना था कि मौजूदा परिस्थितियों में सीपीआई (एम) ने मार्क्स लेनिन का रास्ता छोड़कर समझौते और समन्वय का रास्ता अपनाया। मजूमदार ने इसे “संशोधनवाद” (रिवीज़निज़्म) कहा और आह्वान किया कि किसानों का आंदोलन संशोधनवाद के विरुद्ध होना चाहिए। मजूमदार के अनुसार मार्क्स वादी प्रतिक्रियावादियों की पंक्ति में आंकड़े हुए हैं। इन्होंने वर्ग संघर्ष के स्थान पर सहयोग का रास्ता अपनाया है। यह इनका अर्थवाद है। माओं को उद्धृत करते हुए उसने लिखा जो “निष्पक्ष रहते हैं वे अवसरवाद का मार्ग अपनाते हैं।” यही संशोधन वादी है।

2. हमने जन लोकतांत्रिक क्रान्ति का प्रोग्राम अपनाया है जिसका उद्देश्य किसानों के हित में भूमि सुधार करना है। इसके लिए हम सामन्ती वर्गों से जमीन छीननी होगी और उसे भूमिहीन किसानों और गरीबों में बांटना होगा।

3. बिना बलिदान के कोई संघर्ष नहीं हो सकता। 'माओं ने हमको सिखाया है कि जहां संघर्ष है वहां बलिदान है। आरंभ में प्रतिक्रियावादियों की ताकत ज्यादा होगी। बाद में वे पराजित हो जायेंगे।'

4. नौकरशाही की भूमिका बड़ी गंदी होती है। यदि कुछ वैधानिक सुधार किये भी जाये और नौकरशाही पर क्रयान्वन को छोड़ दिया जाये तो किसानों को कुछ नहीं मिलेगा। ऐसा लेनिन का विश्वास था।

5. कृषक क्रान्ति लाने से पूर्व राज्य की शान्ति को नष्ट करना होगा। यह कैसे होगा, इसके लिए मजूमदार ने लिखा "भू-स्वामियों से हथियार छीनने होंगे, पहले उनके घरों को जलाना होगा। अचानक हमला करके सरकारी हथियारों को छीनना होगा। यही पहला हथियारबंद संघर्ष है।

6. वर्ग विश्लेषण जरूरी है। बिना वर्ग विश्लेषण के वर्ग संघर्ष नहीं होगा। केवल कमजोर किसान-मजदूर क्रान्तिकारी हो सकता है। मध्यवर्ग नहीं हो सकता।

7. हथियार बंद संघर्ष की राजनीति जरूरी है। बन्दूके छीनना इसका एक भाग है। माओं की सांस्कृतिक क्रान्ति का यही लक्ष्य था। मजूमदार मिर्ज़ों और नागा के मुक्ति आंदोलन को उचित मानता है।

8. मजूमदार के अनुसार छात्रों और युवकों को आगे लाना चाहिए। उसके बाद किसान आंदोलन चले। ऐसा बिहार और आन्ध्र प्रदेश में हुआ। "शासन दमन करेगा और हमें दमन का सामना करना होगा।" सामना सकारात्मक होना चाहिए। सत्याग्रह नकारात्मक है। ट्रेड संघ तथा कृषक सभाएं समझौता करती हैं।

9. घृणित नौकरशाही और पुलिस पर हमला जरूरी है। रेलवे स्टेशनों, पुलिस स्टेशनों, सरकारी भवनों को मत जलाओ। ट्रेनों, बसों, ट्रकों को मत जलाओ। इनका कोई अपराध नहीं है।

10. साम्राज्यवादी युद्ध को गृह युद्ध में परिवर्तित करो।

11. आधुनिक संशोधनवाद का जिसका अगुआ रूस है विरोध करो। राजनीति शक्ति की प्राप्ति की ओर मत भागो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मजूमदार के विचारों का आधार मार्क्सवादी-लैनिनवादी-माओवादी विचारधारा है। यह नौकरशाही, पूंजीपतियों, भू-स्वामियों के शासन को उखाड़ फेंकने पर

बल देता है। इसके स्थान पर प्रोलतारी तानाशाही की स्थापना करना चाहता है। समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।

17.10 नक्सली आंदोलन के कारण

आदिवासियों तथा दलितों का समग्र विकास न होना, भूमिहीन किसानों की बदहाली, भू-स्वामियों द्वारा शोषण, खनिज सम्पदा पर ठेकेदारों और पूंजीपतियों का नियंत्रण पुलिस का जुल्म नक्सली आंदोलन के मुख्य कारण है।

भारत में आदिवासियों की संख्या लगभग 7 प्रतिशत है। यह चार क्षेत्रों-अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, उत्तराखण्ड इत्यादि में केन्द्रित है। यह अधिकतर जंगलो और पहाड़ी इलाकों में रहते हैं। यह जंगल के उत्पादन या कृषि पर निर्भर है। अधिकांश भूमिहीन है। राजपूत, मराठा तथा दूसरे शक्तिशाली वर्गों ने इन्हें अपने क्षेत्र छोड़ने को मजबूर किया है। इनसे जमीने छीनी है जो इन्हें इधर-उधर भटकने पर मजबूर करते हैं। आदिवासी पूरी तरह ऋण में फंसे रहते हैं। जिसकी वजह से इन्हें बंधुआ मजदूर बनना पड़ता है।

यही स्थिति भूमिहीन किसानों की है। वे न केवल निर्धन हैं बल्कि ऋण ग्रस्त हैं। शक्तिशाली भू-स्वामी उनका शोषण करते हैं और उनको बंधुआ मजदूर बना कर रखते हैं।

बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ इत्यादि क्षेत्र प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न हैं। यहां खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में हैं। खनिज पदार्थों की खानों पर ठेकेदारों का नियंत्रण है जिसका लाभ पूंजीपति या केन्द्रीय सरकार उठाती है। स्थानीय लोगो को इनका कोई लाभ नहीं मिलता। आक्रोश का यह एक बड़ा कारण है।

पुलिस का अत्याचार जग जाहिर है। पुलिस ठेकेदारों, जमींदारों, ऋणदाताओं और पूंजीपतियों का साथ देती है। भूमिहीन किसानों पर जुल्म डालती है और उनकी महिआलों का अपमान करती है।

नौकरशाही लापरवाह है। योजनाओं के क्रयान्वन में ढील है। इस तरह भूस्वामी-ठेकेदार-पुलिस-नौकरशाही का गठजोड़ लोगो को आंदोलित करता है।

17.11 नक्सलवाद और आतंकवाद

अक्सर यह सवाल उठता है कि अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण क्या नक्सलियों को आतंकवादियों की श्रेणी में रेखा जा सकता है? नेपाली माओवादियों के बारे में कहा जाता है कि वे राजतंत्र के विरुद्ध युद्धरत थे। इसलिए उनको आतंकवादी नहीं कहा जा सकता। नेपाल के

माओवादियों के उपर बनाई फिल्म “फ्लेमस ऑफ दि स्नो” का यही सार है। जहां तक भारतीय माओवादियों या नक्सलियों का सवाल है उनके बारे में कहा जा सकता है कि वे प्राकृतिक सम्पदा की लूट करने वालों के खिलाफ लड़ रहे हैं। उनकी सेना में लगभग 40 प्रतिशत महिलाएं हैं। उनके संघर्ष का आधार विचारात्मक है और उनका लक्ष्य पवित्र है, भले ही संघर्ष का आधार हिंसा है, जो एक नकारात्मक पहलू है।

गुप्त एजेंसियों की रिपोर्ट के अनुसार एम0सी0सी0 और पी0डब्लू0जी0 का सम्पर्क एल0टी0टी0आई0, नेपाली माओवादियों और पाकिस्तान की आई0एस0आई0 से रहा है। यहां से वे हथियार और प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे हैं। इसलिए संदेह किया जा सकता है कि वे आतंकियों से मिले हुए हैं। उदाहरण के लिए जिस प्रकार से इन्होंने 28 मई, 2010 को जनानेश्वरी एक्सप्रेस को उड़ाया जिसमें 148 यात्री मारे गये, यह सिद्ध करता है कि यह निर्दोश लोगों को भी मारने से नहीं चूकते जो आतंकियों की प्रवृत्ति है। उमाकान्त महंतो जो जनानेश्वरी काण्ड का दोषी था और जिसका माओवादी समर्थित पी0सी0पी0ए0 (प्यूपिल्स कमिटी अगेंस्ट पुलिस एट्रासिटीज) से गहरा सम्बन्ध था, 27 अगस्त 2010 को मिदनापुर की एक मुठभेड़ में मारा गया। इसी संगठन से सम्बन्धित असित महंतो और बापी महंतो हैं जिनके सिर पर एक लाख का इनाम है। इनको आतंकी घोषित किया गया है।

बुद्धिजीवी नक्सली आंदोलन को आतंकवादी मानने के लिए तैयार नहीं है। तेलगू के साहित्यकार श्री0श्री0, आर0वी0 शास्त्री, खुतुबा राओ, के0वी0 रामना रेड्डी, चेराबन्दा, राजू वरावरा राओ, सी0 विजयालक्ष्मी इत्यादि ऐसे ही लेखक हैं। इन्होंने विपलव रचीयता संगम का निर्माण किया है। जिसका अर्थ है क्रान्तिकारी लेखकों की सभा (रेवोल्यूशनरी राइट्स एसोसिएशन आर0डब्लू0ए0) हैदराबाद के अनेक कलाकार सिरिकुलम संघर्ष से प्रभावित हुए हैं और इसके लिए फिल्में बनाने की ओर अग्रसर हैं।

नक्सली आंदोलन का सार

1. नक्सली कौन हैं ?

नक्सलवादी या नक्सली एक ढीला शब्द है जो उन गुटों को परिभाषित करता है जो भूमिहीनो, मजदूरों तथा अन्य जन-जातियों के लिए भू-स्वामियों तथा अन्य के विरुद्ध एक हिंसात्मक संघर्षरत हैं। नक्सलियों का दावा है कि वे वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए दमन और शोषण के विरुद्ध लड़ाई लड़ रहे हैं। उनके विरोधी कहते हैं कि नक्सली आतंकवादी हैं जो वर्ग संघर्ष के नाम पर लोगों का दमन कर रहे हैं।

2. कितने नक्सली गुट हैं ?

विभिन्न नामों के अन्तर्गत बहुत से गुट सक्रिय हैं। भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी लेनिनवादी) एक ऐसा राजनीतिक संगठन है जो नक्सलियों की विचारधारा का प्रचार करता है। इण्डियन प्यूपिल्स फ्रन्ट अगुआ अहम भूमिका अदा करता है। प्यूपिल्स वार और माओस्टि कम्यूनिस्ट सेंटर ऐसे संगठन हैं जो हिंसा में लिप्त हैं।

3. वे कहां-कहां सक्रिय हैं ?

भारत का वह मध्य भू-भाग जो सब से कम विकसित है, नक्सलियों की गतिविधियों का केन्द्र है। यहां वे ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों, विशेष रूप से लम्बे जंगलों में सक्रिय हैं। उत्तर से दक्षिण तक यह झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र तथा तेलंगाना में और (उत्तर पश्चिम में) आंध्र प्रदेश और पश्चिमी उड़ीसा तक फैले हुए हैं। उत्तर प्रदेश के उन क्षेत्रों में जो नेपाल से मिले हैं, यह सक्रिय नजर आते हैं। पश्चिमी बंगाल और बिहार में माओवादियों के नाम से जाने जाते हैं। प्यूपिल्स वार विशेष रूप से आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी उड़ीसा और पूर्वी महाराष्ट्र में सक्रिय है जबकि माओस्टि कम्यूनिस्ट सेंटर बिहार, झारखण्ड और उत्तरी छत्तीसगढ़ में सक्रिय है।

4. वे किसका प्रतिनिधित्व करते हैं?

नक्सलियों का दावा है कि वे भारत के सबसे कुचले हुए लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, विशेषकर वह लोग जिन तक भारत का विकास नहीं पहुंचा है और चुनाव प्रक्रिया में नजरअंदाज कर दिये गये हैं। आमतौर पर यह आदिवासी, दलित और सब से निर्धन लोग हैं, जो मात्र कोड़ियों के लिए भूमिहीन मजदूरों की हैसियत से काम करते हैं।

5. नक्सली किसे निशाना बनाते हैं?

विचारात्मक दृष्टि से नक्सलियों का दावा है कि वे उस भारत का विरोध करते हैं जिस रूप में वह आज अस्तित्व में है। उनका विश्वास है कि भारतीयों को भूख और वंचना से मुक्ति पाना है और यह कि धनी वर्ग-भू-स्वामी, उद्योगपति, व्यापारी इत्यादि उत्पादन के साधन पर नियंत्रण रखते हैं। उनका अंतिम लक्ष्य है वर्तमान व्यवस्था को उखाड़ फेंकना, परिणाम स्वरूप राजनीतिज्ञों, पुलिस अधिकारियों, जंगल के ठेकेदारों इत्यादि को वे निशाना बनाते हैं।

गांवों में नक्सली भू-स्वामियों को निशाना बनाते हैं। विशेष रूप से उन से पैसा उघाते हैं। क्योंकि वे आदिवासियों और भूमि-हीनों के लिए लड़ते हैं, अतः अक्सर वे इनसे टैक्स वसूलते हैं। यह सरकार का शासन कम उनका ज्यादा है।

6. आंदोलन की विचारधारा का आधार क्या है ?

नक्सली संघर्ष चीन के माओत्से तुंग की विचारधारा पर आधारित है, जिसका उद्देश्य भारतीय क्रान्ति को जन्म देना है। हिंसा इसका आधार है। आंध्र प्रदेश में यह विचारधारा बहुत मजबूत है।

7. क्या कभी यह आंदोलन लोकप्रिय हुआ?

1960 और 1970 की दहाइयों में नक्सलवाद लोकप्रिय था। विशेष रूप से इसमें कई बड़े-बड़े कालिजों के मेधावी छात्रों ने भी दिलचस्पी दिखाना शुरू की थी। वे आदिवासियों और भूमिहीनों के अधिकारों की वकालत करते थे। बहुत से बड़े बुद्धिजीवियों का भी इसको समर्थन मिला। सामाजिक कार्यकर्ताओं की सहानुभूति इस आंदोलन के साथ थी। विनायक सेन ज्वलंत उदाहरण है जिनको उग्र कैद की सजा सुनाई गयी है। यह तथ्य कि हजारों पुरुषों और महिलाओं ने इस आंदोलन में शिरकत की है, यह सिद्ध करता है कि यह जीवित है।

8. क्या नक्सलियों का विरोध होता है?

हां, आंदोलन के पूरे दौर में नक्सलियों को विरोध का समना करना पडा है। उदाहरण के लिए जून 1960 की दहाई में पश्चिमी बंगाल में यह आंदोलन आरम्भ हुआ तो सीपीआई (एम) ने कांग्रेस की सहायता से माओवादियों पर गहरे आघात किये। लगभग तब इसे कुचल दिया गया। ग्रामीण स्तर पर नक्सलियों की आतंकी हरकतों को जवाब देने के लिए स्थानीय सेनाएं लाम्बंघ हुईं। जिनको भू-स्वामियों का समर्थन प्राप्त था। इनमें सबसे बढनाम राणवीर सेना बिहार और झारखंड में है। यह भूमिहर् भू-स्वामियों द्वारा बनाई गयी थी। इन सेनाओं ने सैकड़ों आदिवासियों, दलितों और भूमिहीन मजदूरों को मार डाला।

9. इनकी क्या आलोचना होती है?

इनकी आलोचना यह है कि बावजूद अपनी विचारधारा के, वे मात्र एक दूसरे प्रकार के आतंकवादी बन गये है। यह मध्यवर्गीय भू-स्वामियों से धन वसूली करते है और सब से बुरा पहलू यह है कि उन आदिवासियों और ग्रामीणों के जीवन को प्रताणित और नियंत्रित करते है जिनका प्रतिनिधित्व करने का यह दावा करते है। यह महिलाओं का शारीरिक शोषण करते हैं।

10. आंदोलन की वर्तमान स्थिति क्या है?

2008 से लेकर आजतक (फरवरी 2011) नक्सलियों की हिंसात्मक गतिविधियों में बहुत बढौतरी हुई है। 2010 में इन्होंने लगभग 200 लोगो की जिनमें पुलिसकर्मी भी शामिल है हत्या की है। रेलवे ट्रेक उडाये है, रेलवे स्टेशन जलाये है, रेलों पर हमला किय है जिनमें जनानेश्वरी एक्सप्रेस को उडाकर 145 लोगो का मार डालना शामिल है। कुल मिलाकर स्थिति गंभीर है और पुलिस तथा अर्धसैनिक बल इनके खिलाफ लाम्बंद है। कितने नक्सली मारे जाते है यह स्पष्ट नही है।

17.12 सारांश

नक्सली संगठनों का लक्ष्य नवीन लोतांत्रिक क्रान्ति लाना बताया गया है। हथियार बंद संघर्ष इस लक्ष्य का समाधान है। लेकिन आंदोलन की विवेचना से पता चलता है कि इन संगठनों का विशेषरूप से सी0पी0आई0 (एम) का बल हिंसा पर अधिक है और लक्ष्य प्राप्ति पर कम। यदि वे सत्ता में आते हैं तो इनके सुधार क्या होंगे, यह स्पष्ट नहीं है। क्या इनका राज्य समाज, नौकरशाही विहीन, पुलिस विहीन तथा बुर्जुआ विहीन होगा, इस प्रश्न का उत्तर इनके पास नहीं है। सोवियत संघ टूटने तथा खुले बाजार की अवधारणा ने इनको द्वन्द की स्थिति में ला दिया है। इससे पता लगता है कि नक्सली और उनके संगठन विचारात्मक दृष्टि से दिवालिये हैं। उदाहरण के लिए पी0डी0जी0 में नकारात्मक तो बहुत है, सकारात्मक का आभाव है।

हाल के दिनों में जो सूचनाएं आ रही हैं। नक्सली आंदोलन अराजकता की ओर है। आदिवासियों का शोषण, उनसे कर वसूली, जबरन भर्ती, महिलाओं का शारीरिक शोषण नक्सलियों की प्रतिदिन की गतिविधियां हैं। रोलों पर, बसों पर, रेलवे स्टेशनों और सरकारी दफतरों पर हमला करना, आगजनी करना और आम निर्दोश लोगों का मारना मजूमदार की विचारधारा के विरुद्ध है। लेकिन यह सब कुछ हो रहा है।

सरकारी स्तर पर नक्सलवाद से निपटने के लिए दो रास्ते चुने गये हैं-हिंसा का प्रतिरोध पुलिस बल से और आदिवासी पिछड़े क्षेत्रों का विकास। लेकिन नक्सल हिंसा से प्रभावित राज्यों के मध्य इस समस्या से निपटने में एकरूपता नहीं है। इसलिए शासकीय कदम प्रभावशाली नहीं है। दूसरे अने राजनीतिक दलों ने इस आंदोलन के माध्यम से अपने हित साधे हैं, जो नक्सलवाद को जन्म देते हैं।

17.13 शब्दावली

1. मिलीटेंट : लडाकू जो आंदोलन के लिए हिंसा का रास्ता अपनाएं
2. रीऐक्शनरी : प्रतिक्रियावादी जो भूमिस्वामी, बुर्जाई, सामन्ती पूंजीवादी हैं। जो आंदोलन कुचलना चाहते हैं।
3. रिवीशनिस्ट : संशोधनवादी जो क्रान्तियों को अपनी दृष्टि से परिभाषित करते हैं, समझोते करते हैं।
4. बुर्जाई : वह वर्ग जो सामन्ती या पूंजीपति हैं।

17.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति	-	त्रिवेदी एवं राय
भारतीय शासन एवं राजनीति	-	महेन्द्र प्रताप सिंह

17.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

17.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति का परिणाम है, स्पष्ट कीजिए।